Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

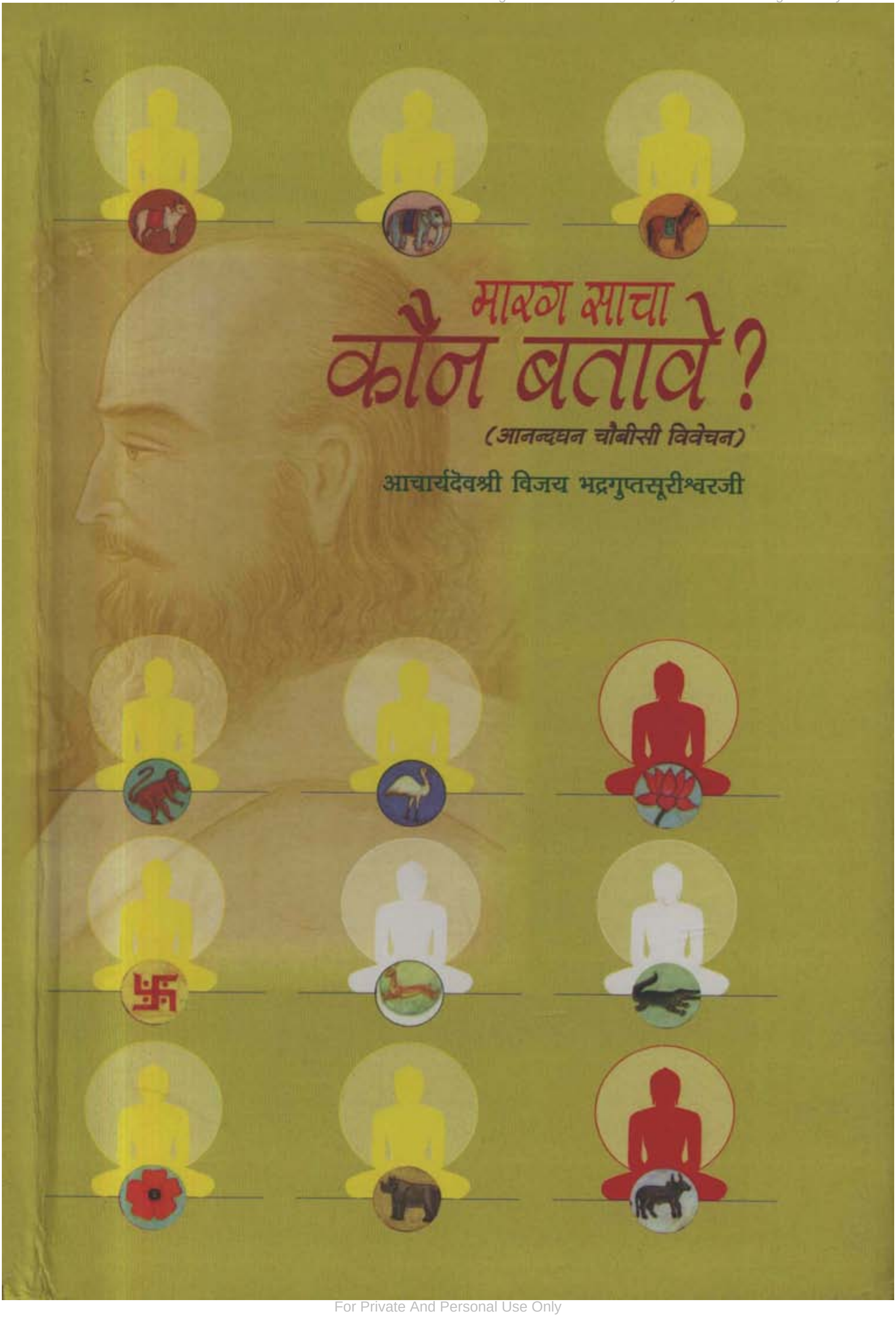

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मारग साचा कौन बतावे?

अठारहवीं शताब्दी के अवधूत-योगीराज
श्री आनंदघनजी-कृत
परमात्म-स्तवनामय चौबीसी पर
सरल-सरस-संक्षिप्त विवेचना

विवेचनकार
आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज
[श्री प्रियदर्शन]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुनः संपादन
ज्ञानतीर्थ-कोबा

द्वितीय आवृत्ति
वि.सं.२०६६, अक्षय तृतीया, १६-५-२०१०

मूल्य
पक्की जिल्द : रू. १६०-००
कच्ची जिल्द : रू. ७०-००

आर्थिक सौजन्य
शेठ श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ
ह. शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार

प्रकाशक
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, ता. जि. गांधीनगर - ३८२००७
फोन नं. (०७९) २३२७६२०४, २३२७६२५२
email : gyanmandir@kobatirth.org
website : www.kobatirth.org

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टर्स, अहमदाबाद - ९८२५५९८८५५

टाईटल डीजाइन : आर्य ग्राफीक्स - ९९२५८०१९१०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूज्य आचार्य भगवंत श्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी

श्रावण शुक्ला १२, वि.सं. १९८९ के दिन पुदगाम महेसाणा (गुजरात) में मणीभाई एवं हीराबहन के कुलदीपक के रूप में जन्मे मूलचन्दभाई, जुही की कली की भांति खिलती-खुलती जवानी में १८ बरस की उम्र में वि.सं. २००७, महावद ५ के दिन राणपुर (सौराष्ट्र) में आचार्य श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के करमकमलों द्वारा दीक्षित होकर पू. भुवनभानुसूरीश्वरजी के शिष्य बने. मुनि श्री भद्रगुप्तविजयजी की दीक्षाजीवन के प्रारंभ काल से ही अध्ययन-अध्यापन की सुदीर्घ यात्रा प्रारंभ हो चुकी थी. ४५ आगमों के सटीक अध्ययनोपरांत दार्शनिक, भारतीय एवं पाश्चात्य तत्वज्ञान, काव्य-साहित्य वगैरह के 'मिलस्टोन' पार करती हुई वह यात्रा सर्जनात्मक क्षितिज की तरफ मुड़ गई. 'महापंथनो यात्री' से २० साल की उम्र में शुरु हुई लेखनयात्रा अंत समय तक अथक एवं अनवरत चली. तरह-तरह का मौलिक साहित्य, तत्वज्ञान, विवेचना, दीर्घ कथाएँ, लघु कथाएँ, काव्यगीत, पत्रों के जरिये स्वच्छ व स्वस्थ मार्गदर्शन परक साहित्य सर्जन द्वारा उनका जीवन सफर दिन-ब-दिन भरापूरा बना रहता था. प्रेमभरा हँसमुख स्वभाव, प्रसन्न व मृदु आंतर-बाह्य व्यक्तित्व एवं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय प्रवृत्तियाँ उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगरूप थी. संघ-शासन विशेष करके युवा पीढ़ी, तरुण पीढ़ी एवं शिशु-संसार के जीवन निर्माण की प्रकिया में उन्हें रूचि थी... और इसी से उन्हें संतुष्टि मिलती थी. प्रवचन, वार्तालाप, संस्कार शिबिर, जाप-ध्यान, अनुष्ठान एवं परमात्म भक्ति के विशिष्ट आयोजनों के माध्यम से उनका सहिष्णु व्यक्तित्व भी उतना ही उन्नत एवं उज्ज्वल बना रहा. पूज्यश्री जानने योग्य व्यक्तित्व व महसूस करने योग्य अस्तित्व से सराबोर थे. कोल्हापुर में ता. ४-५-१९८७ के दिन गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया. जीवन के अंत समय में लम्बे अरसे तक वे अनेक व्याधियों का सामना करते हुए और ऐसे में भी सतत साहित्य सर्जन करते हुए दिनांक १९-११-१९९९ को श्यामल, अहमदाबाद में कालधर्म को प्राप्त हुए.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाशकीय

पूज्य आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज (श्री प्रियदर्शन) द्वारा लिखित और विश्वकल्याण प्रकाशन, महेसाणा से प्रकाशित साहित्य, जैन समाज में ही नहीं अपितु जैनेतर समाज में भी बड़ी उत्सुकता और मनोयोग से पढ़ा जाने वाला लोकप्रिय साहित्य है.

पूज्यश्री ने १९ नवम्बर, १९९९ के दिन अहमदाबाद में कालधर्म प्राप्त किया. इसके बाद विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट को विसर्जित कर उनके प्रकाशनों का पुनः प्रकाशन बन्द करने के निर्णय की बात सुनकर हमारे ट्रस्टियों की भावना हुई कि पूज्य आचार्यश्री का उत्कृष्ट साहित्य जनसमुदाय को हमेशा प्राप्त होता रहे, इसके लिये कुछ करना चाहिए. **पूज्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज** को विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्टमंडल के सदस्यों के निर्णय से अवगत कराया गया. दोनों पूज्य आचार्यश्रीयों की घनिष्ठ मित्रता थी. अन्तिम दिनों में दिवंगत आचार्यश्री ने राष्ट्रसंत आचार्यश्री से मिलने की हार्दिक इच्छा भी व्यक्त की थी. पूज्य आचार्यश्री ने इस कार्य हेतु व्यक्ति, व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के आधार पर सहर्ष अपनी सहमती प्रदान की. उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कोबातीर्थ के ट्रस्टियों ने इस कार्य को आगे चालू रखने हेतु विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के सामने प्रस्ताव रखा.

विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के ट्रस्टियों ने भी कोबातीर्थ के ट्रस्टियों की दिवंगत आचार्यश्री प्रियदर्शन के साहित्य के प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावना को ध्यान में लेकर **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबातीर्थ** को अपने ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य के पुनः प्रकाशन का सर्वाधिकार सहर्ष सौंप दिया.

इसके बाद **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा** ने संस्था द्वारा संचालित **श्रुतसरिता** (जैन बुक स्टॉल) के माध्यम से श्री प्रियदर्शनजी के लोकप्रिय साहित्य के वितरण का कार्य समाज के हित में प्रारम्भ कर दिया.

श्री प्रियदर्शन के अनुपलब्ध साहित्य के पुनः प्रकाशन करने की शृंखला में श्री आनन्दघन चौबीसी पर संक्षिप्त विवेचनरूप **"मारग साचा कौन बतावे?"** ग्रंथ को प्रकाशित कर आपके कर कमलों में प्रस्तुत किया जा रहा है.

For Private And Personal Use Only

प्रथम आवृत्ति के प्रकाशकों की अधूरी इच्छा पूर्ति का भी सद्भाग्य हमें मिला है. संस्था के सम्राट् संप्रति संग्रहालय में संगृहीत चौबीसी का चित्र साथ में योग्यरूप से इस आवृत्ति में समाविष्ट कर दिया गया हैं.

शेठ श्री संवेगभाई लालभाई के सौजन्य से इस प्रकाशन के लिये **श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ, हस्ते शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** की ओर से उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, इसलिये हम **शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** के ऋणी हैं तथा उनका हार्दिक आभार मानते हैं. आशा है कि भविष्य में भी उनकी ओर से सदैव उदारता पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा.

इस आवृत्ति का प्रूफरिडिंग करने वाले **डॉ. हेमन्त कुमार** तथा अंतिम प्रूफ करने हेतु **पंडितवर्य श्री मनोजभाई जैन** का हम हृदय से आभार मानते हैं. संस्था के कम्प्यूटर विभाग में कार्यरत **श्री केतनभाई शाह, श्री संजयभाई गुर्जर व श्री बालसंग ठाकोर** के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का सुंदर कम्पोजिंग किया.

आपसे हमारा विनम्र अनुरोध है कि आप अपने मित्रों व स्वजनों में इस प्रेरणादायक सत्साहित्य को वितरित करें. श्रुतज्ञान के प्रचार-प्रसार में आपका लघु योगदान भी आपके लिये लाभदायक सिद्ध होगा.

पुनः प्रकाशन के समय ग्रंथकारश्री के आशय व जिनाज्ञा के विरुद्ध कोई बात रह गयी हो तो मिच्छामि दुक्कड़म्. विद्वान पाठकों से निवेदन है कि वे इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करें.

अन्त में नये आवरण तथा साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत ग्रंथ आपकी जीवनयात्रा का मार्ग प्रशस्त करने में निमित्त बने और विषमताओं में भी समरसता का लाभ कराये ऐसी शुभकामनाओं के साथ...

ट्रस्टीगण

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाशक की ओर से

(प्रथम आवृत्ति में से)

श्री आनंदघनजी!

अलख की धूनी रमानेवाले योगीराज!

रसभरपूर जीवन के मस्त गायक!

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में हुए श्री आनंदघनजी द्वारा रचित चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की स्तवना त्यागवैराग्य एवं जिन्दा अध्यात्म को जीनेवाले साधकों के लिए अध्यात्म-यात्रा का स्पष्ट नक्शा है.... मानो कि 'ब्ल्यू प्रिन्ट' है!

अरावली के बीहड़ जंगलों में से गुजरते हुए योगीराज जब परमात्मा की स्तवना में लीन-तल्लीन होते होंगे, तब उनके स्वर की बुलंदी पूरे वातावरण को भरा पूरा बना देती होगी!

परमात्मा की स्तवना में जैसे उन्होंने प्रीति-भक्ति व अनुरक्ति के भावों को गूंथा है.... वैसे ही जिनशासन के गूढ़ रहस्य नय-निक्षेप और इच्छायोग.... सामर्थ्ययोग.... शास्त्रयोग की अतल गहराइयों की बातें भी की हैं!

बेशुमार विवेचनाएँ लिखी गई हैं, इन स्तवनों पर!

चार वर्ष पूर्व 'अरिहंत' [मासिक पत्र] में आचार्यदेव श्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी महाराज ने पत्र रूप में आनंदघन चौबीसी के स्तवनों पर सरस-सरल और संक्षेप में विवेचना लिखी थी, जो कि अत्यंत लोकप्रिय हुई थी। वही विवेचना आज ग्रंथ रूप में संकलित होकर 'मारग साचा कौन बतावे' के शीर्षक तले आप तक पहुँच रही है। इसका गुजराती अनुवाद भी साथ-साथ प्रकाशित हो रहा है।

स्तवना-विवेचना के साथ-साथ प्रत्येक तीर्थंकर की विशेष प्रार्थना-जीवन परिचय भी अलग से दिया गया है!

हालाँकि योजना तो बनाई थी सभी तीर्थंकर भगवन्तों के विशेष फोटो भी छपाने की। पर कुछ अपरिहार्य कारणवश फिलहाल फोटो इसमें सम्मिलित नहीं कर पा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक आप सभी के स्वाध्याय के लिए अटूट और भरपूर चिंतन-मनन व मंथन का संबल बनेगी-इसी कामना के साथ प्रकाशन में रह गई त्रुटियों के लिए क्षमायाचना!

महेसाणा
वि. सं. २०४४/ श्रावण
अगस्त/ १९८८

ट्रस्टीगण
श्री वि. क. प्र. ट्रस्ट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुक्रम

क्रम स्तवना	पृष्ठ
१. प्रारंभिक परिचय	१
२. श्री ऋषभदेव भगवान स्तवना	७
३. श्री अजितनाथ स्तवना	१४
४. श्री संभवनाथ स्तवना	२२
५. श्री अभिनंदनस्वामी स्तवना	३१
६. श्री सुमतिनाथ स्तवना	३९
७. श्री पद्मप्रभस्वामी स्तवना	४७
८. श्री सुपार्श्वनाथ स्तवना	५५
९. श्री चन्द्रप्रभस्वामी स्तवना	६३
१०. श्री सुविधिनाथ स्तवना	७२
११. श्री शीतलनाथ स्तवना	८१
१२. श्री श्रेयांसनाथ स्तवना	८९
१३. श्री वासुपूज्यस्वामी स्तवना	९७
१४. श्री विमलनाथ स्तवना	१०५
१५. श्री अनंतनाथ स्तवना	११४
१६. श्री धर्मनाथ स्तवना	१२३
१७. श्री शांतिनाथ स्तवना	१३२
१८. श्री कुंथुनाथ स्तवना	१४६
१९. श्री अरनाथ स्तवना	१५५
२०. श्री मल्लिनाथ स्तवना	१६४
२१. श्री मुनिसुव्रतस्वामी स्तवना	१७३
२२. श्री नमिनाथ स्तवना	१८२
२३. श्री नेमिनाथ स्तवना	१९९
२४. श्री पार्श्वनाथ स्तवना	२१२
२५. श्री महावीरस्वामी स्तवना	२२३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मारग साचा कौन बतावे?

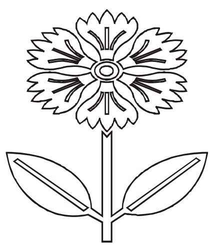

विवेचनकार

आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज

[श्री प्रियदर्शन]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मारग साचा कौन बतावे?

मारग साचा कौन बतावे

जाकुं जाईके पूछीए वे तो अपनी अपनी गावे

मारग....

मतवारा मतवाद वाद धर थापत निज मत नीका

स्याद्वाद अनुभव बिन ताका कथन लगत मोहे फीका

मारग....

मत वेदांत ब्रह्मपद ध्यावे निश्चयपख उर धारी

मीमांसक तो कर्म वदे जे उदय भाव अनुसारी

मारग....

बौद्ध कहे ते बुद्ध देव मम क्षणिक रूप दर्शावे

नैयायिक नयवाद ग्रहीने कर्त्ता कोऊ ठहरावे

मारग....

चार्वाक निज मनःकल्पना शून्यवाद कोऊ ठाणे

तिन में भेद अनेक भये हैं अपनी अपनी ताणे

मारग....

नय सर्वांग साधना जामें ते सर्वज्ञ कहावे

'चिदानंद' ऐसो जिनमारग खोजी होय सो पावे

मारग....

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

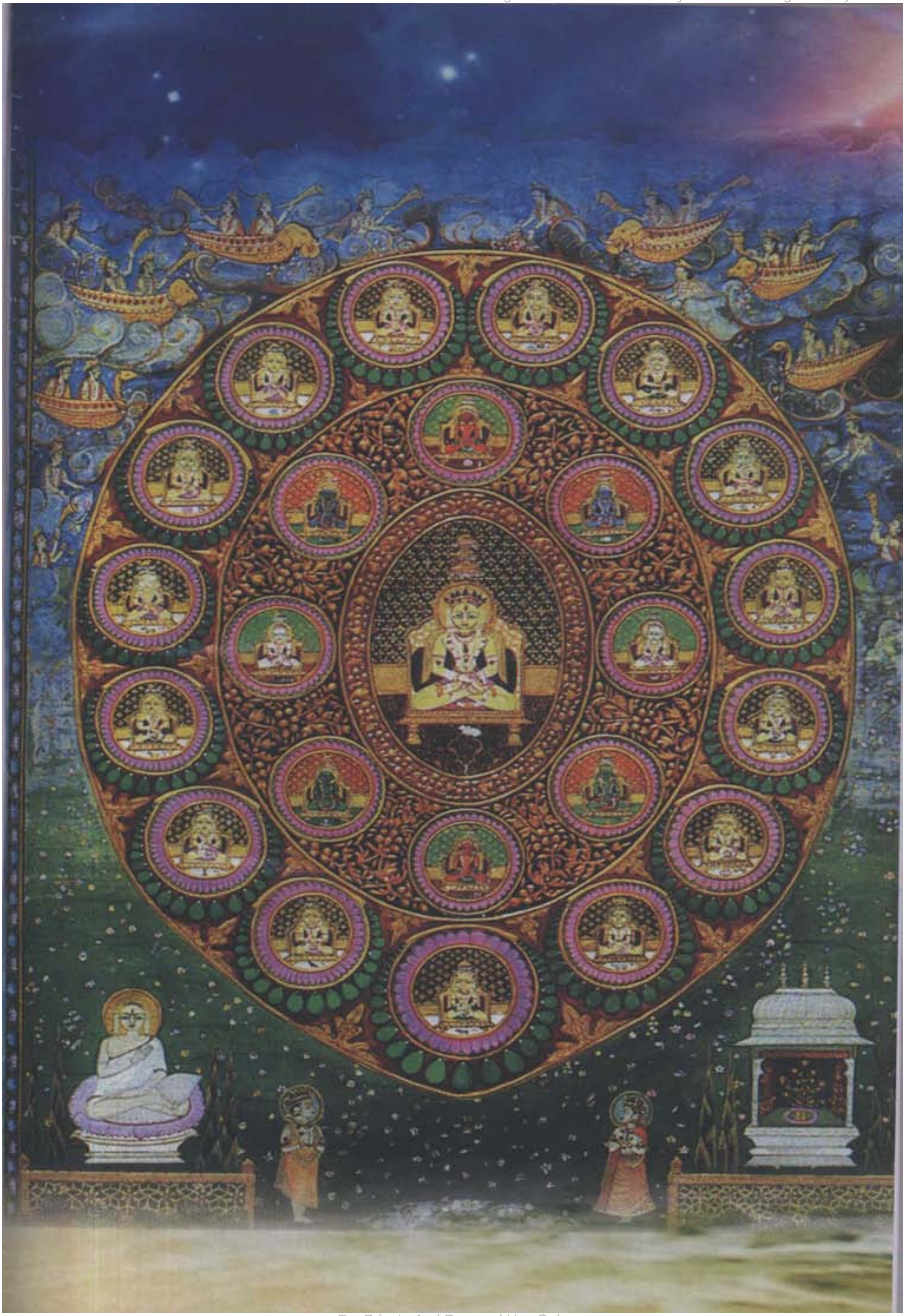

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **यदि मनुष्य परमात्मा को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी एवं अनन्त करुणा के सागर के रूप में माने-समझे और प्रेम करे तो मोह-माया-ममता-संकीर्णता एवं दुश्चिंतन से मुक्त हो सकता है।**
- **परमात्मा का मन्दिर तो परमात्म-सृष्टि में प्रवेश करने का द्वार है।**
- **परमात्मा के साथ आन्तर प्रीति का सम्बन्ध स्थापित होने पर दुनिया के सारे स्वार्थभरे सम्बन्ध नीरस बन जायेंगे और समग्र जीवसृष्टि के साथ मैत्री का पवित्र सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १ प्रारंभिक

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला।

'मृत्यु' विषयक पत्रों से तुझे खूब संतुष्टि मिली-जानकर आनन्द हुआ। 'मृत्यु' से तू निर्भय बना निराकुल बना-जानकर विशेष प्रसन्नता हुई। अब तू स्वस्थ मन से परमात्मा से आन्तर सम्बन्ध बाँध सकेगा।

आज, जब मनुष्य अनन्त तृष्णाओं के भीषण प्रवाह में बह रहा है, विश्व-समाज सर्वनाशी विभीषिकाओं के मुँह में फँसा जा रहा है....मनुष्य की भावुकता का शोषण हो रहा है....तब मनुष्य को किसके सहारे जीवन जीना? विकट प्रश्न है। सार्वत्रिक दृष्टि से समाधान नहीं मिलता है, व्यक्तिगत दृष्टि से समाधान मिलता है। वो समाधान है, परमात्मा की शरणागति।

चेतन, भारतीय संस्कृति का मूल है, परमात्म-श्रद्धा। भारतीय जीवन के रग-रग में परमात्मा की सत्ता घुली हुई है। यदि मनुष्य परमात्मा को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी एवं अनन्त करुणा के सागर के रूप में माने-समझे और प्रेम करे तो मोह-माया-ममता-संकीर्णता एवं दुश्चिंतन से मुक्त हो सकता है। उसका अन्तःकरण मलीनता से मुक्त, कषाय-कल्मषों के आवरण से रहित हो सकता है। यदि मनुष्य परमात्मा को महागोप, महानिर्यामक और महान् सार्थवाह के रूप में माने-समझे और प्रेम करे तो भय, चिन्ता, व्याकुलता एवं असहायता के दुर्भावों से मुक्त हो सकता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तू शायद यह बात पढ़कर सोचेगा कि परमात्मा अदृश्य हैं, अश्राव्य हैं, अस्पर्श्य हैं... अपने लिए... तो उनके साथ आंतर प्रीति कैसे हो सकती है? न हम अपनी आँखों से उनको देख सकते हैं, न उनको सुन सकते हैं... न उनको स्पर्श कर सकते हैं! हमारी सभी इन्द्रियाँ उनका संपर्क स्थापित करने में असमर्थ हैं... तो फिर उनसे आंतर सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय?

चेतन, परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करना होगा, मन से। मन भी तो एक इन्द्रिय ही है न? ज्ञानयुक्त पवित्र मन से सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। जिन महर्षिओं ने, जिन महात्माओं ने परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित किया था... और उन्होंने अपने दिव्य आन्तर अनुभवों को लिखे थे... ऐसे अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ आज भी हमें मिलते हैं। उन ग्रन्थों का ज्ञान होना चाहिए। ग्रन्थों का गहराई में जाकर अध्ययन करना चाहिए। मात्र एक-दो बार ग्रन्थ पढ़ लेने से काम नहीं चलेगा। ऐसा ज्ञान तभी प्राप्त हो सकेगा, जब मनुष्य स्वस्थ, शान्त, निराकुल और अव्यथित होगा। अध्ययन करते समय मन में अस्वस्थता, अशान्ति, आकुलता और व्यथा नहीं होनी चाहिए। चूँकि ज्ञान पाने का माध्यम मन ही है! यदि किसी की आँखें नहीं है, फिर भी वो अध्ययन कर सकता है, यदि उसका मन स्वस्थ है, नीरोगी है तो। परन्तु आँखें होते हुए भी मन स्वस्थ नहीं है, रोगी है तो वह अध्ययन नहीं कर सकेगा।

शास्त्रज्ञान के माध्यम से परमात्मतत्त्व के अस्तित्व के विषय में तू निःशंक बनेगा। परमात्मतत्त्व के स्वरूप-निर्णय में तू स्पष्ट बोध पा सकेगा। तेरी बुद्धि जितनी गहराई में जायेगी... उतनी तेरी श्रद्धा पुष्ट होती जायेगी। यदि तू स्वयं ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन नहीं कर सकता है... तो एक-दो महीने का समय लेकर मेरे पास आ जाना! मैं तुझे अध्ययन करवाऊँगा। परन्तु जब आये तब तेरा मन स्वस्थ, शान्त और निराकुल होना चाहिए।

हालाँकि इस पत्रमाला के माध्यम से मैं तुझे एक ग्रन्थ के विषय में ही लिखना चाहता हूँ - कि जो ग्रन्थ परमात्मा के विषय में ही है। परमात्मप्रीति और परमात्मभक्ति के विषय में बहुत ही रोचक बातें लिखी गई हैं। उस ग्रन्थ के विषय में लिखने से पूर्व मैं तुझे आज यह पूछना चाहता हूँ कि तू अगम-अगोचर ऐसे परमात्मा की दुनिया में... मन के पंखों से उड़ कर जाना चाहता है क्या? नयी दुनिया में प्रवेश करने का साहस तू कर सकेगा क्या? हाँ, तेरे लिए यह नयी दुनिया है!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तू मत मान लेना कि तू हमेशा मन्दिर में जाता है, इसलिए परमात्मा की दुनिया से तू परिचित है! मन्दिर तो परमात्मसृष्टि में प्रवेश करने का द्वार है मात्र! ज्यादातर लोग द्वार से ही वापस लौट आते हैं! जैसे बंबई में लोग 'गेट वे ऑफ इन्डिया' देख कर ही लौट जाते हैं! द्वार मात्र देखने के लिए नहीं होता है... प्रवेश के लिए होता है। मंदिर द्वार है... परमात्मसृष्टि में प्रवेश करने के लिए।

परमात्मा का नाम, परमात्मा की मूर्ति, परमात्मा के मन्दिर... ये सब माध्यम हैं, परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने के। आन्तर प्रीति का सम्बन्ध! आन्तर भक्ति का सम्बन्ध! यह सम्बन्ध हो जाने पर... दुनिया के सारे स्वार्थ भरे सम्बन्ध नीरस बन जायेंगे... और समग्र जीवसृष्टि के साथ मैत्री का पवित्र सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा। सारे भय मिट जायेंगे। सारी चिन्तायें नष्ट हो जायेंगी। मन प्रफुल्लित हो जायेगा। प्रसन्नता कभी जायेगी नहीं। बाह्य परिस्थितियों की प्रतिकूलता होने पर भी तू अस्वस्थ नहीं बनेगा। हर परिस्थिति में तू स्वस्थ, प्रसन्न और संयत बना रहेगा।

प्रिय चेतन, यह पत्र मैं तुझे दक्षिण के एक भव्य एवं रमणीय तीर्थ में बैठकर लिख रहा हूँ। इस कुल्पाक तीर्थ का प्राचीन इतिहास है...। कितनी नयन-मनोहर प्रतिमायें हैं इस तीर्थधाम में! भगवान आदिनाथ, भगवान महावीर स्वामी और भगवान नेमनाथ, तीन गर्भद्वारों में बिराजमान हैं। सभी श्याम प्रतिमायें हैं, और सभी अर्ध पद्मासनस्थ हैं। सुविशाल रंगमंडप है और उत्तुंग शिखर है। यहाँ शान्ति है... स्वच्छता है और पवित्र वातावरण है। परमात्मसृष्टि में स्वच्छन्द विचरण करने के लिए ऐसे तीर्थ कितने उपयुक्त होते हैं!

मंदिर के इर्द-गिर्द विशाल पुष्प वाटिका है...! धर्मशाला है और भोजनशाला भी है। गाँव से कुछ दूरी पर यह तीर्थ आया हुआ है... इसलिए वातावरण शान्त है। ऐसा वातावरण आध्यात्मिक साधना में खूब सहायक बनता है। मैंने तुझे जो परमात्म-सृष्टि में प्रवेश करने की बात लिखी है, वो भी एक प्रकार की आध्यात्मिक साधना ही है। यहाँ तू चाहे तो परमात्मा की प्रतिमा के सामने दो-चार घंटा ध्यान कर सकता है। चूँकि रविवार के अलावा यात्रिकों की भीड़ नहीं होती है। कोलाहल नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि ऐसे तीर्थधाम, परमात्मतत्त्व से आंतर-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बहुत ही उपयुक्त होते हैं। 'मुझे परमात्मा से आन्तर प्रीति-सम्बन्ध बाँधना है', इस निर्धार के साथ तू कभी इस तीर्थ में आना! तीन दिन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कम से कम रहना और दर्शन-पूजन-स्तवन-ध्यान वगैरह करना! तू आनन्दविभोर हो जायेगा। एक बात याद रखना-तीर्थों में संयत और जितेन्द्रिय बनकर रहना।

जिस ग्रन्थ और ग्रन्थकार के विषय में लिखना है... वो दूसरे पत्र में लिखूँगा। तीर्थयात्रा के बाद मद्रास की ओर पदयात्रा शुरू होगी। सभी को धर्मलाभ -

कुल्पाक तीर्थ

२७-१-८४

- **प्रियदर्शन**

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री ऋषभदेव भगवंत

स्तुति

आदिमं पृथिवीनाथमादिमं निष्परिग्रहम्।
आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभ-स्वामिनं स्तुमः।।

प्रार्थना

धर्म संस्कृति के स्थापक श्री आदिनाथ थे वीतरागी
जंगलों में जा ध्यान लगाया सुख-संपत्ति सारी त्यागी।
नाभिनंदन थे वो माता मरुदेवी के दुलारे,
प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को वंदन नित्य हमारे ।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री ऋषभदेव भगवंत

१	**माता का नाम**	*मरूदेवा*
२	**पिता का नाम**	*नाभिकुलकर*
३	**च्यवन कल्याणक**	*आषाढ कृष्णा ४/अयोध्या*
४	**जन्म कल्याणक**	*चैत्र कृष्णा ८/अयोध्या*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*चैत्र कृष्णा ८/अयोध्या [विनीतानगरी]*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*फाल्गुन कृष्णा ११/पुरिमताल*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*माघ कृष्णा १३/अष्टापद पर्वत*
८	**गणधर**	*संख्या ८४/प्रमुख पुंडरीक*
९	**साधु**	*संख्या ८४०००/प्रमुख ऋषभसेन*
१०	**साध्वी**	*संख्या ३ लाख/प्रमुख ब्राह्मी*
११	**श्रावक**	*संख्या ३ लाख ५ हजार/प्रमुख श्रेयांस*
१२	**श्राविका**	*संख्या ५ लाख ५४ हजार/प्रमुख सुभद्रा*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*वटवृक्ष*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*गोमुख*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*चक्रेश्वरी*
१६	**आयुष्य**	*८४ लाख पूर्व*
१७	**लंछन [चिह्न - Mark]**	*वृषभ-बैल*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*सर्वार्थसिद्धविमान [अनुत्तर देवलोक]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*वज्रनाभ के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*१३*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*१ हजार बरस*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*८३ लाख पूर्व*
२३	**शरीर-वर्ण [आभा]**	*सुवर्ण*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*सुदर्शना*
२५	**नाम-अर्थ**	*प्रथम स्वप्न में माता के द्वारा वृषभ देखने के कारण*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **किसी न किसी स्वार्थ से जो प्रीति की जाती है, वह प्रीति नहीं है। रूप के माध्यम से, रुपयों के माध्यम से या किसी इन्द्रियजन्य सुखों के माध्यम से होने वाला प्रेम, प्रेम नहीं है। वह सौदा होता है। प्रीत निःस्वार्थ होती है। जिसमें कोई वैषयिक सुख की कामना न हो, भौतिक सुखों की अभिलाषा न हो-वह प्रीत सच्ची प्रीत होती है।**
- **संसार में लोग जो एक-दूसरे से प्रीति करते हैं, प्रेम करते हैं, वह प्रीति 'सोपाधिक' होती है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : २ श्री ऋषभदेव स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। प्रत्युत्तर तुरन्त लिखना था, परंतु इसी विषय में चिंतन-मनन चल रहा था! इसलिए कुछ विलंब हुआ है।

जिनशासन में परमात्म-स्तवना की जो एक सुंदर परंपरा चल रही है, उसको यदि शंकराचार्यजी पढ़ते तो वे जैनदर्शन को 'नास्तिक' नहीं कहते! जैनदर्शन में परमात्म-प्रीति एवं परमात्म-भक्ति को कितना महत्त्वपूर्ण बताया गया है-वह तो प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी एवं गुजराती भाषा में जो परमात्म-स्तवनाएँ लिखी गई हैं, उसे पढ़ें तो ही समझा जा सके।

मैं तुझे, योगी आनंदघनजी ने जो २४ तीर्थंकरों की स्तवना की है, उन २४ स्तवनाओं का कुछ आस्वाद कराना चाहता हूँ। उन्होंने २४ काव्यों की रचना कर, २४ तीर्थंकरों के प्रति अपनी प्रीति-भक्ति के अपूर्व भावों को बहाये हैं।

आनन्दघन कोई सामान्य साधु... बाबा... जोगी नहीं थे। सर्वज्ञ-शासन के मर्म को उन्होंने पा लिया था। जिनोक्त तत्त्वों की गहराई में गये हुए थे वे महायोगी। ऐसा माना जाता है कि न्याय-विशारद उपाध्याय श्री यशोविजयजी के वे समकालीन थे। राजस्थान में मेड़ता सिटी में उनका स्वर्गवास हुआ था।

आनन्दघनजी जनसंपर्क से दूर रहते थे। सामाजिक प्रदूषणों से वे मुक्त रहे थे। इसलिए ही वे लोकभाषा में इतनी रसभरपूर काव्य-रचना कर पाये थे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अलबत्ता, उनकी काव्यरचनाएँ सरल नहीं हैं... सुबोध भी नहीं हैं... फिर भी उन काव्यों में माधुर्य है... रसिकता है... भावोद्रेक है और अगम-अगोचर की मस्ती है।

चेतन, प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव की स्तवना उन्होंने जो की है, वह लिखता हूँ :

ऋषभ-जिनेश्वर प्रीतम माहरो, और न चाहूं कंत!
रीझ्यो साहिब संग न परिहरे, भांगे सादि-अनन्त...
प्रीत-सगाई जग में सहु करे, प्रीत-सगाई न कोय,
प्रीत-सगाई निरुपाधिक कही, सोपाधिक धन खोय...
कोई कंत कारण काष्ट भक्षण करे, मलशुं कंत ने धाय,
ए मेलो नवि कहीय संभवे, मेलो ठाम न ठाय...
कोई पतिरंजन अति घणुं तप करे, पतिरंजन तनताप,
ए पतिरंजन में नवि चित्त धर्युं, रंजन धातु मिलाप...
कोई कहे लीला अलख-ललख तणी, लख पूरे मन आश,
दोषरहितने लीला नवि घटे, लीला दोष-विलास...
चित्त प्रसन्ने रे पूजनफल कह्युं, पूजा अखंडित एह,
कपट रहित थई आतम-अर्पणा आनन्दघन-पद रेह...

आनन्दघनजी परमात्मा से प्रेम-संबंध करने चले हैं। वे वचनबद्ध हो जाते हैं : 'हे ऋषभजिन! तू ही मेरा प्रीतम है... तेरे सिवा मेरा दूसरा कोई कंत नहीं है। जो वीतराग है, जो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है-वो ही मेरा कंत है, प्रीतम है।'

हालाँकि परमात्मा के साथ प्रीति एकतरफा ही होती है। संसार की प्रीति उभय की होती है। परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए जीवनपर्यंत उनके साथ प्रीत करते रहना है। बस, एक बार परमात्मा प्रसन्न हो गये... कि फिर कभी भी वे बिछड़ने वाले नहीं हैं।

एक बार परमात्मा की ओर से प्रीति प्राप्त हुई... अनन्तकाल तक वह प्रीति भंग होनेवाली नहीं! इसको शास्त्रीय भाषा में 'सादि-अनंत' कहते हैं। 'भांगे' का अर्थ होता है 'प्रकार'। 'सादि-अनंत, प्रकार की प्रीति कवि को अभिप्रेत है। प्रीत हो जाय और टूट जाय, वैसी प्रीति क्या काम की?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परंतु संसार में लोग जो एक-दूसरे से प्रीति करते हैं, प्रेम करते हैं... वह प्रीति 'सोपाधिक' होती है। सोपाधिक = उपाधिसहित। उपाधि = स्वार्थ। किसी न किसी स्वार्थ से जो प्रीति की जाती है, वह प्रीति नहीं है। रूप के माध्यम से, रुपयों के माध्यम से या किसी इन्द्रियजन्य सुखों के माध्यम से होनेवाला प्रेम, प्रेम नहीं है... वह सौदा होता है। प्रीत निःस्वार्थ होती है। जिसमें कोई वैषयिक सुख की कामना न हो, भौतिक सुखों की अभिलाषा न हो... वह प्रीत सच्ची प्रीत होती है। परमात्मा के साथ निरुपाधिक प्रीति ही करनी चाहिए। यानी परमात्मा से कोई वैषयिक सुखों की याचना-प्रार्थना नहीं करनी चाहिए।

'मेरे पति से मेरा प्रेम सच्चा था', यह बात सिद्ध करने के लिए कोई स्त्री पति के मृतदेह को अपने उत्संग में लेकर चिता में जल जाती है। 'इस प्रकार मरने से दूसरे जन्म में पुनः वही पति मिलता है'- ऐसी भ्रान्त धारणा भी दुनिया में प्रचलित थी और हजारों महिलाओं ने इस भ्रान्ति में अग्निस्नान किया था। कवि कहते हैं कि 'ए मेलो नवि कही य संभवे।' पति-पत्नी का इस प्रकार जलकर मरने से पुनःमिलन संभवित ही नहीं है।

कुछ लोग परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए घोर तपश्चर्या करते हैं... घोर कष्ट सहन करते हैं। वे लोग ऐसे खयाल में होते हैं कि 'तपश्चर्या करनेवालों पर और कष्ट सहन करनेवालों पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं।' कैसे-कैसे गलत खयाल दुनिया में प्रचलित हैं। आनंदघनजी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं : 'ए पतिरंजन में नवि चित्त धर्यु।' मैं ऐसे पतिरंजन को जरा भी पसंद नहीं करता हूँ। इस प्रकार प्रियतम ऐसे परमात्मा को प्रसन्न नहीं किये जा सकते हैं।

चेतन, तेरे मन में प्रश्न उठेगा कि 'क्या, परमात्मा भक्त के ऊपर प्रसन्न होते हैं? प्रसन्न होने का अर्थ क्या?'

संसार में जैसे एक श्रीमंत गरीब के ऊपर प्रसन्न हो जाय और उसको हजार/दो हजार या लाख/दो लाख रुपये दे देता है, अथवा कोई देव-देवी किसी भक्त पर प्रसन्न होकर संतान का या समृद्धि का सुख दे देते हैं, उस प्रकार परमात्मा किसी भक्त ऊपर प्रसन्न नहीं होते हैं-यह बात स्पष्टता से समझना।

अपना हृदय विशुद्ध बने, यानी कषाय-कल्मषों से मुक्त बने, वैषयिक वासनाओं से विरक्त बने, और विशुद्ध हृदय में परमात्मा का स्पष्ट प्रतिबिंब गिरता रहे... तब समझना कि परमात्मा अपने पर प्रसन्न हुए हैं। इसी दृष्टि से कवि ने कहा कि 'रंजन धातु मिलाप।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसे मनुष्य के शरीर की प्रमुख धातु होती है वीर्य, वैसे परमात्मा की धातु होती है उनकी आज्ञा। परमात्मा की आज्ञाओं का हम पालन करें, उसी को कहते हैं धातुमिलाप! यह धातुमिलन ही सच्चा परमात्मरंजन है। परमात्मा को प्रसन्न करने का यही सही मार्ग है - आज्ञापालन! ज्यों-ज्यों परमात्मा की आज्ञाओं का पालन होता जाता है, त्यों-त्यों परमात्मा के साथ मन-हृदय जुड़ते जाते हैं और परम आनंद की अनुभूति होने लगती है। प्रीति करने का प्रयोजन यही होता है न? आत्मानंद की अनुभूति।

नहीं, कोई दूसरा प्रयोजन भी बताते हैं। इच्छाओं की-आशाओं की पूर्ति! 'भगवान् प्रसन्न हो जाय तो अपनी सारी इच्छायें परिपूर्ण हो जाय। अलख की लीला अपरंपार होती है।' कुछ लोग भगवान से चमत्कारों की अपेक्षा रखते हुए दर्शन-पूजन-कीर्तन करते रहते हैं।

श्री आनंदघनजी कहते हैं : 'दोषरहित ने लीला नवि घटे...' जो सभी दोषों से मुक्त होते हैं, ऐसे परमात्मा में चमत्कार... या लीला घटित नहीं होती है। लीला... या चमत्कार... यह सब दोषित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। परमात्म-प्रेम में ऐसी अभिव्यक्तियों का कोई महत्त्व नहीं होता है।

परमात्मा के प्रति आंतर प्रीति बंध जाती है, तब उनकी वीतरागतामयी प्रतिमा में जीवंतता प्रतीत होती है। उनका दर्शन-पूजन-स्तवन करने में अपूर्व आह्लाद अनुभूत होता है। दिन और रात... निरंतर मन प्रसन्नता का अनुभव करता रहता है। बाह्य संयोग अनुकूल हो या प्रतिकूल, प्रिय का संयोग हो या वियोग, वातावरण विषाक्त हो या अमृतमय... परमात्म-प्रेमी की चित्तप्रसन्नता अक्षुण्ण रहती है। इसी अवस्था को आनंदघनजी 'अखंड पूजा' कहते हैं!

परमात्मा के मन्दिर में मात्र दर्शन-पूजन करते समय ही मन प्रसन्न-प्रफुल्लित रहे और मंदिर से बाहर निकलने के बाद जो प्रसन्नता विलीन हो जाती हो, जो प्रफुल्लितता पलायन कर जाती हो, तो वह पूजा अखंडित पूजा नहीं है, खंडित पूजा है वह। कवि ने परमात्म-पूजन का कैसा सुन्दर फल बता दिया है? तात्कालिक फल बताया है यह। पुण्यकर्म का बंधन और उससे मिलने वाले सुख... वगैरह तो परोक्ष फल हैं।

चेतन, परमात्मा के चरणों में निष्कपट भाव से आत्म-समर्पण कर दे। मन में कोई भौतिक कामना नहीं... कोई वैषयिक सुखों की प्रार्थना नहीं... मात्र परमोच्च व्यक्तित्व से प्रेम! बस, यह प्रेम ही परमात्मा के पास पहुँचने का पथ है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रेम पाने के लिए हृदय शिशु जैसा निर्दोष होना चाहिए। हृदय में सहजता होनी चाहिए, कृत्रिमता नहीं। हृदय में संवादिता होनी चाहिए, विसंवाद नहीं। निष्कपट हृदय से किया हुआ समर्पण, तुझे परमानन्दपद का स्पर्श करवायेगा।

भगवान ऋषभदेव को 'प्रियतम' बनाकर आनन्दघनजी उनकी प्रेयसी बन गये हैं! प्रेयसी बनकर उन्होंने ऋषभदेव से उत्कृष्ट प्रेम-निवेदन किया है।

चेतन, आनन्दघनजी की इस प्रथम स्तवना में तूने क्या अनुभव किया... तू लिखना। हो सके तो एक-एक स्तवना को कंठस्थ कर लेना।

परमात्मा में तेरा मन लीन बनता रहे... यही मंगल कामना!

- **प्रियदर्शन**

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अजितनाथ भगवंत

स्तुति

अर्हन्तमजितं विश्व-कमलाकर-भास्करम्।
अम्लान-केवलादर्श-सङ्क्रान्त-जगतं स्तुवे ।।

प्रार्थना

जितशत्रु नंदन तुमने सब आंतर शत्रु जीत लिए
ओ विजयासुत! विश्व विजेता! त्रिभुवन तुम से प्रीत किये।
अजितनाथ अविनाशी जिनवर! वास्तव में तुम अजित हुए
सृष्टि के सब जीव तुम्हारे श्रीचरणों में नमित हुए ।।

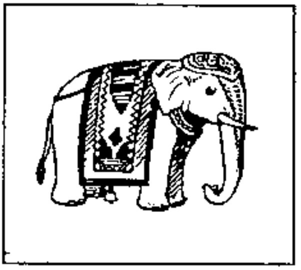

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अजितनाथ भगवंत

१	माता का नाम	*विजयारानी*
२	पिता का नाम	*जितशत्रु राजा*
३	च्यवन कल्याणक	*वैशाख सुद १३/अयोध्या*
४	जन्म कल्याणक	*माघ शुक्ल ८/अयोध्या*
५	दीक्षा कल्याणक	*माघ शुक्ल ९/अयोध्या*
६	केवलज्ञान कल्याणक	*पौष शुक्ल ११/अयोध्या*
७	निर्वाण कल्याणक	*चैत्र शुक्ला ५/सम्मेतशिखर*
८	गणधर	*संख्या १०२ प्रमुख सिंहसेन*
९	साधु	*संख्या १ लाख प्रमुख सिंहसेन*
१०	साध्वी	*संख्या ३ लाख ३ हजार प्रमुख फाल्गुनी*
११	श्रावक	*संख्या २ लाख ९८ हजार प्रमुख सगर चक्रबर्ती*
१२	श्राविका	*संख्या ५ लाख ४५ हज़ार*
१३	ज्ञानवृक्ष	*सप्तपर्ण*
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	*महायक्ष*
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	*अजितबला*
१६	आयुष्य	*७२ लाख पूर्व*
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	*हाथी*
१८	च्यवन किस देवलोक से?	*विजय [अनुत्तर विमान]*
१९	तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन	*विमलवाहन के भव में*
२०	पूर्वभव कितने?	*३*
२१	छद्मस्थावस्था	*१२ वर्ष*
२२	गृहस्थावस्था	*७१ लाख पूर्व एवं १ पूर्वांग*
२३	शरीरवर्ण [आभा]	*सुवर्ण*
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	*सुप्रभा*
२५	नाम-अर्थ	*सोगठे बाजी में माता ने राजा को जीत लिया*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **अजित, मैं पुरुष कैसे? पुरुष में तो पौरुष होता है, मेरे में पौरुष ही कहाँ है? यदि मेरे में पौरुष होता तो मैं राग-द्वेष पर विजय पा लेता। मैं पुरुष कहलाने योग्य नहीं हूँ।**
- **यदि अंध मनुष्य दूसरे अंधे को मार्ग बताता है, तो वह दूसरे अंधे को जिनप्रणीत मार्ग से दूर ले जाता है। या तो उन्मार्गगामी बन जाता है।**
- **तर्क की जाल में फँसने वाले सिवाय वाद-विवाद और कुछ भी नहीं पाते हैं। वाद-विवाद से कभी अगोचर तत्त्वों का निर्णय नहीं हो सकता है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : ३ श्री अजितनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा भक्तिसभर पत्र पढ़कर बहुत आनन्द हुआ। प्रथम तीर्थंकर की स्तवना का विवेचन तुझे अच्छा लगा, जानकर मन प्रसन्न हुआ। आज मैं भगवान् अजितनाथ की स्तवना का संक्षिप्त विवेचन करूँगा।

चेतन, मनुष्य जिसके साथ हार्दिक स्नेह के स्वस्तिक रचाता है, जिसके प्रति आन्तर प्रीति के पुष्प खिल जाते हैं, उसके मिलन की चाहना... सानिध्य पाने की तमन्ना... उसी में विलीन हो जाने की अभिप्सा पैदा हुए बिना नहीं रहती है।

अध्यात्मयोगी आनन्दघनजी ने स्वयं विरक्त होने पर भी... प्रथम तीर्थंकर के साथ प्रीति बाँध ली। परमात्मा के साथ वे प्रेम के बंधन से बंध गये। स्वयं बंध गये। कभी मन को बन्धन भी अच्छे लगते हैं न? रागी-द्वेषी जीव से विरक्ति इसी दृष्टि से उपादेय है... कि जीवात्मा वीतरागी-वीतद्वेषी से आसक्ति कर सके!

परमात्मा से प्रेम करने के बाद, कवि को अब इस दुनिया में रहना सुहाता नहीं है...। वे परमात्मा के पास पहुँचने का पथ खोजते हैं।

परमात्म-मिलन के लिए अधीर बनी हुई आत्मा उनके पास जाने के लिए बावरी बनकर मार्ग खोजती है। मार्ग खोजने के लिए महायोगी के मन में कैसा मंथन चला होगा और इस स्तवना की रचना हो गई होगी... वह तू सोचना!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पंथडो निहालुं रे बीजा जिन तणो, अजित-अजित गुणधाम।
जे तें जित्या रे तेणे हुं जितीयो, पुरुष किस्युं मुज नाम?
चरम नयणे करी मारग जोवतां, भूल्यो सयल संसार,
जेणे नयणे करी मारग जोइये, नयण ते दिव्य विचार...
पुरुष-परंपर अनुभव जोवतां, अंधोअंध पलाय,
वस्तु विचारे जो आगमे करी, चरण धरण नहीं ठाय...
तर्क विचारे रे वाद परंपरा, पार न पहोंचे रे कोय,
अभिमत वस्तु रे वस्तुगते कहे, ते विरला जग जोय...
वस्तु विचारे रे दिव्य नयण तणो, विरह पड्यो निरधार,
तरतम जोगे रे तरतम वासना, वासित बोध आधार...
काल-लब्धि लही पंथ निहालशुं, ए आशा अवलंब,
ए जन जीवे रे जिनजी जाणजो, आनन्दघन मत अंब...

चेतन, तेरे मन में एक प्रश्न पैदा हो सकता है : 'प्रीत की है ऋषभदेव से और मार्ग खोजते हैं, अजितनाथ के पास जाने का... यह कहाँ तक उचित है?'

ऋषभ कहो या अजित कहो, दोनों सर्वज्ञ-वीतराग हैं, दोनों तीर्थंकर हैं, दोनों परमात्मस्वरूप हैं। मात्र नाम का भेद है, स्वरूप में कोई भेद नहीं है। कवि को परमात्म-स्वरूप से मतलब है। उनको २४ तीर्थंकरों के माध्यम से परमात्म-स्वरूप की ही स्तवना करनी थी।

हे अजित!

हे मेरे हृदयेश्वर! आप एक-दो या हजार-दो हजार गुणों से युक्त नहीं हैं, आप तो गुणों के धाम हो। अनन्त-अनन्त गुणों के धाम... आपका समग्र व्यक्तित्व ही गुणमय है। मैं आपके पास आने का मार्ग देखता हूँ... प्रभो! आप कैसे अजित बने? किनको जीतकर आप अजित बने...? आप जब माता विजयादेवी के उदर में थे तब शतरंज के खेल में हमेशा माता विजयादेवी राजा जितशत्रु को हराती थी। वे जीतती थी। अपने विजय की स्मृति में माता ने आपका नाम 'अजित' रखा! और आप वास्तव में अजित बने... आन्तर शत्रुओं को पराजित करके।

श्रीमद् आनन्दघनजी अजित के मार्ग को मात्र ऊपर-ऊपर से नहीं देख रहे हैं... मार्ग अवलोकन करते हैं। जिस मार्ग पर हमें चलना है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस मार्ग को मात्र देखने से नहीं चलता, मार्ग का चारों तरफ से अवलोकन करना पड़ता है।

'जे तें जित्या रे तेणे हुं जितीओ'

जिनको तूने जीत लिए अजित! उन्होंने मुझे जीत लिया है। जिन राग-द्वेष को तूने जीत लिए, उन राग-द्वेष ने मुझे जीत लिया है। मैं राग-द्वेष के परवश बन गया हूँ, राग-द्वेष की अधीनता है मेरी। अजित बनने का मार्ग है, राग-द्वेष, पर विजय पाने का!

पुरुष किस्युं मुज नाम?

अजित, मैं पुरुष कैसे? पुरुष में तो पौरुष होता है... मेरे में पौरुष ही कहाँ है? यदि मेरे में पौरुष होता तो मैं राग-द्वेष पर विजय पा लेता...। मैं पुरुष कहलाने योग्य नहीं हूँ। तेरे मार्ग पर मैं चलूँ कैसे? पुरुषार्थ के बिना राग-द्वेष पर विजय नहीं पाया जा सकता है। अजित, तू ही सच्चा पुरुष है... तूने आन्तर शत्रुओं का घोर पराभव कर विजय पा लिया है।

प्रभो, तेरे पास पहुँचने का मार्ग दिव्यदृष्टि से ही देखा जा सकता है। चर्मदृष्टि से तेरे मार्ग को देखने की चेष्टा कर तो मैं आज दिन तक संसार की चार गतियों में भटक रहा हूँ। चर्मदृष्टि से मार्ग खोजने जो-जो गये थे, भूले पड़ गये। अनेक मार्गो की भूल-भूलैया में उलझ गये... तेरे मार्ग को वे देख नहीं पाये...।

चेतन, प्रभु को पाने का मार्ग देखने के लिए दुनियादारी की दृष्टि नहीं चलती है, उसके लिए तो चाहिए दिव्यदृष्टि! सर्वज्ञ की दृष्टि चाहिए, जिनवचन की दृष्टि चाहिए।

पुरुष-परंपर अनुभव जोवतां अंधो अंध पुलाय!

आनन्दघनजी अब अपने मनोमंथन को अभिव्यक्त करते हैं। जब आज मनुष्य के पास केवलज्ञान की दिव्यदृष्टि नहीं है, मनःपर्ययज्ञान की या अवधिज्ञान की दिव्य आँखें नहीं हैं... तब इस समय परमात्मा के पास पहुँचने का मार्ग किसको पूछना?

यदि कोई कहता है : महापुरुषों की परम्परा चली आ रही है... उस परंपरा में चल रहे किसी महापुरुष के अनुभव को पूछो! उनके अनुभव को श्रद्धेय बनाकर मार्ग को खोजो!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं, वह तो 'अंधों के पीछे अंधों का चलना'-जैसी बात बन जायेगी। यदि परंपरा में चलने वाले लोग पहले से ही गलत मार्ग पर चले हुए हों तो? उनके पीछे चलने वाले गलत रास्ते पर ही चलेंगे। श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने कहा है-

'अंधो अंध पहं निंतो दूरमद्धाण गच्छति।
आवज्जे उप्पह जंतू अदुवा पंथाणु गामिए ।।'

यदि अंध मनुष्य दूसरे अंध को मार्ग बताता है, तो वह दूसरे अंधे को जिनप्रणीत मार्ग से दूर ले जाता है। या तो उन्मार्गगामी बन जाता है, अथवा दूसरे ही मार्ग पर चल देता है। इसलिए मार्ग खोजने का कार्य पुरुष-परम्परा के माध्यम से नहीं करना चाहिए।

वस्तुविचारे रे जो आगमे करी, चरणधरण नहीं ठाय...

हालाँकि आनन्दघनजी पुरुष-परंपरा के अनुभवों को मानने वाले थे, परन्तु जो पुरुष-परम्परा जिनाज्ञानुसार नहीं होती, उसको वे अंधों की परम्परा कह कर अपनी नाराजगी व्यक्त करते हैं। आनन्दघनजी का जो समय था वह शिथिलता का समय था। साधु यति बने हुए थे। यति लोगों ने अपने मंत्र-तंत्रादि के बल से जैन संघ को प्रभावित किया हुआ था। अपने स्वार्थों की संतुष्टि के सिवा कुछ नहीं था। कुछ गलत परम्पराएँ स्थापित हो गई थी... और वे ही मोक्षमार्ग के रूप में प्रसिद्ध हो गई थी। आनन्दघनजी ने तो जिनागमों का गहरा अध्ययन किया हुआ था। अन्ध-परम्परा को छोड़कर वे जब आगम ग्रन्थों के माध्यम से मार्ग देखते हैं, तब वे उदास हो जाते हैं।

एक बात-अल्प बुद्धि वाले जीव आगमों को समझ नहीं सकते। दूसरी बात-आगमों में बताये हुए मोक्ष मार्ग पर पैर रखने की भी शक्ति वर्तमानकालीन निःसत्त्व जीवों में नहीं है। आगम ग्रन्थों में जो चारित्रमार्ग बताया गया है, वह इतना दुष्कर है कि उसका यथार्थ पालन करना अशक्य लगता है। आगमों का ज्ञान होना आज भी संभवित है, परंतु उसी के अनुसार जीवन जीना असंभव सा लगता है। तो फिर किसके आधार पर मार्ग खोजूँ? यदि मार्ग नहीं मिलता है तो मंजिल तक पहुँचने की मेरी तमन्ना मुरझा जायेगी क्या?

तर्क विचारे रे वाद परंपरा...

तो क्या तर्क के आधार पर मार्ग खोजा जाय? अध्यात्म मार्ग में तर्क का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कितना स्थान है? तर्क की जाल में फँसने वाले सिवाय वाद-विवाद और कुछ भी नहीं पाते हैं। वाद-विवाद से कभी अगोचर तत्त्वों का निर्णय नहीं हो सकता है। तर्क में गति है, प्रगति नहीं है। तर्कों की कोई सीमा नहीं है।

तो फिर मोक्षमार्ग का निर्णय कैसे किया जाय? क्या सत्य तत्त्वों का प्रतिपादन करने वालों का सहारा लिया जाय?

अभिमत वस्तु रे वस्तुगते कहे ते विरला जग जोय!

किसी भी तत्त्व को उसके मूल स्वरूप में, अपने पूर्वाग्रहों को छोड़कर, अपने-अपने मत-सम्प्रदायों की मान्यताओं को छोड़कर कहने वाले कितने लोग होते हैं दुनिया में? लाख में कोई एक मिलेगा। जिनोक्त तत्त्वों की व्याख्यायें सभी अपने-अपने ढंग से कहते हुए स्वमत को पुष्टि कर रहे हैं। शास्त्र-वचनों का, अपने मत की पुष्टि के लिये उपयोग करते हैं। कौन ऐदम्पर्य का पर्यालोचन करता है? भावनाज्ञान के मानसरोवर में कौन गोता लगाता है? एक कवि ने इस बात को कही है-

'मारग साचा कौन बतावे?

जाकुं जाय के पूछिये वे तो अपनी अपनी गावे...'

हे अजित, तेरे पास आने का मार्ग किसके पास जा कर मैं पूछूँ? मैं तो उलझन में फँस गया हूँ।

आनन्दघनजी अफसोस व्यक्त करते हैं-

वस्तु विचारे रे दिव्य-नयण तणो विरह पड्यो निरधार...

दिव्यदृष्टि का विरहकाल है। यथार्थ-वास्तविक तत्त्वचिंतन के लिए दिव्य ज्ञानदृष्टि चाहिए... उसका सहारा चाहिए। केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान... जैसे दिव्यज्ञान आज यहाँ किसी के पास नहीं हैं। तत्त्वों का चिन्तन करते समय जब मन शंकाओं में उलझ जाता है तब समाधान किसके पास जाकर करें?

आज तो हमारे लिए विशिष्ट क्षयोपशम वाले शास्त्रज्ञ पुरुष ही आधारभूत हैं। जिनके पास उत्सर्ग-अपवाद का ज्ञान हो, निश्चय-व्यवहार का बोध हो... और जो निष्काम-निःस्पृह ज्ञानी हो... वे ही कुछ पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। ऐसे महापुरुषों का समागम होना भी आसान नहीं है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आनन्दघनजी फिलहाल प्रभु के पंथ को खोजने का कार्य स्थगित करते हैं और भविष्य पर उस कार्य को छोड़ देते हैं। वे कहते हैं-'जब मेरी काल-लब्धि परिपक्व होगी... तब मैं तेरे पास आने का मार्ग खोजने निकलूँगा... तब मुझे तेरा मार्ग अवश्य मिलेगा. हे नाथ! मैं इसी आशा का अवलंबन लेकर यहाँ जी रहा हूँ...

मेरा मन तो तुम्हारे पास ही है... यानी आत्मरमणता ही चल रही है... फिर भी मार्ग नहीं मिलने का दुःख मेरे हृदय में है।'

चेतन, अपार निराशाओं के काले बादलों से छाये हुए आकाश में भी 'आज नहीं तो कल चाँद उगेगा ही...' इस आशा से मनुष्य को स्वस्थ रहना है और जीवन जीना है। परमात्मा के पास पहुँचने की तीव्र अभीप्सा... एक दिन... कभी न कभी पूर्ण होगी ही। भले, पहुँचने में दो-चार जन्म बीत जाय, परन्तु मार्ग तो अवश्य मिल ही जायेगा। मार्ग पाने का भी एक अपूर्व आनन्द होता है! जो पाता है, वह अनुभव करता है!

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री संभवनाथ भगवंत

स्तुति

विश्व-भव्य-जनाराम-कुल्या-तुल्या-जयन्ति ताः।
देशना-समये-वाचः, श्री संभव-जगत्पतेः ।।

प्रार्थना

सेनानंदन सुखदायक ओ संभव जिनवर वंदन हो,
कर्मताप से दग्ध हुए-जीवों के लिए तुम चंदन हो।
राजा जितारी के कुल दीपक, शुद्ध बुद्ध और सिद्ध हुए
त्रिभुवनतिलक हे तीर्थंकर! सारे जग में प्रसिद्ध हुए ।।

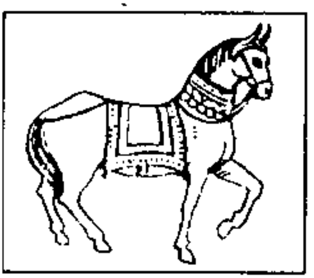

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री संभवनाथ भगवन्त

१	माता का नाम	सेना रानी
२	पिता का नाम	जितारी राजा
३	च्यवन कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला ८/श्रावस्ती
४	जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला १४/श्रावस्ती
५	दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला १५/श्रावस्ती
६	केवलज्ञान कल्याणक	कार्तिक कृष्णा ५/श्रावस्ती
७	निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ५/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या १०२ प्रमुख चारु
९	साधु	संख्या २ लाख प्रमुख चारु
१०	साध्वी	संख्या ३ लाख ३६ हजार प्रमुख श्यामा
११	श्रावक	संख्या २ लाख ९३ हजार
१२	श्राविका	संख्या ६ लाख ३६ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	शाल
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	त्रिमुख
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायक देवी]	दुरितारी
१६	आयुष्य	६० लाख पूर्व
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	अश्व
१८	च्यवन किस देवलोक से?	ग्रैवेयक
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	विपुलबल के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	१४ वर्ष
२२	गृहस्थ अवस्था	५९ लाख पूर्व एवं ४ पूर्वांग
२३	शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	सिद्धार्था
२५	नाम-अर्थ	जन्म होने पर धरती पर अनाज काफी बढ़ने लगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **इष्ट के वियोग का भय और अनिष्ट के संयोग का भय-ये दो भय मनुष्य के भावप्राणों का नाश कर देते हैं। जब तक हम जीवद्वेषी और जड़प्रेमी बने रहेंगे, तब तक हम भयों से मुक्त नहीं हो सकते।**
- **जब मिथ्यात्व का दोष दूर होता है, तब पाँचवी 'स्थिरा' दृष्टि खुलती है। योगमार्ग में आठ दृष्टि बतायी गई है-मित्रा, तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा, परा।**
- **चेतन, मतों का उन्माद जानना हो तो तुझे धर्मों का इतिहास पढ़ना होगा।... उन्मादों ने अनर्थ ही पैदा किए हैं... 'अक्रमविज्ञान' की बातें करने वाला मतोन्माद आज भी कुछ जगह फैला हुआ है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : ४ श्री संभवनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। श्री आनन्दघनजी की परमात्म-स्तवनाओं ने तेरे हृदय को आनन्द से भर दिया... जानकर मेरा हृदय भी आनन्दित हो गया। अभी तो चेतन, तूने मात्र दो स्तवनाओं का ही रसास्वाद किया है, जब तू सभी तीर्थंकरों की स्तवनाओं का अध्ययन करेगा, तब तेरा आन्तर आनन्द सहस्त्रगुना बढ़ जायेगा।

जिस परमात्मा से प्रीत की सगाई हो गई और जिनके पास पहुँचने की तीव्र इच्छा हो गई... उनकी स्मृति बार-बार आती रहती है...। 'उनको पाने के लिए मैं क्या-क्या करुँ?' ऐसी भावना जाग्रत होती है।

यदि सदेह तीर्थंकर भगवंत इस धरती पर विचरते होते तो हम उनके चरणों में पहुँच जाते... उनकी भक्ति करते... सेवा करते। उनके अमृत वचनों का श्रवण करते... और उनकी आज्ञा का पालन करते। परन्तु दुर्भाग्य है अपना कि आज इस भारत की धरती पर... या वर्तमान विश्व में... कि जहाँ मनुष्य जा सकता है... कहीं पर भी परमात्मा नहीं हैं। वे तो हैं, सिद्धशिला पर... या महाविदेह क्षेत्र में। वहाँ जाने का कोई रास्ता नहीं है... है तो जाने की शक्ति नहीं है। कैसे उनकी सेवा करूँ? कविश्री संभवनाथ की स्तवना करते हुए कहते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संभवदेव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु-सेवन भेद,
सेवन कारण पहेली भूमिका रे, अभय-अद्वेष-अखेद...
भय-चंचलता हो जे परिणामनी रे, द्वेष-अरोचक भाव,
खेद-प्रवृत्ति हो करतां थाकीये रे, दोष-अबोध लखाव...
चरमावर्ते हो चरम-करण तथा रे, भवपरिणति परिपाक,
दोष टले वली दृष्टि खीले भली रे, प्राप्ति प्रवचन-वाक्...
परिचय पातक-घातक साधुशुं रे, अकुशल अपचय-चेत,
ग्रन्थ अध्यातम-श्रवण-मनन करी रे, परिशीलन नय हेत...
कारण-जोगे हो कारण नीपजे रे... एमां कोई न वाद,
पण कारण विण कारज साधिये रे, ए निज मत उन्माद...
मुग्ध सुगम करी सेवन आदरे रे, सेवा अगम-अनूप,
देजो कदाचित् सेवक-याचना रे, आनन्दघन रसरूप...

चेतन, आज सदेह तीर्थंकर तो यहाँ इस क्षेत्र में नहीं हैं, परन्तु उनकी मूर्तियाँ-प्रतिमायें हैं, हमें उन प्रतिमाओं को ही तीर्थंकर मानकर, उनकी सेवा करनी है। तू गृहस्थ है तो तुझे परमात्मा की जलपूजा, चंदनपूजा, पुष्पपूजा, धूपपूजा, दीपकपूजा, अक्षतपूजा, नैवेद्यपूजा और फलपूजा करनी चाहिए। इस पूजा को द्रव्यपूजा कहते हैं, चूँकि जलादि द्रव्यों से पूजा होती है। द्रव्यपूजा करने के बाद भावपूजा करनी चाहिए। स्तुति, प्रार्थना, स्तवना... जाप-ध्यान... भावपूजा है। हम द्रव्यपूजा नहीं कर सकते, मात्र भावपूजा ही कर सकते हैं। चूँकि हम साधु हैं, श्रमण हैं। साधु के पास पूजन के द्रव्य नहीं होते हैं और स्नान भी नहीं कर सकते हैं, इसलिए वे द्रव्यपूजा नहीं कर सकते।

चेतन, तेरा जन्म तो श्रद्धासंपन्न परिवार में हुआ है। तेरे माता-पिता को कुलपरंपरा से जैनधर्म की प्राप्ति हुई है, वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा मिले हुए हैं, इसलिए तुझे भी जन्म से जैनधर्म और वीतराग परमात्मा मिले हैं। परन्तु जो जन्म से जैन नहीं हैं, जिनको जन्म से सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा नहीं मिले हैं, उनके लिए भी श्री आनन्दघनजी कहते हैं कि 'तुम्हें जो भी परमात्मा-स्वरूप मिला हो, उनकी सेवा-उपासना के प्रकारों को जानकर, समझकर उस परमात्मा-स्वरूप की तुम सेवा करते रहो। चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो या महेश हो! तुम सेवा करते रहो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेवा करने के लिए तुझे गुणात्मक योग्यता प्राप्त करनी होगी। तीन गुण होने चाहिए परमात्मा की पूजा-सेवा करने वाले मनुष्य में।

‘सेवन-कारण पहेली भूमिका रे, अभय-अद्वेष-अखेद...’

परमात्मापूजक में गुणात्मक योग्यता होनी ही चाहिए। अभय, अद्वेष और अखेद-ये तीन गुण होने चाहिए। चाहे वह किसी भी परमात्म-स्वरूप की सेवा-पूजा करने वाला हो। आत्मविकास की यह प्राथमिक भूमिका है।

चेतन, आनंदघनजी अभय, अद्वेष और अखेद को समझाने के लिए भय, द्वेष और खेद की परिभाषा करते हैं! पहले भय की परिभाषा करते हुए कहते हैं-

भय चंचलता हो जे परिणामनी रे

चित्त के चंचल परिणाम यानी विचार, उसको भय कहते हैं। विचारों की चंचलता को भय कहते हैं। परिणाम कहो, अध्यवसाय कहो, मनोभाव कहो अथवा विचार कहो, एक ही है। जब ये चंचल बनते हैं, भय के भूत नाचने लगते हैं। भय का प्रारम्भ होता है, शंका से। मन में शंका-संशय पैदा होता है और मन चंचल बन जाता है।

इष्ट के वियोग का भय!

अनिष्ट के संयोग का भय!

ये दो भय मनुष्य के भावप्राणों का नाश कर देते हैं। जब तक हम जीवद्वेषी और जड़प्रेमी बने रहेंगे, तब तक हम भयों से मुक्त नहीं हो सकते। तात्पर्य यह है कि प्रभुपूजक को जीवद्वेष और जड़प्रेम से मुक्ति पानी होगी। तभी वह ‘अभय’ हो सकता है। तभी उसके विचारों में स्थिरता आ सकती है। इष्ट-अनिष्ट की कल्पनाओं से मन मुक्त बनना चाहिए।

चेतन, अभय बनना होगा। परमात्मा के चरणों में पहुँचना है, तो अभय बनना ही होगा।

द्वेष की परिभाषा करते हुए कवि कहते हैं-

‘द्वेष अरोचक-भाव’

द्वेष यानी अरूचि। मुख्य रुप से दो प्रकार की अरूचि यहाँ अभिप्रेत है। मोक्ष के प्रति अरूचि और जीवों के प्रति अरूचि। उपाध्याय श्री यशोविजयजी ने भी कहा है-‘योगनुं अंग अद्वेष छे पहेलुं।’

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोक्ष के प्रति रुचि नहीं है तो चलेगा, परंतु द्वेष तो नहीं ही होना चाहिए। चूँकि जिनकी सेवा करनी है, जिनके साथ प्रीति का संबंध बाँधना है... उनका जो स्थान है... वे जहाँ रहते हैं... उस मोक्ष के प्रति द्वेष करने से कैसे चलेगा? परमात्मा के साथ प्रीति करना है, तो परमात्मा के बताये हुए मोक्षमार्ग के प्रति भी द्वेष नहीं होना चाहिए, परमात्मा ने जिनके प्रति अनंत करुणा बहाई है, उस जीवसृष्टि के प्रति भी द्वेष नहीं होना चाहिए।

'खेद-प्रवृत्ति हो करतां थाकीये रे...'

अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार धार्मिक प्रवृत्ति करते-करते थक जाना, ऊब जाना... इसको कहते हैं, खेद।

परमात्मा के साथ प्रीति होने पर और उनकी सेवा के लिए तत्पर बनने पर... थकान तो लगनी ही नहीं चाहिये। परमात्मा के बताये हुए धर्मानुष्ठान थके बिना करते रहना है।

'दोष-अबोध लखाव'

परमात्मस्वरूप की सेवा करने के लिए मनुष्य में प्राथमिक योग्यतारूप अभय-अद्वेष और अखेद-ये तीन गुण आने के बाद, 'अबोध' नाम का दोष दूर होता है। अबोध यानी अज्ञानता। अज्ञानता का अर्थ है, मिथ्यात्व। मिथ्यात्व ही भवबीज है, अनादि संसारपरिभ्रमण का मूल कारण है।

यह अबोधता, जीवात्मा को सच्चा परमात्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होने देती है। सद्‌गुरु की पहचान नहीं होने देती है। सद्धर्म के प्रति श्रद्धावान् नहीं होने देती है। जब तक अबोधता का अंधकार जीवात्मा पर छाया हुआ रहेगा तब तक दोषों का समूह हटने वाला नहीं है। ऐसा यह अबोधता का दोष, अभय-अद्वेष और अखेद गुणों के आविर्भाव के बाद दूर हो जाता है। कैसे दूर होता है उसकी शास्त्रीय प्रक्रिया बताते हुए आनन्दघनजी कहते हैं-

चरमावर्ते हो चरम करणे तथा रे, भव-परिणति परिपाक...

चेतन, ये सारे शब्द जैन शास्त्रीय परिभाषा के हैं। 'चरमावर्त' शब्द काल/समय के विषय में है, 'चरम करण' आत्मा की आध्यात्मिक पुरुषार्थ की प्रक्रिया का सूचक शब्द है। 'भव परिणति परिपाक' यह भी आत्मा की एक विशिष्ट अवस्था का द्योतक शब्द है। तुझे इन परिभाषाओं का अध्ययन करना होगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जब जीवात्मा चरमावर्त काल में प्रवेश करता है, तब उसमें तीन विशेष गुण प्रगट होते हैं-दुःखी जीवों के प्रति अत्यंत दया, गुणवान पुरुषों के प्रति अद्वेष और उचित कर्तव्यों का पालन। इन गुणों का ज्यों-ज्यों विकास होता जाता है... त्यों-त्यों उसकी आत्मशक्ति विकसित होती जाती है और वह 'यथा प्रवृत्तिकरण-अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण' नाम का आंतर पुरुषार्थ कर लेता है।

चेतन, यथा प्रवृत्तिकरण वगैरह प्रक्रियायें अध्ययन के विषय हैं। मिथ्यात्व का नाश इन प्रक्रियाओं से होता है। संसार-परिभ्रमण जब सीमित होने का होता है तब मिथ्यात्व का दोष दूर होता है।

दोष टले वली दृष्टि खिले भली रे, प्राप्ति प्रवचन-वाक्...

जब मिथ्यात्व का दोष दूर होता है तब पाँचवीं 'स्थिरा' दृष्टि खुलती है। योगमार्ग में आठ दृष्टि बतायी गई है-मित्रा, तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा और परा। पाँचवीं दृष्टि सम्यग् श्रद्धा की है। मिथ्यात्व दूर होता है तब सम्यग् श्रद्धा का भाव पैदा होता है आत्मा में।

जब सम्यग् श्रद्धा का भाव प्रगट होता है, तब सर्वज्ञ-वीतराग के वचन प्राप्त होते हैं। 'वह ही सच और निःशंक है जो वीतराग जिनेश्वर ने कहा है।' इस प्रकार जीवात्मा को प्रतीति होती है। जिन-वचनों की यथार्थता का बोध होता है।

इस आध्यात्मिक यात्रा में सद्गुरु का संयोग प्राप्त होता है। मोक्षमार्ग पर चलने वाले पाँच महाव्रतों के धारक सद्गुरू का योग प्राप्त होने से -

१. पापों का नाश होता है,

२. पापानुबंधी अकुशल कर्म कम होते हैं,

३. आध्यात्मिक ग्रंथों का श्रवण-मनन होता है,

४. नयवाद के माध्यम से, हेतुवाद की सहायता से धर्मग्रन्थों का परिशीलन होता है। कवि ने ये चार बातें एक ही गाथा में बतायी है।

परिचय पातक-घातक साधु शुं रे, अ-कुशल-अपचय चेत,
ग्रन्थ अध्यातम श्रवण-मनन करी रे, परिशीलन नय-हेत...

चेतन, मात्र बाह्य धर्मक्रियाओं के माध्यम से नहीं, परन्तु गुणों के माध्यम से आत्मा की आंतर विकास-यात्रा होती रहती है, तब साधु-पुरुषों का परिचय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[जो वास्तव में सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधक हैं, वैसे साधु-पुरुषों का परिचय] पापों का नाशक बनता है। अकुशल पापकर्मों का भी नाश होता रहता है। साधु-पुरुषों के चरणों में विनय से बैठकर वह आत्मविशुद्धि में प्रेरक आध्यात्मिक ग्रन्थों का श्रवण करेगा, मनन करेगा। ज्यों-ज्यों ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जायेगा, त्यों-त्यों वह सात नयों के माध्यम से तत्त्व-चिंतन करेगा, इससे उसका मन विसंवादों से मुक्त होगा।

इस प्रकार उत्तर-उत्तर आत्मविकास में पूर्व-पूर्व विकास की भूमिकायें कारण बनती हैं, इस बात में किसी को भी मतभेद नहीं होना चाहिए। यानी क्रमिक आत्मविकास का सिद्धांत ही सही सिद्धांत है। जो लोग इस सिद्धांत को नहीं मानते हैं, उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए आनन्दघनजी कहते हैं-

पण कारण विण कारज साधीये रे, ए निज-मत उन्माद...

मत का उन्माद!

चेतन, मतों का उन्माद जानना हो तो धर्मों का इतिहास तुझे पढ़ना होगा। राज्यसत्ताओं के उन्माद तो तूने पढ़े होंगे... धर्मक्षेत्र के मत-मतान्तरों के उन्माद भी पढ़ना। उन्मादों ने अनर्थ ही पैदा किए हैं। कार्य-कारण भाव की उपेक्षा कर, क्रमिक आत्मविकास के सिद्धांत को छोड़कर 'अक्रम-विज्ञान' की बातें करनेवाला मतोन्माद आज भी कुछ-कुछ जगह फैला हुआ है।

चेतन, दुनिया में ज्यादातर लोग 'मुग्ध'- सरल होते हैं, वे परमात्म-सेवा के मर्म को नहीं जानते। वे तो इतना ही समझते हैं कि मन्दिर में जाना... परमात्मा की मूर्ति की पूजा करना! हो गई सेवा! श्री आनन्दघनजी कहते हैं-

मुग्ध सुगम करी सेवन आदरे रे, सेवन अगम-अनूप...

परमात्मसेवा गूढ़ रहस्यवाली है,

परमात्मसेवा सुन्दर है, अनुपम है,

परमात्म-सेवा का गूढ़ रहस्य और उसका अनुपम सौन्दर्य वह ही जान सकता है कि जो अभय बना हो, अद्वेषी बना हो, अखिन्न रहता हो। जिसका मिथ्यात्व-दोष दूर हुआ हो, जिसे पाँचवीं योगदृष्टि प्राप्त हो, जिसे जिन-प्रवचन मिला हो, जिसे पापनाशक सद्गुरु-संयोग मिला हो और जिसने अध्यात्म के ग्रन्थों का श्रवण-मनन और परिशीलन किया हो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आनन्दघनजी परमात्मा के चरणों में गद्‌गद स्वर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं-

देजो कदाचित् सेवक-याचना रे, आनन्दघन रस रूप...

'हे आनन्दपूर्ण! हे रसपूर्ण परमात्मन्! कभी तो ऐसी सेवा करने का सौभाग्य मुझे देना...! सेवक और कुछ नहीं चाहता है... बस, आपकी अगम-अनूप सेवा चाहता हूँ।'

चेतन, कविवर ने सेवा माँग कर, क्या-क्या माँग लिया? कैसी गुणसमृद्धि माँग ली! अपन भी परमात्मा से उनकी सेवा करने की योग्यता ही माँग लें।

तू इन स्तवनाओं का स्वस्थ मन से परिशीलन करना। एक-एक बात को समझने का प्रयत्न करना। इसलिए दो-तीन बार पढ़ना पड़े तो भी पढ़ना। तेरी कुशलता चाहता हूँ।

- **प्रियदर्शन**

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अभिनंदन स्वामी

स्तुति

अनेकान्त-मताम्भोधि-समुल्लासन-चन्द्रमाः।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवानभिनन्दनः ।।

प्रार्थना

अभिनंदन स्वामी को वंदन, करते हैं शुद्ध भाव से
आधि व्याधि, और उपाधि मिटती प्रभु के प्रभाव से,
संवर राजा के जाये सिद्धार्था के सुत सुखकारी
दर्शन-पूजन अभिनंदन का पापविनाशी दुःखहारी ।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अभिनंदन स्वामी

१	माता का नाम	सिद्धार्था रानी
२	पिता का नाम	संवर राजा
३	च्यवन कल्याणक	वैशाख शुक्ला ४/अयोध्या
४	जन्म कल्याणक	माघ शुक्ला २/अयोध्या
५	दीक्षा कल्याणक	माघ शुक्ला १२/अयोध्या
६	केवलज्ञान कल्याणक	पौष शुक्ला १४/अयोध्या
७	निर्वाण कल्याणक	वैसाख शुक्ला ८/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या १०० प्रमुख वज्रनाभ
९	साधु	संख्या ३ लाख प्रमुख वज्रनाभ
१०	साध्वी	संख्या ६ लाख ३० हजार प्रमुख अजिता
११	श्रावक	संख्या २ लाख ८८ हजार
१२	श्राविका	संख्या ५ लाख २७ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	प्रियाल
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	यक्षेश
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायका देवी]	काली
१६	आयुष्य	५० लाख पूर्व
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	बंदर
१८	च्यवन किस देवलोक से?	जयंत [अनुत्तर विमान]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	महाबल के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	१८ वर्ष
२२	गृहस्थ अवस्था	४९ लाख पूर्व एवं ८ पूर्वांग
२३	शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	अर्थसिद्धा
२५	नाम-अर्थ	गर्भरूप में भी हमेशा इन्द्र ने जिनका अभिनंदन किया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- **कवि को पुनः-पुनः संसार में जन्म-मृत्यु नहीं पाना है। उन्होंने जन्म-मृत्यु की प्यास को मिटाने की बात की है। यदि परमात्मदर्शन का कार्य संपन्न हो जाय तो वह प्यास समाप्त हो सकती है।**
- **हे परमात्मन्, आपको मुझ पर कृपा बरसानी होगी। आपको ही मेरे ऊपर अचिन्त्य अनुग्रह करना होगा। आपके दर्शन के लिए आपको ही मेरे प्रति दया करनी होगी। मेरे हृदय की तड़पन तो देखो... मेरी व्यथा-वेदना तो देखो...**

पत्र : ५ श्री अभिनंदनस्वामी स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा भावपूर्ण पत्र मिला!

श्री आनन्दघनजी की ये स्तवनायें गहन-गंभीर हैं, इस बात में दो राय नहीं है, परंतु ऐसी भी नहीं हैं कि बुद्धिमान मनुष्य समझ ही नहीं पाये। और भैया! समुद्र की सतह पर कब तक तैरते रहेंगे? भीतर भी कभी गोता लगाने का साहस करना चाहिए ना? साहस तो करना ही होगा। परमात्मा को पाने के मार्ग पर साहसिक ही चल सकते हैं।

श्री अभिनन्दन स्वामी की स्तवना में, कवि परमात्मदर्शन की उत्कटता अभिव्यक्त करते हुए, दर्शन-प्राप्ति की दुर्लभता बताते हैं। परमात्मदर्शन की प्राप्ति क्यों दुर्लभ है-यह बात इन्होंने तात्त्विक भूमिका पर बताई है। जीवनपर्यंत तत्त्वचिंतन में ही डूबे रहने वाले श्री आनन्दघनजी दूसरी बातें तो करेंगे ही कैसे?

अध्यात्ममार्ग के गूढ़ तत्त्वों के ज्ञाता योगीजन से अपन को दूसरी अपेक्षा रखनी ही नहीं चाहिए। उनकी वाणी अगम-अगोचर की बातें करती हैं। उनका एक-एक शब्द रहस्यों से भरा हुआ होता है। उन रहस्यों की गुफा में प्रवेश करना भी रोमांचक होता है। निर्भय-निःशंक होकर प्रवेश करेंगे तो कुछ 'दिव्य' पायेंगे... अवश्य।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभिनंदन जिन! दरिसन तरसीए, दरिसन दुर्लभ देव,
मत-मत भेदे रे जो जई पूछीए, सहु थापे 'अहमेव'...
सामान्ये करी दरिसन दोहिलुं, निर्णय सकल-विशेष,
मद में घेर्यो रे अंधो केम करे, रवि-शशि-रुप विलेष...
हेतु-विवादे हो चित्तधरी जोइये, अति दुर्गम नयवाद,
आगमवादे हो गुरूगम को नहीं, ए सबलो विषवाद...
घाती-डुंगर आडा अति घणा, तुज दरिसन जगनाथ,
धिट्ठाई करी मारग संचरुँ सेंगु कोई न साथ...
दरिसण... दरिसण रटतो जो फिरुं, तो रण रोझ समान,
जेहने पिपासा हो अमृतपाननी, किम भांजे विषपान?...
तरस न आवे हो मरण-जीवन तणो, सीझे जो दरिसन काज,
दरिसन दुर्लभ सुलभ कृपा थकी, आनन्दघन महाराज...

'हे अभिनन्दन! आपके दर्शन के लिए हम तरस रहे हैं। जैसे आषाढ़ी बादलों के बरसने की प्रतीक्षा में मोर केकारव करता रहता है, जैसे चन्द्र की चाँदनी का पान करने की प्रतीक्षा में चकोर पक्षी के नयन अपलक आकाश को ताकते हैं, जैसे हजारों नदियों के एवं महासागर के पानी का सहवास होने पर भी चातकपक्षी बादलों के पानी की प्रतीक्षा करता रहता है... वैसे हे प्रभो, आपके दर्शन के लिए मेरे प्राण तड़प रहे हैं। आपके दर्शन मेरे लिए दुर्लभ बने हुए हैं...।'

दर्शन! यह शब्द व्यापक है। दर्शन का अर्थ जैसे देखना होता है, वैसे दर्शन का अर्थ 'सम्यक्त्व' भी होता है और 'मत' भी होता है।

- कवि-आनन्दघन परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन [देखना] चाहते हैं।
- योगी-आनन्दघन सम्यग्दर्शन [सम्यक्त्व] चाहते हैं,
- तत्त्वज्ञानी-आनन्दघन सच्चा मत-मार्ग देखना चाहते हैं।

उनको ये तीनों बातें दुर्लभ प्रतीत होती हैं। प्रत्यक्ष दर्शन पूर्णता प्राप्त किये बिना हो नहीं सकता। सम्यग्दर्शन, मिथ्यात्व के बादल बिखरे बिना संभव नहीं होता और सच्चा मार्ग, कोई सुयोग्य पथप्रदर्शक के बिना नहीं मिल सकता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मत-मत भेदे रे जो जई पूछीए, सहु थापे 'अहमेव'

अलग-अलग मतावलम्बियों से जाकर पूछता हूँ : 'मुझे वीतराग... सर्वज्ञ परमात्मा का दर्शन कहाँ होगा? कृपया बताईये...!' तो वे कहते हैं : 'हम ही वीतराग हैं... हम ही सर्वज्ञ हैं।' मैं उन लोगों को कैसे सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा मान लूँ? जबकि उनकी बातें परस्पर विरोधाभासी हैं और जीवनव्यवहार में संवादिता नहीं है।

स्वमत के उन्माद से उन्मत्त मनुष्य एक सामान्य वस्तु भी नहीं देख सकता है, तो फिर उससे ऐसी अपेक्षा तो कैसे की जाय कि वो सभी बातों का तर्कयुक्त निर्णय दे? क्या कोई अन्ध पुरुष 'यह सूर्य है और यह चन्द्र है,' ऐसा विभागीकरण कर पायेगा कि जब वह मदिरापान से उन्मत्त हो? अपने-अपने मतों का जिनको आग्रह होता है वे लोग परमात्मदर्शन का सच्चा मार्ग नहीं बता सकते।

कवि कहते हैं कि 'परमात्मदर्शन पाने का उपाय दूसरों से पूछना व्यर्थ है, और मैंने स्वयं तर्क से, युक्ति से परमात्मा के दर्शन [सर्वज्ञ सिद्धान्त] को समझने का प्रयत्न किया। हालाँकि अनुमान प्रमाण से कुछ बातों का निर्णय हो सकता है, परन्तु अगोचर बातों का निर्णय करने में मुझे एक बड़ी दिक्कत आयी, वह दिक्कत थी 'नयवाद' की। नयवाद को स्पष्टता से समझना मेरे लिए मुश्किल रहा।

चेतन, किसी भी बात को, किसी भी वस्तु को देखने के और सोचने के मुख्य रूप से सात मार्ग बताये गये हैं, उसको नयवाद कहा गया है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत-ये सात नय हैं। तू कब करेगा इस 'नयवाद' का अध्ययन? जैन दर्शन की तत्त्वव्यवस्था को समझने के लिए 'नयवाद' और 'अनेकान्तवाद' का अध्ययन करना ही होगा। हालाँकि इन वादों को समझना सरल नहीं है। फिर भी प्रयास तो करना ही चाहिए।

अनुमान-प्रमाण से कवि को परमात्मदर्शन पाना संभव नहीं लगता है, तब वे 'आगम प्रमाण' से 'दर्शन' पाने का सोचते हैं। आगम यानी शास्त्र। एक-दो शास्त्र नहीं हैं, हजारों शास्त्र हैं। इन शास्त्रों के माध्यम से भी 'दर्शन' पाना उनको मुश्किल लगता है, वे कहते हैं :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'आगमवादे हो गुरुगम को नहीं, ए सबलो विषवाद'

शास्त्रों को-आगमों को समझाने वाले, शास्त्रों का सही अर्थ बताने वाले 'गुरु' ही आज नहीं मिल रहे हैं...। परमात्मदर्शन जैसे अगम-अगोचर कार्य में गुरु का मार्गदर्शन तो चाहिए न? शास्त्रों के माध्यम से वैसा मार्गदर्शन देने वाले गुरु कहाँ हैं?

चेतन, यह बात पढ़कर तुझे आश्चर्य होगा। परन्तु कवि की बात यथार्थ है। श्री आनन्दघनजी का समय ही वैसा था। उत्सव-महोत्सव तो बहुत होते थे... परन्तु ज्ञानमार्ग की घोर उपेक्षा हो रही थी। उपाध्याय श्री यशोविजयजी एवं श्री आनन्दघनजी जैसे ज्ञानी पुरुष तो गिनती के ही थे। जैनागमों का अध्ययन-मनन-परिशीलन नहींवत् हो गया था। ऐसी परिस्थिति में 'परमात्मदर्शन' के विषय में कौन शास्त्रीय मार्गदर्शन दे? यही प्रबल अवरोध, कवि को लगता है।

कवि निराश हो जाते हैं। निराशा के सूरों में गाते हैं :

घाती डुंगर आडा अति घणा, तुज दर्शन जगनाथ।

प्रभो! जगन्नाथ! क्या करुँ? आपके पास पहुँचने की तीव्र इच्छा है... नहीं पहुँच पाने की तीव्र वेदना है हृदय में...। रास्ता विकट है। रास्ते में विकट पहाड़ पड़े हैं। उन पहाड़ों का उल्लंघन करने का सामर्थ्य नहीं है...।

'घाती डुंगर' का अर्थ है चार घाती कर्म। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म। इन चार घाती कर्मों के पहाड़ सामने खड़े दिखते हैं, श्री आनन्दघनजी को। बड़े विकट हैं, ये पहाड़।

आत्मा जब इन चार कर्मों का नाश करता है, तब उसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और वीतरागता प्राप्त होती है...। तब अभिनन्दन परमात्मा के दर्शन की तरस मिट जाती है।

कवि कहते हैं कि पहाड़ों की विकटता जानते हुए भी, साहस करके आगे बढ़ता हूँ... परन्तु साहस में कोई साथी भी चाहिए न?

'धिट्ठाई करी मारग संचरूं, सेंगु कोई न साथ...'

विकट मार्ग की यात्रा में कोई साथी-सहायक नहीं है... क्या करुँ? घाती कर्मों का नाश करने का उपाय है, सम्यग् ज्ञान-दर्शन और चारित्र। इसको

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोषरहित आराधना करने के लिए कोई समर्थ मार्गदर्शक करूणावंत महापुरुष चाहिए, वह नहीं मिल रहा है...।

प्रभो, मेरी स्थिति विकट हो गई है। जंगलों में भटकता हुआ 'दर्शन दो... दर्शन दो...' पुकारता फिरता हूँ तो लोग मेरा उपहास करते हैं... कहते हैं 'यह तो जंगल का पशु है...।'

जो कहना हो वे कहें... मुझे इस बात का दुःख नहीं है... यदि जिनेश्वर, आपके दर्शन मिल जाते हैं। परन्तु-

'जेहने पिपासा हो अमृतपाननी, किम भांजे विषपान...?'

अमृत की प्यास लगी हो... और कोई जहर का प्याला दे दे पीने को, क्या प्यास बुझेगी?

चेतन, 'अमृत' का अर्थ तो तू समझ गया होगा, परन्तु 'विषपान' का अर्थ शायद तू नहीं समझा होगा। कवि को समाज के मान-सम्मान, बाह्य सुख-सुविधायें...और शुष्क वाद-विवाद 'विष' लगता है, जहर लगता है। मान-सम्मानादि को क्या करें? जिसको परमात्मदर्शन की चाह लगी हो...उसको दुनिया के सारे भौतिक पदार्थ, दुनिया की सारी बातें...जहर जैसी लगती है।

'परमात्मादर्शन के लिए महर्षि क्यों इतने व्याकुल हो रहे हैं?' यह प्रश्न उठता है न तेरे मन में? बताते हैं उसका कारण-

तरस न आवे हो मरण-जीवन तणो, सीजे जो दरिसन-काज।

कवि को पुनः-पुनः संसार में जन्म-मृत्यु नहीं पाना है। उन्होंने 'जन्म-मृत्यु की प्यास' को मिटाने की बात की है। जीवात्मा में अनन्त काल से यह प्यास रही हुई है। यदि परमात्मदर्शन का कार्य संपन्न हो जाय तो प्यास समाप्त हो जाती है। यानी चार घाती कर्मों का नाश होने पर परमात्मदर्शन प्राप्त होता है और जन्म-मृत्यु का चक्र भी समाप्त हो जाता है। परन्तु, परमात्मदर्शन सुलभ नहीं है, दुर्लभ है, यह बताते हुए कहते हैं-

दरिसन दुर्लभ सुलभ कृपा थकी, आनन्दघन महाराज।

कवि जानते हैं कि परमात्मदर्शन सुलभ नहीं है, परंतु वे यह भी जानते हैं कि दुर्लभ दर्शन को सुलभ कैसे बनाया जाय!

'हे परमात्मन्! हे आनन्द के सागर!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आपको मेरे ऊपर कृपा बरसानी होगी। आपको ही मेरे ऊपर अचिन्त्य अनुग्रह करना होगा। आपके दर्शन के लिए आपको ही मेरे प्रति दया करनी होगी...। मेरे हृदय की तड़पन तो देखो...मेरी व्यथा-वेदना तो देखो...। क्या आप करूणा के सागर नहीं हैं? आपके पास पहुँचने का मार्ग मैं नहीं जानता हूँ...अनन्त आकाश में कोई मार्ग नहीं दिखता है। मैं आपके विरह में व्यथित हूँ...क्या आप नहीं जानते? तो आपके पास खींच लो मेरे नाथ...! आपकी कृपा के बिना, मेरे पंगु प्रयत्नों से तो मैं आप तक कभी नहीं पहुँच पाऊँगा।'

चेतन, परमात्मा की कृपा की कितनी महिमा कवि ने बताई है! कृपा के पात्र बनने के लिए जीवन में प्रयत्न करना चाहिए। जिस किसी को थोड़े क्षणों के लिए भी परमात्मा का ध्यान लग जाता है, वह कभी न कभी कृपापात्र बनेगा।

तू परमात्मा की कृपा का पात्र बने-यही मंगल कामना।

१४-३-८४

विजवाड़ा (आंध्र)

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुमतिनाथ भगवंत

स्तुति

द्युसत्-किरीट-शाणाग्रोत्तेजिताङ्घ्रि-नखावलिः।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ।।

प्रार्थना

सुमतिनाथ जिनेश्वर हम पर करके कृपा सन्मति देना
रानी मंगला के बेटे! हमें, तुम गुण की सम्पत्ति देना।
मेघ नृपति के हो लाड़ले, संघ तीर्थ के हो भूषण
तन-मन और जीवन के हमारे, दूर करो सारे दूषण ।।

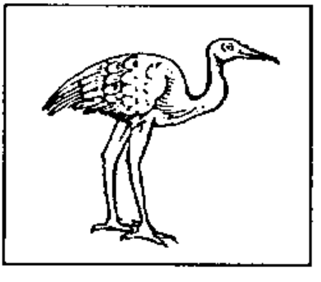

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुमतिनाथ भगवंत

१	माता का नाम	मंगला रानी
२	पिता का नाम	मेघ राजा
३	च्यवन कल्याणक	श्रावण शुक्ला २/अयोध्या
४	जन्म कल्याणक	वैशाख शुक्ला ८/अयोध्या
५	दीक्षा कल्याणक	वैशाख शुक्ला ९/अयोध्या
६	केवलज्ञान कल्याणक	चैत्र शुक्ला ११/अयोध्या
७	निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ९/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या ११६ प्रमुख चमरगणी
९	साधु	संख्या ३ लाख २० हजार प्रमुख चमरगणी
१०	साध्वी	संख्या ५ लाख ३० हजार प्रमुख काश्यपी
११	श्रावक	संख्या २ लाख ८१ हजार
१२	श्राविका	संख्या ५ लाख १६ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	प्रियंगु [रायण]
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	तुंबरु
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	महाकाली
१६	आयुष्य	४० लाख पूर्व
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	क्रौंचपक्षी
१८	च्यवन किस देवलोक से?	जयंत [अनुत्तर]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	अतिबल के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्स्मथ अवस्था	२० वर्ष
२२	गृहस्थ अवस्था	३१ लाख पूर्व एवं १२ पूर्वांग
२३	शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	अभयंकरा
२५	नाम-अर्थ	न्याय देने में माता की बुद्धि संतुलित रही।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाना है। 'अहं' को भूल जाना है, 'अर्हं' घटघट में गूँजना चाहिए।**
- **समग्रतया समर्पण तब होगा जब मनुष्य अपने आग्रहों का विसर्जन करेगा। विसर्जन के बिना समर्पण संभव नहीं है।**
- **अन्तरात्मदशा प्राप्त होने पर, उस दशा में स्थिरता प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा। ज्ञानयोग और भक्तियोग में निरत रहने से अन्तरात्मदशा में स्थिरता आती है।**
- **समर्पण से परमात्मदशा प्राप्त होती है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : ६ श्री सुमतिनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

इस समय तेरे पत्र का इन्तजार नहीं करना पड़ा। विषय अभ्यास का तो है ही। तेरे मन में तत्त्वजिज्ञासा पैदा हो, यह मैं चाहता हूँ। इन स्तवनाओं के अध्ययन से, चिन्तन-मनन से अवश्य तत्त्वजिज्ञासा पैदा होगी और तू ज्ञानानन्द का आस्वाद करेगा।

श्री अभिनन्दन स्वामी की स्तवना में कविराज ने कहा-

दरिसन दुर्लभ सुलभ कृपा थकी

परमात्मा का दर्शन होना दुर्लभ है। असंभव जैसा है। परन्तु यदि परमात्मा की कृपा हो जाय, तो दुर्लभ दर्शन सुलभ हो जाय! उस परम तत्त्व की कृपा प्राप्त कैसे हो? मात्र श्रद्धा से भी कृपा नहीं मिल जाती है! कृपा प्राप्त करने का अनमोल उपाय, श्री सुमतिनाथ भगवंत की स्तवना में कविराज-योगीश्वर ने बताया है।

वह मार्ग है, समर्पण का! संपूर्ण समर्पण का! कोई शर्त नहीं...कोई आकांक्षा नहीं...मात्र समर्पण! मन-वनच-काया का समर्पण! परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाना है। 'अहं' को भूल जाना है, 'अर्हम्' घटघट में गूँजना चाहिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुमति-चरणकज आतम-अरपणा, दरपण जिम अविकार, सुज्ञानी,
मति तरपण बहु- सम्मत जाणिए, परिसरपण सुविचार सुज्ञानी.
त्रिविध सकल तनुधरगत आतमा, बहिरातम धुरि भेद, सुज्ञानी...!
बीजो अंतर आतम तीसरो, परमातम अविच्छेद...सुज्ञानी...!
आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप सुज्ञानी...!
कायादिकनो हो साखीधर रह्यो, अंतर आतमरूप सुज्ञानी...!
ज्ञानानन्दे हो पूरण पावनो, वर्जित सकल उपाध, सुज्ञानी...!
अतीन्द्रिय गुण-गण-मणि आगरु, एम परमातम साध, सुज्ञानी...!
बहितराम तजी अंतर आतमा, रूप थई स्थिरभाव सुज्ञानी!
परमातमनुं हो आतम भाववुं, आतम-अर्पण दाव, सुज्ञानी!
आतम अर्पण वस्तु विचारतां, भरम टले मतिदोष सुज्ञानी!
परम पदारथ संपत्ति संपजे, आनंदघन रसपोष सुज्ञानी!

- समर्पण!
- परमात्मा के चरणों में समर्पण!
- कमल जैसे निर्लेप चरणों में समर्पण!
- दर्पण जैसे विकार-विहीन चरण-कमल में समर्पण!

निर्लेप-निर्विकार चरणों में समर्पण करने के लिए, विषयासक्ति से मुक्त होने की तमन्ना चाहिए। निर्लेप और निर्विकार होने की तीव्र इच्छा चाहिए।

समग्रतया समर्पण तब होगा, जब मनुष्य अपने आग्रहों का विसर्जन करेगा। विसर्जन के बिना समर्पण संभव नहीं है। न अपनी स्वयं की कोई मान्यता रहे, न अपने स्वयं के कोई आग्रह रहे...तब सुमतिनाथ के चरणकमल में समर्पित हो सकते हैं। अहं-प्रेरित मान्यताएँ और आग्रह, दुर्मति है। दुर्मति का त्याग किये बिना सुमति के चरणों में समर्पण कैसे होगा?

बच्चे को जब तक अपने व्यक्तित्व का बोध नहीं होता है....वह माता के प्रति समर्पित होता है। समर्पण का वह बीज है। परमात्मा के प्रति समर्पण, वह वृक्ष होता है। सच्चा प्रेम, सच्चा समर्पण स्वयं को भूलने से ही हो सकता है। भक्तियोग के आराधक सज्जन पुरुषों को ऐसा समर्पण ही अभिप्रेत है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुमति-सुविचारों की दुनिया में, इस समर्पण-भाव से प्रवेश होता है। परमात्मा-चरणों में समर्पित मनुष्य के हृदय में दिन-रात सुविचार ही बने रहते हैं। सभी मनुष्यों के लिए यह बात संभव नहीं होती है। कैसा मनुष्य समर्पित हो सकता है, वह बात बताने के लिए कविराज तीन प्रकार की आत्माएँ बताते हैं।

त्रिविध सकल तनुधर आतमा, बहितराम धुरिभेद।
बीजो अंतर-आतम, तीसरो परमातम अविच्छेद.

शरीरधारी जीवात्माएँ तीन प्रकार की होती हैं- बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। 'धुरि भेद' का अर्थ है प्रथम प्रकार और 'अविच्छेद' का अर्थ है अखंड, अविनाशी।

अब, बहिरात्मा का स्वरूप बताते हुए कहते हैं-

आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप.

शरीर, इन्द्रियाँ वगैरह में ही जो आत्मा मानता है, 'शरीर ही आत्मा है,' ऐसी मान्यता रखता है, वह बहिरात्मा है। पंचभूत से शरीर पैदा होता है और पंचभूत में विलीन हो जाता है! शरीर से भिन्न कोई आत्मतत्त्व नहीं है। परलोक में जानेवाली कोई आत्मा नहीं है...! ऐसी भ्रमणाओं में आबद्ध बहिरात्मा शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्श के असंख्य सुखों की कामना करता रहता है, भोग-उपभोग में आसक्त बना रहता है और अनन्त भवसागर में खो जाता है। 'बहिरातम अघरूप' का अर्थ है बहिरात्मा दोषों से-पापों से भरपूर होता है। चूँकि पाप-पुण्य का भेद वह मानता ही नहीं है।

अन्तरात्मा का स्वरूप बताते हुए कहते हैं-

कायादिकनो हो साखीधर रह्यो, अंतर आतम रूप.

'शरीर में शरीर से भिन्न आत्मा मात्र साक्षीभाव से रही हुई है,' ऐसी मान्यता होती है, अन्तरात्मा की। हालाँकि, शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व की श्रद्धा-मान्यता होने के बाद, आत्मस्वरूप के निर्णय में...अनेक मान्यताओं में से वह गुजरता है! यदि वह वैदिक परंपरा में जीता है तो 'आत्मा नित्या है,' ऐसी एकान्त मान्यता होगी। बौद्ध परंपरा में जीता है तो 'आत्मा अनित्य है,' ऐसी एकान्त मान्यता होगी। जैन परंपरा में जीता है तो 'आत्मा नित्यानित्य है,' ऐसी अनेकांत मान्यता होगी कि जो मान्यता तर्कसिद्ध एवं यथार्थ है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'आत्मा ही कर्मबंधन करती है, कर्मफल भोगती है और कर्मों का नाश करती है...' इस सिद्धांत पर श्रद्धा होते हुए भी अनेकान्त दृष्टि से, निश्चय नय की दृष्टि से 'आत्मा कर्ता-भोक्ता नहीं है परन्तु मात्र ज्ञाता और द्रष्टा है' ऐसी विभावना अन्तरात्मा करती रहती है। 'शुद्धात्म-द्रव्यमेवाहं-' मैं शुद्ध आत्मद्रव्य हूँ- ऐसी चेतनावस्था में अंतरात्मा की जीवनयात्रा बहती है।

शरीर एवं इन्द्रियों की प्रकृतियों में 'मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ, मैं तो मात्र साक्षीरूप हूँ,' इस प्रकार की जागृति रखता है। इससे वह [अन्तरात्मा] राग-द्वेष पर विजय पाता है। जीवन में शांति, समता और प्रसन्नता का अनुभव करता है।

परमात्मा का स्वरूप बताते हुए कहते हैं-

ज्ञानानन्दे हो पूरण पावनो, वर्जित सकळ उपाध,
अतीन्द्रिय गुण-गण-मणि आगरु एम परमातम साध!

परमात्मा-

- ज्ञानानन्द से पूर्ण होते हैं,
- पवित्र होते हैं,
- सभी उपाधि से मुक्त और
- अनन्त गुणों की खान...होते हैं।

ध्येयस्वरूप परमात्मदशा को, योगीश्वर आनन्दघनजी ने स्पष्ट किया है। बहिरात्मदशा में तो यह परमात्मस्वरूप मनुष्य को जरा भी आकर्षित नहीं करता है। जो आत्मा को ही नहीं मानता है, वो परमात्मा को कैसे मानेगा?

अंतरात्मदशा में ही परमात्मस्वरूप आत्मा को आकर्षित करता है। 'यह परमात्मस्वरूप ही मेरा वास्तविक स्वरूप है, मुझे वह स्वरूप प्राप्त करना है। शीघ्र प्राप्त करना है। मुझे ज्ञानानन्द से परिपूर्ण होना है। सभी पापों से मुक्त-पावन बनना है मुझे। सब प्रकार की शारीरिक मानसिक उपाधियों से मुक्त बनना है मुझे। मेरा स्वरूप अतीन्द्रिय है! मेरे गुण अनन्त हैं... मुझे गुणमय स्वरूप प्राप्त करना है।'

अंतरात्मा की ऐसी-ऐसी अभिरूचियाँ होती हैं। परमात्मस्वरूप वह जानता है, चाहता है और पाने का पुरुषार्थ करता है। इस प्रकार समर्पण की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभेदभावात्मक भूमिका पर पहुँच कर, परमात्मा का अचिन्त्य अनुग्रह प्राप्त करने की दिशा में गतिशील होना चाहिए।

बहिरातम तजी अंतरआतमा-रूप थई स्थिरभाव,
परमातमनुं हो आतम भाववुं, आतम-अर्पण दाव!

- बहिरात्मदशा का त्याग करना,
- अन्तरात्मदशा में स्थिर होना,
- `आत्मा ही परमात्मा है' - ऐसी भावना से भावित होना।

यह है परमात्म-चरणों में समर्पण करने का उपाय।

बहिरात्मदशा दूर होना, मनुष्य के वश की बात नहीं है। काल-परिपाक होने पर, भवस्थिति का परिपाक होने पर, सद्गुरु का समागम होने पर और परमात्मा का अचिन्त्य अनुग्रह होने पर बहिरात्मदशा दूर होती है। अन्तरात्मदशा प्राप्त होने पर, उस दशा में स्थिरता प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा। ज्ञानयोग और भक्तियोग में निरत रहने से अन्तरात्मदशा में स्थिरता आती है।

जैसे स्थिर पानी में, मनुष्य की स्पष्ट आकृति प्रतिबिंबित होती है, वैसे स्थिर अन्तरात्मदशा में परमात्मा प्रतिबिंबित होते हैं। 'मैं ही परमात्मा हूँ!' आनन्द से आत्मा चिल्लाती है। 'अहं ब्रह्मास्मि'- मैं ही ब्रह्म-परमात्मा हूँ।' यह कथन इस भूमिका पर चरितार्थ होता है।

इसी को समर्पण कहते हैं, श्री आनन्दघनजी। अन्तरात्मा की स्वच्छ, निर्मल..स्थिर अवस्था में परमात्मा का प्रतिबिंब दिखाई देता है, इसलिए अन्तरात्मा बनने का प्रयत्न करें।

आतम-अर्पण वस्तु विचारतां भरम टले मतिदोष,
परम पदारथ संपत्ति संपजे, आनदघन-रस पोष.

आत्मसमर्पण की बात, रहस्यभूत बात जब सोचते हैं, तब बुद्धि की भ्रमणाओं की जाल नष्ट हो जाती है। भ्रमणाओं के भूत भाग जाते हैं। कर्तृत्व-भोक्तृत्व के भ्रम के परदे उठ जाते हैं। अन्तरात्मा क्षायिक गुणों की संपत्ति प्राप्त कर लेती है। केवलज्ञान-केवलदर्शन-वीतरागता और अनन्त वीर्य प्राप्त हो जाता है। प्रकृष्ट आनन्द-रस की अनुभूति हो जाती है।

परमात्म-चरणों में किया हुआ समर्पण, आत्मा को परमात्मा बनाता ही है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्तरात्मा का समर्पण चाहिए। अन्तरात्मा बनकर, परमात्मा से प्रीति बाँधनी चाहिए। प्रीति भक्ति पैदा करेगी। भक्तिभाव शरणागति का स्वीकार करवायेगा। शरणागति समर्पण करवायेगी। समर्पण से परमात्मदशा प्राप्त होती है।

'हे सुमतिनाथ भगवंत! आपके अचिंत्य प्रभाव से मेरी आत्मा अन्तरात्मा बने। मेरी अन्तरात्म-दशा स्थिर बने। स्थिर बनी अन्तरात्मदशा में आप प्रतिबिंबित बनो...., यही मेरी प्रार्थना है।

चेतन, समर्पण का रहस्य तू समझना। पुनः-पुनः इस स्तवना का चिंतन करना.... और समर्पण के मार्ग पर प्रयाण करने की तैयारी करना! कुशल रहे-यही कामना,

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री पद्मप्रभ स्वामी

स्तुति

पद्मप्रभ-प्रभोर्देह-भासः पुष्णन्तु वः श्रियम्।
अन्तरंगारि-मथने, कोपाटोपादिवारुणाः ।।

प्रार्थना

पद्मप्रभ जिन पाप जलाये, ताप मिटाये जीवन के
सुसीमा सुत सुख के सागर, संताप हटाये तन-मन के!
प्रभु कृपा के कमल हमारे, मन-उपवन में खिला करें
जीवन पथ पर प्रभो तुम्हारा, मार्गदर्शन मिला करें ।।

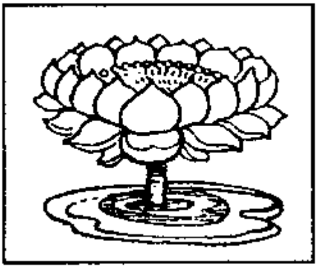

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री पद्मप्रभ स्वामी

१	माता का नाम	*सुसीमा रानी*
२	पिता का नाम	*श्रीधर राजा*
३	च्यवन कल्याणक	*माघ कृष्णा ६/कौशाम्बी*
४	जन्म कल्याणक	*कार्तिक कृष्णा १२/कौशाम्बी*
५	दीक्षा कल्याणक	*कार्तिक कृष्णा १३/कौशाम्बी*
६	केवलज्ञान कल्याणक	*चैत्र शुक्ला १५/कौशाम्बी*
७	निर्वाण कल्याणक	*मार्गशीर्ष कृष्णा ११/सम्मेतशिखर*
८	गणधर	*१०७ प्रमुख सुद्योत*
९	साधु	*संख्या ३ लाख ३० हजार प्रमुख सुद्योत*
१०	साध्वी	*संख्या ४ लाख २० हजार प्रमुख रति*
११	श्रावक	*संख्या २ लाख ७६ हजार*
१२	श्राविका	*संख्या ५ लाख ५ हजार*
१३	ज्ञानवृक्ष	*छत्राभ*
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	*कुसुम*
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	*श्यामा*
१६	आयुष्य	*३० लाख पूर्व*
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	*पद्म [कमल]*
१८	च्यवन किस देवलोक से?	*ग्रैवेयक*
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	*अपराजित के भव में*
२०	पूर्वभव कितने?	*३*
२१	छद्मस्थावस्था	*६ महीना*
२२	गृहस्थावस्था	*२९ लाख पूर्व एवं १६ पूर्वांग*
२३	शरीरवर्ण (आभा)	*लाल*
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	*निर्वृत्तिकरी*
२५	नाम-अर्थ	*माँ को कमलपत्र की शय्या में सोने की इच्छा हुई।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **आत्मा और परमात्मा का, जीव और शिव का भेद है कर्मों की वजह से। उन कर्मों को आत्मा से दूर करने के लिए कर्मों का ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा।**
- **सांख्यदर्शन में आत्मा को पुरुष कहते हैं.... कर्म को प्रकृति कहते हैं। पुरुष-प्रकृति की जोड़ी अनादि स्वभाव की है।**
- **मेरी आत्मा में आप प्रतिबिंबित होने लगोगे तब जीवन के प्रांगण में मंगल वाद्य बजने लगेंगे, आत्म-सरोवर में प्रेम की बाढ़ आयेगी।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : ७ श्री पद्मप्रभ स्वामी स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला।

श्री सुमतिनाथ भगवंत की स्तवना ने तेरे हृदय को रसप्लावित कर दिया.... और 'समर्पण' की तीव्र इच्छा पैदा हुई-जानकर आनन्द हुआ।

श्री पद्मप्रभ स्वामी की स्तवना में श्रीमद् आनन्दघनजी ने एक नयी ज्ञानदृष्टि प्रदान की है। 'आत्मा ही परमात्मा है,' तो फिर बहिरात्मा और अन्तरात्मा का भेद क्यों? अन्तरात्मा और परमात्मा का भेद क्यों? यह प्रश्न पैदा हुआ उनके मन में और समाधान भी पाया उन्होंने शास्त्रदृष्टि से।

गेय काव्य में गहन तत्त्वज्ञान की बातें बता देना, सरल काम नहीं है। उनकी उच्चतम कवित्व-शक्ति का, इन स्तवनाओं से परिचय होता है। हालाँकि जिनशासन के पारिभाषिक शब्दों से अपरिचित लोगों को काव्य अटपटा सा लगेगा, परन्तु जिस दर्शन का अध्ययन करना हो, उस दर्शन के पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान प्राप्त करना ही पड़ता है।

चेतन, इस स्तवना में बहुत अपरिचित पारिभाषिक शब्द हैं, घबराना मत! शब्दों को कुछ अंश में तो समझाता चलूँगा और कुछ तुझे अध्ययन से सीखना होगा!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मप्रभ जिन! तुझ मुझ आंतरुं रे, किम भांजे भगवंत?
कर्म विपाके कारण जोईने रे, कोई कहे मतिमंत....
पयइ-ठिइ-अणुभाग-प्रदेशथी रे, मूल-उत्तर बहु भेद,
घाती-अघाती हो बंधोदय-उदीरणा रे, सत्ता कर्मविच्छेद....
कनकोपलवत् पयडी-पुरुष तणी रे, जोडी अनादि स्वभाव,
अन्य संजोगी जिहां लगे आतमा, संसारी कहेवाय....
कारण जोगे हो बांधे बंधने रे, कारण मुगति मूकाय,
आश्रव-संवर नाम अनुक्रमे, हेय-उपादेय सुणाय....
'युं जन करणे' हो अंतर तुझ पड्यो रे, गुणकरणे करी भंग,
ग्रंथ-उक्ते करी पंडित जन कह्यो रे, अंतर भंग सुअंग....
तुझ-मुझ अंतर, अंतर भांजशे रे, वाजशे मंगल तूर,
जीव-सरोवर अतिशय वाधशे रे, आनंदघन रसपूर....

हे पद्मप्रभ जिन!

मैं अन्तरात्मा हूँ, आप परमात्मा हैं, अपना यह अन्तर कैसे दूर होगा? आप अब अन्तरात्मा की भूमिका पर आ नहीं सकते, मैं आपकी भूमिका पर आ सकता हूँ। मुझे ही आपके पास आना पड़ेगा.... आना चाहता हूँ.... परन्तु पहुँच नहीं पा रहा हूँ। अपना भेद मिटना चाहिए। मैंने एक प्रज्ञावंत पुरुष से यह प्रश्न पूछा। उन्होंने कहा : आत्मा और परमात्मा का, जीव और शिव का भेद है, कर्मों की वजह से। जब तक आत्मा कर्मों से बंधी हुई है, तब तक आत्मा-आत्मा ही रहेगी। कर्मों के बंधन टूट जाने पर, वही आत्मा परमात्मा बन जायेगी। आत्मा परमात्मा का अंतर मिट जायेगा। 'सादि-अनंत' मिलन हो जायेगा परमात्मा से।

उन कर्मों को आत्मा से दूर करने के लिए, कर्मों का ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। बहुत सूक्ष्म और गहन है, कर्म का तत्त्वज्ञान। फिर भी बुद्धिमान मनुष्य पा सकता है, वह तत्त्वज्ञान।

पयइ-ठिई-अणुभाग-प्रदेशथी रे, मूल-उत्तर बहु भेद

'पयई' प्राकृत भाषा का शब्द है, इसका अर्थ है प्रकृति! 'ठिई' भी प्राकृत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्द है, इसका अर्थ है स्थिति। 'अणुभाग' का अर्थ है रस और 'प्रदेश' का अर्थ है कर्मों का समूह।

कर्म जब आत्मा से बंधते हैं, तब इन चार प्रकारों से बंधते हैं। कर्मों का प्रकृतिबंध होता है, यानी कर्मों का भिन्न-भिन्न फल देने का स्वभाव निश्चित होता है। स्थितिबंध यानी आत्मा के साथ कर्मों का बंधनकाल निश्चित होता है। अनुभागबंध यानी कर्मों की तीव्र या मंद अनुभूति का निर्णय होता है। प्रदेशबंध का अर्थ है, कर्म-पुद्‌गलों के समूह का आत्मा के साथ सम्बन्ध।

कर्म के मूल भेद आठ हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, नाम, गोत्र, आयुष्य और वेदनीय।

कर्म के उत्तर-अवान्तर भेद हैं-१५८।

चेतन, यहाँ संक्षेप में ही बता रहा हूँ। विस्तार से तुझे समझना है, तो तू 'प्रशमरति-विवेचन' पढ़ना।

घाती-अघाती हो बंधोदय उदीरणा रे, सत्ता कर्म-विच्छेद

जो कर्म आत्मा के मूल गुणों (ज्ञान-दर्शन वगैरह) का घात करते हैं, वे घाती कर्म कहलाते हैं। जो कर्म आत्मा के उत्तर गुणों [शरीर, इन्द्रिय, आयुष्य, सुख-दुःख वगैरह] का घात करते हैं, वे अघाती कर्म कहलाते हैं। 'बंध' का अर्थ है, आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध। यह बंध होता है दूध और पानी जैसा। लोहे और अग्नि जैसा। 'उदय' का अर्थ है, बंधे हुए कर्मों का फल भोगना। 'उदीरणा' यानी बंधे हुए कर्म अपने निश्चित समय के पहले, विशेष प्रयत्न से उदय में लाये जायें और भोग लिये जायें। 'सत्ता' यानी बंधे हुए कर्मों का कुछ भी प्रतिभाव बताये बिना उदयकाल तक आत्मा में रहना। 'कर्मविच्छेद' यानी आत्मा ज्यों-ज्यों ऊपर-ऊपर के गुणस्थानक पर जाती है, त्यों-त्यों कुछ कर्म नष्ट होते जाते हैं। कोई कर्म बंधता नहीं है, कोई कर्म उदय में आता नहीं है, किसी कर्म की उदीरणा नहीं हो पाती है.... और कोई कर्म आत्मा से ही अलग हो जाता है।

चेतन, तेरे मन में यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि 'आत्मा को कर्म कब लगे? हजार साल पूर्व, लाख वर्ष पूर्व.... करोड़ वर्ष पूर्व....? कब लगे?' इस प्रश्न का समाधान करते हुए योगीश्वर कहते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कनकोपलवत् पयडी-पुरुष तणी रे, जोडी अनादि-स्वभाव

कनक = सोना, उपल = पाषाण। सोने की खान में जो सोना पाया जाता है, वह पत्थर में पाया जाता है। पत्थर और सोना संयुक्त होता है। वहाँ जाकर, खान में काम करनेवालों से पूछें कि 'सोना और पत्थर का संयोग कब हुआ?' तो क्या जवाब मिलेगा? अनादि! सोना और पत्थर का संयोग अनादि है। वैसे कर्म और आत्मा का संयोग अनादि है। कभी भी प्रारंभ नहीं हुआ संयोग का।

सांख्य दर्शन में कर्म को 'प्रकृति' [पयडी] कहते हैं और आत्मा को 'पुरुष' कहते हैं। कविराज ने यहाँ पर 'पयडी-पुरुष' शब्दों का प्रयोग सांख्यदर्शनानुसार किया है। प्रकृति-पुरुष की जोड़ी 'अनादि' स्वभाव की है। ऐसा मत समझना कि पहले अकेली आत्मा थी और बाद में कर्म उसको चिपक गये! अथवा, वेदांत दर्शन जैसे कहता है कि ईश्वर की इच्छा हुई कि मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ! और उसने सृष्टि की रचना कर डाली। वैसे आत्मा को ऐसी इच्छा कभी नहीं हुई कि मैं शुद्ध हूँ.... कर्मों से मैं बंध जाऊँ और अशुद्ध हो जाऊँ।

एक बार आत्मा संपूर्ण शुद्ध हो जाती है, कर्मों से मुक्त हो जाती है, बाद में वह कभी भी [अनन्तकाल] अशुद्ध नहीं होती, कर्म उसको चिपक नहीं सकते।

अन्य-संजोगी जिहां लगे आतमा रे, संसारी कहेवाय

जब तक आत्मा अन्य-संयोगी है, यानी कर्मों से बंधी हुई है, तब तक वह 'संसारी' आत्मा कहलाती है। अर्थात्, आत्मा जब कर्मों से रहित होती है, तब वह 'मुक्त' कहलाती है।

चेतन, मन में दूसरा प्रश्न भी पैदा हो सकता है : आत्मा के साथ कर्म क्यों बंधते हैं? कर्मबंधन के कौन से कारण होते हैं? और कौन से कारणों से कर्मबंधन टूटते हैं?

श्रीमद् आनन्दघनजी इसी प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं-

कारण जोगे हो बांधे बंधने रे, कारण मुगति मूकाय,
'आश्रव' 'संवर' नाम अनुक्रमे रे, हेय-उपादेय सुणाय....

जीवात्मा मन-वचन-काया से, कर्मबंध के कारणों का सेवन करने से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्मबंध करता है। कर्मबंध के कारणों को 'आश्रव' कहते हैं। मुख्य आश्रव पाँच हैं-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग और प्रमाद। आश्रव के ४२ प्रकार भी बताये गए हैं। इन्द्रिय-५, कषाय-४, अव्रत-५, योग-३ और क्रिया-२५।

मन-वचन-काया से जीवात्मा जब मुक्त होने के कारणों का सेवन करता है, तब वह कर्म बंधनों से मुक्त होता है। इन कारणों को 'संवर' कहते हैं 'संवर'। के ५७ प्रकार बताये गये हैं-समिति-५, गुप्ति-३, परिषह-२२, यतिधर्म-१०, भावना-१२ और चारित्र-५।

आश्रव हेय है, यानी त्याज्य है। संवर उपादेय है, यानी आदरणीय है, आराध्य है। आश्रव संसार में भटकाने वाला है, संवर संसार से पार उतारने वाला है।

युं जनकरणे हो अंतर तुज पड्यो रे.... गुणकरणे करी भंग....

हे भगवंत! 'तुज-मुज-अंतर' क्यों पड़ा है, इसका मूल कारण मुझे ज्ञात हो गया है। वह कारण है 'युंजन करण'। आत्मा को कर्मों से लिप्त करनेवाला गलत पुरुषार्थ मैं करता रहता हूँ, फिर अपना अंतर कैसे मिट सकता है?

'युज्' धातु से 'युंजन' शब्द बना है। 'युज्' का अर्थ होता है, जोड़ना। आत्मा का कर्मों से जुड़ना, उसे कहते हैं युंजनकरण।

हे वीतराग! अब मुझे 'गुणकरण' करना होगा। आत्मगुणों को प्रगट करनेवाला धर्मपुरुषार्थ करना होगा। भगवंत, मैं अब निरंतर आत्मगुणों का ध्यान करूँगा। आत्मगुणों की रमणता करने का अभ्यास करूँगा। प्रतिदिन.... अल्प क्षणों के लिए भी मेरी आत्मा को स्थिर और निर्मल बनाकर, उसमें आपका दर्शन करने का प्रयत्न करूँगा।

तुज-मुज आंतर अंतर भांजशे रे, वाजशे मंगल तूर
जीव-सरोवर अतिशय वाधशे रे, आनन्दघन रसपूर....

प्रभो, बाहर का अन्तर तो जब दूर होगा तब होगा, अभी तो मुझे आंतरिक अंतर मिटाना है। अन्तर को छूमंतर कर देना है। जब आंतरिक दूरी दूर होगी, मेरी आत्मा में आप प्रतिबिंबित होने लगोगे.... तब....? जीवन के प्रांगण में मंगल वाद्य बजने लगेंगे.... आत्म सरोवर में प्रेम की बाढ़ आयेगी.... प्रचुर आनंद की लहरें आकाश को छूने लगेंगी....।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आनन्द की ऐसी अनुभूति, आत्मा के ध्यान में होती है। अन्तरात्मा जब परमात्मा का निश्चल ध्यान करती है, तब वह दिव्य आनंद की अकथ्य अनुभूति करती है।

चेतन, अब युंजनकरण छोड़ना होगा, गुणकरण करना होगा। गुणों को प्रगट करने का प्रयत्न करना होगा। वह तब होगा जब तू अन्तरात्मा बना रहेगा। बहिरात्मदशा में तो जाना ही नहीं है। बहिरात्मदशा में 'युंजनकरण' ही होता है। अनन्त-अनन्त पापकर्म बंधते रहते हैं। अन्तरात्मदशा में 'गुणकरण' होता है।

आत्मा और परमात्मा का भेद मिटाने का उपाय मिल गया। अब उपाय करना है, अपन को। तू इस दिशा में पुरुषार्थशील बना रहे-यही मंगल कामना। तेरी कुशलता चाहता हूँ।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुपार्श्वनाथ भगवंत

स्तुति

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय, महेन्द्र-महिताङ्घ्रये।
नमश्चतुर्वर्ण-सङ्घ-गगनाभोग-भास्वते ।।

प्रार्थना

तीन जगत के तारक ओ तीर्थंकर, सब की आश हो तुम
पृथ्वीमाता के नंदन सुखकारी, स्वामी सुपार्श्व हो तुम
सुनो विनती हम भक्तों की, दुःखड़े सारे दूर करो
हम निशदिन करते हैं प्रार्थना, आज प्रभु मंजूर करो ।।

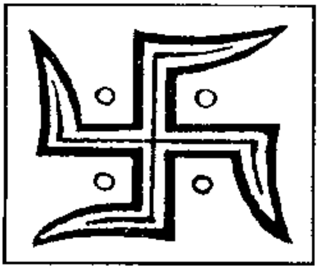

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुपार्श्वनाथ भगवंत

१	माता का नाम	पृथ्वी रानी
२	पिता का नाम	प्रतिष्ठ राजा
३	च्यवन कल्याणक	भाद्रपद कृष्णा १२/बनारस
४	जन्म कल्याणक	ज्येष्ठ शुक्ला १२/बनारस
५	दीक्षा कल्याणक	ज्येष्ठ शुक्ला १३/बनारस
६	केवलज्ञान कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ३/बनारस
७	निर्वाण कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ७/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या १०७ प्रमुख विदर्भ
९	साधु	संख्या ३ लाख प्रमुख विदर्भ
१०	साध्वी	संख्या ४ लाख ३० हजार प्रमुख सोमा
११	श्रावक	संख्या २ लाख ५७ हजार
१२	श्राविका	संख्या ४ लाख ९३ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	शिरीष
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	मातंग
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	शांता
१६	आयुष्य	२० लाख पूर्व
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	स्वस्तिक
१८	च्यवन किस देवलोक से?	ग्रैवेयक
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	नंदीषेण के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	९ महीना
२२	गृहस्थ अवस्था	१९ लाख पूर्व एवं २० पूर्वांग
२३	शरीर-वर्ण [आभा]	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	मनोहरा
२५	नाम-अर्थ	गर्भ में आने पर माता का शरीर सुंदर हो उठा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **जो परमात्मा की भक्ति करता है, वह श्रेष्ठ सुख-संपत्ति पाता है और जो परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है, वह संसार सागर को तैर जाता है।**
- **संसार और सिद्धि के बीच परमात्मा, पुल (Bridge) है। उस पुल पर निर्भयता से चलना है। दोनों किनारे सुरक्षित हैं।**
- **गुणों की अनुभूति किये बिना, अनुभव-ज्ञान प्राप्त किये बिना आत्मा की मुक्ति होनेवाली नहीं है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : ८ श्री सुपार्श्वनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

पत्र नहीं आया, तू स्वयं ही अचानक आ गया, श्री पद्मप्रभस्वामी की स्तवना को विशेष स्पष्टता से समझ कर चला गया....। तेरे जाने के बाद भी मेरा मन प्रसन्नता से हरा-भरा है।

आत्मा-परमात्मा का अन्तर ज्यों-ज्यों कम होता जाता है, घाती कर्मों की प्रबलता निर्बल बनती जाती है.... अन्तरात्मदशा में विशेष स्थिरता आती जाती है, त्यों-त्यों भीतर में आनन्द का महोदधि उछलता रहता है।

जब स्थिर.... शान्त और निर्मल आत्म-दर्पण में परमात्मा का प्रतिबिम्ब अवतरित होने लगता है, तब योगीश्वर आनन्दघनजी का मस्तक झुकता जाता है.... श्री सुपार्श्वनाथ भगवंत के अनेक रूप अवतरित होते हुए उनकी आँखें देखती रहती हैं। हृदय प्रेम और भक्ति से लबालब भरा हुआ है। समर्पण की भावना योगीश्वर को मुखरित कर देती है। उनके मुँह से गंभीर ध्वनि निकलती है-

श्री सुपार्श्वजिन वंदिए!

और.... कितने नाम-रूपों से वे भगवंत की वंदना करते हैं!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुपार्श्वजिन वंदिए
सुख-सम्पत्तिनो हेतु.... ललना
शांत सुधारस-जलनिधि
भवसागरमां सेतु.... ललना ।।१।।
सात महाभय टालतो
सप्तम जिनवर देव.... ललना
सावधान मनसा करी
धारो जिनपद सेव.... ललना ।।२।।
शिव शंकर जगदीश्वर
चिदानन्द भगवान.... ललना
जिन अरिहा तीर्थंकर
ज्योतिस्वरुप असमान.... ललना ।।३।।
अलख निरंजन वच्छलु
सकल जंतु विशराम.... ललना
अभयदान-दाता सदा
पूरण आतमराम.... ललना ।।४।।
वीतराग मद-कल्पना
रति-अरति-भय-सोग.... ललना
निद्रा-तंद्रा-दुरंदशा
रहित अबाधित योग.... ललना ।।५।।
परमपुरुष परमातमा
परमेश्वर परधान.... ललना
परम पदारथ परमेष्ठि
परमदेव परमान.... ललना ।।६।।
विधि विरंचि विश्वंभर
हृषिकेश जगन्नाथ.... ललना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अघहर अघमोचन धणी

मुक्ति परमपद-साथ.... ललना ।।७।।

एम अनेक अभिधा धरे

अनुभव-गम्य विचार.... ललना

ते जाणे तेहने करे

आनंदघन अवतार.... ललना ।।८।।

श्री आनंदघनजी, भक्तिरस में निमग्न होकर, श्री सुपार्श्वनाथजी की स्तवना के माध्यम से परमात्मा तीर्थंकर देव के अनेक गुणनिष्पन्न नामों को गा रहे हैं। भक्त हृदय में से प्रवाहित हुई यह परमात्मा की बिरदावली है। यह स्तवना, परमात्मा के गुणों की परिचय-पुस्तिका ही है।

कविराज अपनी ही आत्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं- हे आत्मन्! भावपूर्ण हृदय से तू सुपार्श्वनाथ भगवान को वंदन कर। वे सभी प्रकार की सुख-संपत्ति देने वाले हैं और दुःखपूर्ण संसार-सागर के ऊपर सेतु-समान हैं, यानी पुल हैं। उस पुल पर चलकर संसार-सागर को पार कर सकते हैं।

चेतन, जो परमात्मा की भक्ति करता है, वह श्रेष्ठ सुख-संपत्ति पाता है और जो परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है, वह संसार-सागर को तैर जाता है। परमात्मा उसके लिए पुल बन जाते हैं!

परमात्मा शान्त-सुधारस के महोदधि हैं। यह महोदधि कभी भी सूखता नहीं है। तालाब, सूर्य के प्रचण्ड ताप से सूख जाता है, सरोवर भी कभी सूख जाता है, परन्तु समुद्र कभी नहीं सूखता है। परमात्मा का शान्तरस निरन्तर प्रवाहित रहता है।

परमात्मा के प्रभाव का वर्णन करते हुए योगीश्वर कहते हैं :

सात महाभय टालतो, सप्तम जिनवर देव!

श्री सुपार्श्वनाथ सातवें तीर्थंकर हैं, और वे सात महाभयों को दूर करते हैं! यहाँ पर कविराज ने सात के अंक का महत्व बताया है। यूँ तो सभी तीर्थंकर सात भयों को दूर करने वाले होते हैं। परन्तु, सात महाभय कैसे दूर होते हैं, उसके लिए साधक आत्मा को क्या करना पड़ता है, वह कहते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सावधान मनसा करी, धारो जिनपद सेव!

जिनचरणों की सेवा, जागृत मन से करनी होगी। सावधान बनकर करनी होगी। कोई भौतिक सुखों का प्रलोभन जागृत नहीं हो जाना चाहिए। कोई निराशा.... हताशा से.... जिनचरणों की सेवा छूट नहीं जानी चाहिए। उनकी आज्ञाओं का पालन करने की भरसक कोशिश करते रहना चाहिए।

अब, श्री सुपार्श्वनाथ भगवंत को भिन्न-भिन्न नामों से वंदना करेंगे। इन नामों से भगवंत का व्यापक परिचय प्राप्त होता है।

१. हे भगवंत, आप **शिव** हैं, कल्याणकारी हैं, आपको मेरी वंदना!

२. हे भगवंत, आप **शंकर** हैं, शान्तिदाता हैं, आपको मेरी वंदना!

३. हे भगवंत, आप **जगदीश्वर** हैं, आप को मेरी वंदना!

४. हे भगवंत, आप **जिन** हैं, आपको मेरी वंदना!

५. हे नाथ, आप **भगवान** हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, आपको मेरी वंदना!

६. हे नाथ, आप **अरिहा** हैं, पूजनीय हैं, आपको मेरी वंदना!

७. हे नाथ, आप **अरुहा** हैं, पुनः संसार में लौटने वाले नहीं हो! आपको मेरी वंदना!

८. हे नाथ, आप **तीर्थंकर** हैं, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले हैं! आपको मेरी वंदना!

९. हे नाथ, आप **ज्योतिस्वरूप** हैं, तेजोमय हैं, आपको मेरी वंदना!

१०. हे नाथ, आप **असमान** हैं, अनन्य हैं, आपको मेरी वंदना!

११. हे प्रभो, आप **अलख** हैं, अगोचर हैं, आपको मेरी वंदना!

१२. हे प्रभो, आप **निरंजन** हैं, निर्मल हैं, आपको मेरी वंदना!

१३. हे प्रभो, आप **सकलजंतुविशराम** हैं, यानी सभी जीवों के लिए आश्वासनरूप हैं, आपको मेरी वंदना!

१४. हे प्रभो, आप **अभयदान-दाता** हैं, आपको मेरी वंदना!

१५. हे प्रभो, आप **पूरण आतमराम** हैं, संपूर्ण आत्मसुख में मग्न हैं, आपको मेरी वंदना!

१६. हे प्रभो, आप **वीतराग** हैं, आपको मेरी वंदना!

१७. हे प्रभो, आप **मदरहित** हैं, आपको मेरी वंदना!

१८. हे प्रभो, आप **कल्पनारहित** हैं, चिन्ता रहित हैं, आपको मेरी वंदना!

१९. हे प्रभो, आप **रतिरहित** हैं, खुशीरहित हैं, आपको मेरी वंदना!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२०. हे प्रभो, आप **अरतिरहित** हैं, नाराजगी रहित हैं, आपको मेरी वंदना!
२१. हे प्रभो, आप **भयरहित** हैं, आपको मेरी वंदना!
२२. हे जिनेश्वर, आप **निद्रारहित** हैं, आपको मेरी वंदना!
२३. हे जिनेश्वर, आप **तंद्रारहित** हैं, आपको मेरी वंदना!
२४. हे जिनेश्वर, आप **दुरंदशा**-दुर्दशारहित हैं, आपको मेरी वंदना!
२५. हे जिनेश्वर, आप **अबाधित योगवाले** हैं, यानी स्थिर समाधि वाले हैं, आपको मेरी वंदना!
२६. हे जिनेश्वर, आप **परमपुरुष** हैं, श्रेष्ठ हैं, आपको मेरी वंदना!
२७. हे जिनेश्वर, आप **परमात्मा** हैं, श्रेष्ठ आत्मा हैं, आपको मेरी वंदना!
२८. हे जिनेश्वर, आप **परमेश्वर** हैं, आपको मेरी वंदना!
२९. हे जिनेश्वर, आप **प्रधान** हैं, श्रेष्ठ हैं, आपको मेरी वंदना!
३०. हे जिनेश्वर, आप **परमपदार्थ** हैं-यानी श्रेष्ठ वस्तु हैं, आपको मेरी वंदना!
३१. हे जिनेश्वर, आप **परमेष्ठि** हैं, श्रेष्ठ पद पर हैं, आपको मेरी वंदना!
३२. हे शरण्य, आप **परमदेव** हैं, आपको मेरी वंदना!
३३. हे शरण्य, आप **परमान** हैं, प्रमाणभूत हैं, आपको मेरी वंदना!
३४. हे शरण्य, आप **विधि** हैं, यानी मोक्षमार्ग का विधान करने वाले हैं, आपको मेरी वंदना!
३५. हे शरण्य, आप **विरंची** हैं, यानी ब्रह्मा हैं, आपको मेरी वंदना!
३६. हे शरण्य, आप **विश्वंभर** हैं, विश्वव्यापक हैं, आपको मेरी वंदना!
३७. हे शरण्य, आप **हृषिकेश** हैं, यानी इन्द्रियविजेता हैं, आपको मेरी वंदना!
३८. हे शरण्य, आप **जगन्नाथ** हैं, आपको मेरी वंदना!
३९. हे शरण्य, आप **अघहर** हैं, पापों का नाश करने वाले हैं, आपको मेरी वंदना!
४०. हे शरण्य, आप **अघमोचन** हैं, जीवों को पापों से मुक्त करने वाले हैं, आपको मेरी वंदना!
४१. हे शरण्य, आप **धणी** हैं, मालिक हैं, आपको मेरी वंदना!
४२. हे शरण्य, आप **मुक्ति** हैं, यानी मुक्तिमय हैं, आपको मेरी वंदना!
४३. हे भगवंत, आप **परमपद** हैं, यानी मोक्षमय हैं, आपको मेरी वंदना!
४४. हे भगवत, आप **साथी** हैं, यानी सभी जीवों को तकलीफों में साथ देने वाले हैं, आपको मेरी वंदना!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतन, परमात्मा के ये सारे नाम, परमात्मा के स्वरूप को और उनके प्रभावों को बताने वाले हैं। परन्तु ये नाम मात्र बुद्धि से समझने के नहीं हैं। अनुभव से समझने के हैं।

एम अनेक अभिधा धरे, अनुभव गम्य विचार!
ते जाणे तेहने करे, आनन्दघन अवतार!

अभिधा का अर्थ है नाम। धर्मग्रन्थों का सहारा लेकर, प्रत्येक नाम में छुपा हुआ अर्थ अनुभव से प्राप्त करने का है।

शास्त्रों का काम मात्र दिशानिर्देशन का होता है। इसलिए शास्त्र के शब्दों को लेकर वाद-विवाद करना व्यर्थ है। अनुभव के मार्ग पर चलने का अभ्यास करना चाहिए। अनुभव से जो इन नाम-गुणों का साक्षात्कार करता है, वह 'आनन्दघन-अवतार' पाता है, यानी मोक्षदशा प्राप्त करता है।

चेतन, परमात्मा सुपार्श्व, भवसागर पर पुल [Bridge] हैं। पुल के दोनों किनारे [Side] 'सु' हैं यानी मजबूत हैं। 'सुपार्श्व' शब्द का कितना सुन्दर श्लेष बताया है। संसार और सिद्धि के बीच परमात्मा पुल हैं। उस पुल पर निर्भयता से चलना है। दोनों पार्श्व सुरक्षित हैं। नीचे गिरने का कोई भय नहीं है। हाँ, संसार सागर में कोई कंचन-कामिनी का आकर्षण हो जाय और मनुष्य स्वेच्छा से नीचे गिर पड़े, वह बात अलग है।

पुल पर चलते रहो, सिद्धि का लक्ष्य रखते हुए। परमात्मा की आज्ञाओं का अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार पालन करना, वह है पुल पर चलना।

परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करने की शक्ति मिलेगी, परमात्मा के चरणों में समग्रतया समर्पण करने से। परमात्मा हैं, शान्त सुधारस के सागर! उस सागर के किनारे-किनारे चलते रहो.... शीतलता मिलेगी, प्रसन्नता मिलेगी। जिनाज्ञा का पालन करने का उल्लास बढ़ता जायेगा।

गुणों की अनुभूति किये बिना, अनुभव ज्ञान प्राप्त किये बिना आत्मा की मुक्ति होने वाली नहीं है। आत्मानुभूति और परमात्मानुभूति के अनजान मार्ग पर चलने का साहस अब बटोरना ही होगा।

चेतन, अनुभूति की शीतल-गुहा में प्रवेश करने का सामर्थ्य तुझे प्राप्त हो- ऐसी मंगल कामना करता हूँ।

- प्रियदर्शन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री चन्द्रप्रभ स्वामी

स्तुति

चन्द्रप्रभ-प्रभोश्चन्द्र-मरीचि-निचयोज्ज्वला।
मूर्तिर्मूर्त-सितध्यान-निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः।।

प्रार्थना

चंदा के किरणों से शीतल चंद्रप्रभ स्वामी प्यारे
लक्ष्मणा रानी के हो दुलारे, सृष्टि के तारन हारे।
स्नेह सुधा बरसा के हमारे पाप ताप को शांत करो
विषय-विकारों में डूबी इस आत्मा को उपशांत करो ।।

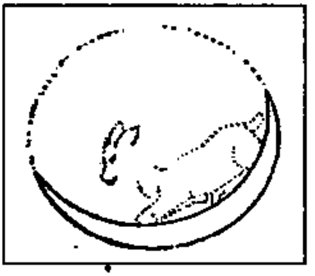

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री चन्द्रप्रभ स्वामी

१	माता का नाम	लक्ष्मणा रानी
२	पिता का नाम	महसेन राजा
३	च्यवन कल्याणक	चैत्र कृष्णा ५/चंद्रपुरी
४	जन्म कल्याणक	पौष कृष्णा १२/चंद्रपुरी
५	दीक्षा कल्याणक	पौष कृष्णा १३/चंद्रपुरी
६	केवलज्ञान कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ७/चंद्रपुरी
७	निर्वाण कल्याणक	भाद्रपद कृष्णा ७/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या ८८ प्रमुख दिन्नगणी
९	साधु	संख्या २ लाख ५० हजार प्रमुख दिन्नगणी
१०	साध्वी	संख्या ३ लाख ८० हजार प्रमुख सुमना
११	श्रावक	संख्या २ लाख ५० हजार
१२	श्राविका	संख्या ४ लाख ९१ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	पुन्नाग
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	विजय
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	भ्रुकुटि
१६	आयुष्य	१० लाख पूर्व
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	चन्द्र
१८	च्यवन किस देवलोक से?	वैजयंत
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	पद्म के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	७
२१	छद्मस्थ अवस्था	६ महीना
२२	गृहस्थ अवस्था	९ लाख पूर्व २४ पूर्वांग
२३	शरीर-वर्ण (आभा)	श्वेत [गौर]
२४	दीक्षा दिवस की शिबिका का नाम	मनोरमा
२५	नाम-अर्थ	माँ के मन में चन्द्रकिरणों को पीने की इच्छा हुई।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **श्री चंद्रप्रभ स्वामी की स्तवना के माध्यम से, योगीश्वर आनंदघनजी संसार-परिभ्रमण के प्रारम्भ से... कहाँ-कहाँ जीव भटका है, वह बताते हैं।**
- **हे सखी! इस मनुष्य जीवन में, जब परिपूर्ण इन्द्रियाँ मिली हैं और परिशुद्ध मन मिला है, तब परमात्मा की निष्काम भाव सेवा कर लेने दे! रुकावट मत कर।**
- **परमात्मा, इच्छाओं को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष हैं। मेरी इच्छा को वे अवश्य पूर्ण करेंगे। मेरा मोहनीय कर्म अवश्य नष्ट होगा।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : ९ श्री चन्द्रप्रभ स्वामी स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र नहीं है। तू कुशल होगा। यहाँ भगवंत ऋषभदेव की शीतल छाया में हमारी संयमयात्रा, ज्ञानयात्रा सानन्द संपन्न हो रही है।

न सा जाइ न सा जोणी न तं ठाणं न तं कुलं।
न जाया न मुआ जत्थ सव्वे जीवा अणंतसो ।।

ऐसी कोई जाति नहीं है, ऐसी कोई योनि नहीं है, ऐसा कोई स्थान नहीं है और ऐसा कोई कुल नहीं है कि जहाँ जीवात्मायें पैदा न हुए हो और मरे न हो! एक-दो बार नहीं, अनन्त-अनन्त बार!

परन्तु चेतन, इस अनन्तकालीन संसारपरिभ्रमण में, वीतराग परमात्मा का दर्शन कब मिलता है? श्री चन्द्रप्रभस्वामी की स्तवना के माध्यम से योगीश्वर आनन्दघनजी संसार-परिभ्रमण के प्रारंभ से.... कहाँ-कहाँ जीव भटका है.... बताते हैं। अपने बीते हुए अनन्त जन्मों की स्मृति.... शास्त्रों के माध्यम से की जा सकती है।

श्वास ऊँचा हो जाय.... वैसी अनन्त जन्मों की कहानी है। एक जीव की नहीं, सभी जीवों की। श्री चन्द्रप्रभस्वामी भगवंत की स्तवना के माध्यम से यह कहानी कही गई है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देखण दे रे सखी! मुने देखण दे....
चन्द्रप्रभ-मुखचन्द.... सखी,
उपशम रसनो कन्द.... सखी,
गत कलिमल दुःखदंद.... सखी! देखण दे....

सुहुम निगोदे न देखियो.... सखी,
बादर अति ही विशेष.... सखी,
पुढवी, आउ न लेखियो.... सखी,
तेउ-वाउ लेश.... सखी! देखण दे....

वनस्पति अति घण दिहा.... सखी,
दीठो नहीं देदार.... सखी,
बि-ति-चउरिंदिय जललीहा.... सखी,
गत सन्नि पण धार.... सखी! देखण दे....

सुर-तिरि-निरय निवासमां.... सखी,
मनुज अनारज साथ.... सखी,
अपज्जत्ता प्रतिभासमां.... सखी,
चतुर न चढियो हाथ.... सखी! देखण दे....

इम अनेक थल जाणीए.... सखी,
दर्शन विण जिनदेव.... सखी,
आगमथी मत जाणीए.... सखी,
कीजे निर्मल सेव.... सखी! देखण दे....

निर्मल साधु-भक्ति लही... सखी,
योग - अवंचक होय... सखी,
क्रिया-अवंचक तिम सही... सखी,
फल - अवंचक जोय... सखी! देखण दे...

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रेरक अवसर जिनवरु... सखी,
मोहनीय क्षय जाय... सखी,
कामित पूरण सुरतरु... सखी,
आनन्दघन प्रभु पाय... सखी! देखण दे...

परमात्मदशा प्राप्त करने को लालायित आत्मा, परमात्मस्वरूप का दर्शन पाने के लिए कितनी तत्पर होती है, वह तत्परता इस स्तवना में दिखाई देती है। योगीश्वर श्री आनन्दघनजी अपनी ही चेतना को 'सखी' कह कर पुकारते हैं। सखी यानी सहेली।

हे सखी, अब तो मुझे चन्द्रप्रभस्वामी का मुखचन्द्र देखने दे। वह मुखचन्द्र उपशमरस का स्रोत है। उस मुखचन्द्र का दर्शन करने से कलहों का मल दूर चला जाता है, सुख-दुःख के द्वन्द्व मिट जाते हैं...अन्तःकरण शान्तसुधा का अनुभव करता है।

यहाँ परमात्मा के मुखचन्द्र का दर्शन करने का अवसर मिला है। बीते हुए अनन्तकाल में ऐसा अवसर नहीं मिला था।

'सुहुम निगोदे न देखियो बादर अतिही विशेष'

चेतन, **'निगोद'** शब्द जैन परिभाषा का शब्द है। जीवों की एक विशिष्ट संज्ञा है। सूक्ष्म (सुहुम) निगोद के जीव होते हैं, बादर निगोद के जीव होते हैं। सूक्ष्म निगोद के जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि विशिष्ट प्रत्यक्ष ज्ञानी ही देख सकते हैं, अपन नहीं देख सकते। बादर निगोद के जीव भी समूह में देख सकते हैं, एक...दो...चार को नहीं देख सकते, यानी संख्या में नहीं देख सकते। अनन्त के साथ में ही देख सकते हैं। अपनी आत्मा सर्वप्रथम सूक्ष्म निगोद में थी। वहाँ अनन्तकाल जन्म-मृत्यु पाये...। वहाँ मात्र स्पर्शनेन्द्रिय थी। मन नहीं था, दूसरी इन्द्रियाँ नहीं थी। वहाँ परमात्मा का दर्शन असंभव ही था। इस सृष्टि में सूक्ष्म निगोद के जीवों का 'जीव' रूप में व्यवहार ही नहीं होता है। जब बादर (सूक्ष्म की अपेक्षा कुछ बड़े) निगोद में जीव आता है, तब उसकी संसारयात्रा प्रारम्भ होती है।

वे निगोद के जीव, संसार के दूसरे सभी जीवों से 'अति ही विशेष' होते हैं, यानी बहुत ज्यादा होते हैं, अनन्तगुणा ज्यादा होते हैं।

जहाँ चेतना सुषुप्त होती है, जहाँ मात्र एक ही इन्द्रिय होती है... और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनन्त दुःख होता है (एक-एक शरीर में अनन्त जीवों का जन्म-मृत्यु होता रहता है) वहाँ परमात्मदर्शन की संभावना ही नहीं होती।

इसलिए कविराज कहते हैं - अब तो सखी, मुझे दर्शन करने दे। आज तो मैं मनुष्य हूँ। मुझे पाँच इन्द्रियाँ हैं, मन है... परमात्मा का संयोग है... तो फिर दर्शन में क्यों रुकावट?

'पुढवी आउ न लेखियो तेउ-वाउ न लेश'

'वनस्पति अति घण दिहा दीठो नहीं देदार'

[पुढवी = पृथ्वी, आउ = पानी, तेउ = अग्नि, वाउ = वायु, घण = बहुत, दिह = दिवस]

निगोद से निकला, पृथ्वी के जीव के रूप में जन्मा, पानी का जीव बना, अग्नि का जीव बना, वायु का जीव बना, वनस्पति का जीव बना...इन योनियों में भी असंख्य काल बीता... परन्तु हे सखी, परमात्मा का दर्शन नहीं हो पाया। इन योनियों में भी मात्र एक ही स्पर्शनेन्द्रिय थी, मन नहीं था! कैसे मैं परमात्मा का दर्शन कर पाता?

'बि-ति-चउरिंदिय जललीहा गतसन्नि पण धार...'

संसार यात्रा आगे बढ़ी। बेइन्द्रिय बना। स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय-दो इन्द्रियाँ मिली। शंख बना, कृमि बना, लकड़ी में कीड़ा बना...। बाद में तेइन्द्रिय बना। तीसरी घ्राणेन्द्रिय मिली। खटमल, जूं, मकोड़ा,... वगैरह बना...। बाद में चउरिन्द्रिय बना। चौथी चक्षुरिन्द्रिय मिली। बिच्छु, भ्रमर, मक्खी...मच्छर...वगैरह बना...। बाद में पंचेन्द्रिय बना। पाँचवीं श्रवणेन्द्रिय मिली...परन्तु मन नहीं मिला। [गतसन्नि=असंज्ञी=मनरहित] जलचर [जललीहा] जीव बना [पणउपंचेन्द्रिय] पंचेन्द्रिय बना परन्तु बिना मन का।

सखी, ऐसी योनियों में मैं परमात्मा के चन्द्र समान मुख का दर्शन कैसे करता? नहीं मिला वहाँ प्रभुदर्शन...इसलिए कहता हूँ कि यहाँ मुझे परमात्मा के दर्शन करने दे।

सुर-तिरि-निरय-निवासमां मनुज अनारज साथ

अपज्जत्ता प्रतिभासमां चतुर न चढियो हाथ।

[सुर = देव, तिरि = पशु-पक्षी, निरय = नरक, मनुज = मनुष्य, अनारज = अनार्य]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संसारयात्रा के दौरान मैं देवलोक में देव भी हुआ, वहाँ पर भी मुझे नहीं लगता है कि मैंने सच्चे मन से तीर्थंकर भगवंतों के जन्मकल्याणक वगैरह पवित्र प्रसंगों में एवं समवसरण में जाकर परमात्मा के दर्शन किये हों...! तन्मय होकर तीर्थंकर भगवंत की देशना सुनी हो! पशु-पक्षी की योनि में तो परमात्मदर्शन होने की आशा ही कहाँ? मात्र आँखों से देखना, वह दर्शन मुझे अभिप्रेत नहीं है। अन्तरात्मा बनकर परमात्मा के दर्शन करूँ-वह मुझे अभिप्रेत है।

बहिरात्मदशा में तो कई बार देव बनकर या पशु-पक्षी बनकर दर्शन किये होंगे... परन्तु वे दर्शन महत्व के नहीं होते।

नरकगति में परमात्म-दर्शन की कल्पना भी नहीं कर सकते! अपार वेदनाओं में, घोर कदर्थनाओं में परमात्मदर्शन की संभावना ही कहाँ? हालाँकि देवगति और नरकगति में जीवों को सम्यग्दर्शन हो सकता है, सम्यग्दर्शन वाली आत्मा अन्तरात्मा होती है, बहिरात्मा नहीं होती, फिर भी जो 'परमात्म दर्शन' आनन्दघनजी को यहाँ पर अभिप्रेत है, वह परमात्म-दर्शन वहाँ संभव नहीं है।

मनुष्य जन्म भी अनेक बार मिला है, संसार के अनन्त परिभ्रमण काल में, परन्तु अनार्य देश में अनार्य लोगों के परिवारों में मिला हुआ मनुष्य जन्म भी किस काम का? आर्य देश में मनुष्य जन्म मिला हो परन्तु परिवार अनार्य हो, धर्महीन हो, पापप्रचुर हो, तो किस काम का मनुष्य जन्म? वैसे मनुष्य जीवन में परमात्मदर्शन पाने की कोई संभावना नहीं होती।

अपर्याप्त-अवस्था तो ऐसी मूढ़ अवस्था है कि जहाँ आत्मा को सुध-बुध ही नहीं होती...फिर परमात्मा के दर्शन की तो बात ही कहाँ! अपर्याप्त अवस्था होती है, गर्भावस्था के प्राथमिक क्षणों में। जहाँ मन नहीं होता है। शरीर भी बिन्दु के रूप में होता है।

पर्याप्त-अवस्था हो, यानी शरीर, इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन तैयार हो गया हो, परन्तु सब अस्पष्ट होता है, आभास मात्र होता है...तब तक [गर्भावस्था में] परमात्मदर्शन की कोई शक्यता नहीं होती है।

हे सखी चेतना! मैं इन सभी अवस्थाओं में से गुजरा हूँ, कहीं पर भी मुझे परमात्मा के उपशमरस-भरपूर मुखचन्द्र का दर्शन नहीं हुआ है। अब, इस उद्बुद्ध अवस्था में तो मुझे दर्शन करने दे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

योगीश्वर के इस बात पर प्रश्न पैदा होता है कि 'आपने कैसे जाना कि इन सब गतियों में... योनियों में आपको परमात्मा के दर्शन नहीं हुए?' इस प्रश्न का जवाब वे स्वयं देते हैं -

इम अनेक थल जाणिए दर्शन विण जिनदेव
आगमथी मत जाणिए कीजे निर्मल सेव...

वे कहते हैं- मैंने यह बात आगम ग्रन्थों से जानी है। सर्वज्ञ शासन से मुझे ज्ञात हुआ है कि वैसी-वैसी योनियों में मुझे जिनेश्वरदेव के दर्शन नहीं मिले हैं। 'आगमथी मत जाणिए' यानी आगमग्रन्थों से मुझे यह विचार [मत] मिला है।

इसलिए हे सखी! इस मनुष्य जीवन में, जब परिपूर्ण पाँच इन्द्रियाँ मिली हैं और परिशुद्ध मन मिला है, तब परमात्मा की निष्काम भाव से सेवा कर लेने दे। रुकावट मत कर। विलंब मत करने दे। जब मुझे श्री चन्द्रप्रभस्वामी का सान्निध्य प्राप्त हुआ है, तब...मेरी तीव्र इच्छा को परिपूर्ण होने दे। ऐसा योग-संयोग महान् पुण्य के उदय से प्राप्त होता है।

सद्‌गुरु का संयोग भी महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है - यह बात बताते हुए कहते हैं -

निर्मल साधु भक्ति लही योग-अवंचक होय,
क्रिया-अवंचक तिम सही फल-अवंचक जोय।

वंचक का अर्थ होता है, ठगने वाला। अवंचक यानी नहीं ठगने वाला। कुछ व्यक्तियों का संयोग ठगने वाला होता है। या तो वह हमें ठगता है, या हम उसको ठगते हैं। साधु पुरुषों का संयोग ठगने वाला नहीं होना चाहिए। न उनको हम से कोई भौतिक स्वार्थ होना चाहिए, न हमें उनसे कोई भौतिक-सांसारिक स्वार्थ होना चाहिए। तब वह योग-संयोग 'अवंचक' होता है।

जिनके दर्शन होने मात्र से पापी पावन बन सकता है, जिनके दर्शन मात्र से कल्याण की प्राप्ति हो सकती है, ऐसे सज्जन साधु पुरुषों का दर्शन मिलना, उसे 'योग-अवंचक' कहते हैं।

ऐसे साधु पुरुषों का योग मिलने पर, उनको वंदन करना, सेवा करना...निष्काम भाव से, वह है 'क्रिया अवंचक'। उनसे उपदेश पाकर हर धर्मक्रिया विधिपूर्वक करनी चाहिए। **क्रिया-अवंचक** योग प्राप्त करने वाला वैसे ही क्रिया करेगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसका शुभ-श्रेष्ठ फल अवश्य प्राप्त होता है- उसको **फल-अवंचक** कहते हैं। ये तीन अवंचक योग, उसी आत्मा को प्राप्त होते हैं कि जो आत्मा अनंत पापकर्मों से मुक्त होती है...जिनकी मुक्ति निकट के भविष्य में निश्चित होती है।

योगीश्वर श्री आनन्दघनजी, इसी तरह परमात्मा का योग-संयोग चाहते हैं। परमात्मा से अवंचक योग चाहते हैं।

प्रेरक अवसर जिनवरु मोहनीय क्षय जाय

कामितपूरण सुरतरु आनन्दघन प्रभु पाय...

कभी...किसी मनुष्य जन्म में...जिनेश्वर भगवंत का संयोग मिल जाय... मैं उनकी चरणसेवा करूँगा, उनकी आज्ञाओं का पालन करूँगा तो अवश्य सभी पापों का मूल मोहनीय कर्म नष्ट होगा। यही फल-अवंचक योग मुझे चाहिए। यूँ भी परमात्मा तो 'कामित-पूरण सुरतरू' हैं ही। इच्छाओं को पूर्ण करने वाले वे कल्पवृक्ष हैं। मेरी इच्छा को वे अवश्य पूर्ण करेंगे। उनकी प्रेरणा से मेरा मोहनीय कर्म नष्ट होगा...मुझे वीतरागता और निर्वाण प्राप्त होगा।

परमानन्दमय प्रभु के चरण-कमल कल्पवृक्ष-समान हैं। मेरी हार्दिक इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। इसलिए हे सखी! मुझे चन्द्रप्रभ स्वामी के चन्द्र समान शीतल मुख का दर्शन करने दे।

चेतन, चन्द्रप्रभ स्वामी की इस स्तवना के अवगाहन में मजा आ गया न? परमात्मा का दर्शन-पूजन कैसे किया जाना चाहिए, वह बात श्री सुविधिनाथ भगवंत की स्तवना में बतायेंगे। तेरी कुशलता चाहता हूँ-

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुविधिनाथ भगवंत

स्तुति

करामलकवद् विश्वं, कलयन् केवलश्रिया।
अचिन्त्य-माहात्म्य-निधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ।।

प्रार्थना

सुविधिनाथ प्रभु के चरणों में, सुख की नहीं है अवधि
रामानंदन कृपा करे तो, तृप्त बने मन की अवनि।
कितनी सुन्दर विधि बताई, दुःख से मुक्ति पाने की
प्रभु चरणों में दूर हो जाए, पीड़ा सारे जमाने की ।।

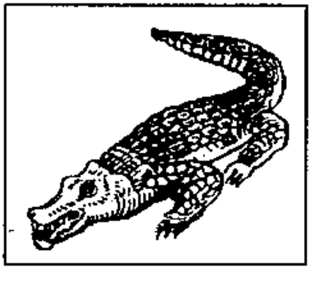

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सुविधिनाथ भगवन्त

१	माता का नाम	*रामा रानी*
२	पिता का नाम	*सुग्रीव राजा*
३	च्यवन कल्याणक	*फाल्गुन कृष्णा ९/काकंदी*
४	जन्म कल्याणक	*मार्गशीर्ष कृष्णा ५/काकंदी*
५	दीक्षा कल्याणक	*मार्गशीर्ष कृष्णा ६/काकंदी*
६	केवलज्ञान कल्याणक	*कार्तिक शुक्ला ३/काकंदी*
७	निर्वाण कल्याणक	*मार्गशीर्ष कृष्णा ६/सम्मेतशिखर*
८	गणधर	*संख्या ८८ प्रमुख वराह*
९	साधु	*संख्या २ लाख प्रमुख वराह*
१०	साध्वी	*संख्या १ लाख २० हजार प्रमुख वारुणी*
११	श्रावक	*संख्या २ लाख २९ हजार*
१२	श्राविका	*संख्या ४ लाख ७१ हजार*
१३	ज्ञानवृक्ष	*मालूर*
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	*अजित*
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	*सुतारका*
१६	आयुष्य	*२ लाख पूर्व*
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	*मगरमच्छ*
१८	च्यवन किस देवलोक से?	*आनत [९ वें देवलोक से]*
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	*महापद्म के भव में*
२०	पूर्वभव कितने?	*३*
२१	छद्मस्थ अवस्था	*४ महीना*
२२	गृहस्थ अवस्था	*१ लाख पूर्व एवं २८ पूर्वांग*
२३	शरीर-वर्ण (आभा)	*श्वेत (गौर)*
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	*सूरप्रभा*
२५	नाम-अर्थ	*गर्भ में आने पर माँ ने विधि को भलीभाँति जाना।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **परमात्मपूजन के लिए मंदिर जाना है, परन्तु शुष्क हृदय से, मूढ़ मन से नहीं जाना है। हृदय हर्ष से रोमांचित हो, शरीर में स्फूर्ति हो और मंदिर की ओर आगे बढ़ो।**
- **मंदिर में संसार की क्रियायें नहीं करने की हैं, संसार की बातें नहीं करने की हैं और संसार के विचार भी नहीं करने के हैं।**
- **परमात्मपूजन से अशान्त मन शान्ति पाता है, उद्विग्न चित्त हर्षान्वित होता है।**
- **कुछ कदाग्रही लोग रागी-द्वेषी देवों के मंदिर में जाते हैं, पीर-फकीर की मजारों पे जाते हैं.... परन्तु वीतराग तीर्थंकर के मंदिरों में नहीं जाते!**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १० श्री सुविधिनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

भक्तियोग में तेरी गति-प्रगति जानकर मन प्रसन्न हुआ। आर्तध्यान और रौद्रध्यान से ज्यों-ज्यों मन मुक्त होता जायेगा, त्यों-त्यों धर्मध्यान में विशेष स्थिरता प्राप्त होगी।

श्री चन्द्रप्रभस्वामी की स्तवना में तो श्री आनन्दघनजी ने परमात्ममिलन की तीव्र अभिलाषा अभिव्यक्त कर दी। परन्तु परमात्मा का जैसा मिलन वे चाहते हैं, वैसा मिलन इस भरतक्षेत्र में अभी कहाँ संभव है? अभी...भगवान महावीरदेव के निर्वाण के बाद...कोई भी तीर्थंकर इस भरतक्षेत्र में हुए नहीं और आगे हजारों वर्ष तक होंगे भी नहीं।

महाविदेह क्षेत्र में सदाकाल तीर्थंकर होते ही हैं...इस समय भी वहाँ २० तीर्थंकर भगवंत हैं, परन्तु यहाँ से वहाँ जाना संभव नहीं है। यहाँ का कोई वायुयान भी वहाँ नहीं जा सकता। ऐसी परिस्थिति में, परमात्मा का नाम और परमात्मा की मूर्ति ही प्रीति-भक्ति के माध्यम बनते हैं। परमात्मा का पूजन कैसे करना चाहिए, वह श्री सुविधिनाथजी की स्तवना में बताया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुविधि जिणेसर पाय नमीने
शुभ करणी एम कीजे रे,
अति घणो उलट अंग धरीने
प्रह उठी पूजीजे रे... सुविधि.
द्रव्य-भाव शुचि-भाव धरीने
हरखे देहरे जइये रे,
दह तिग, पण अहिगम साचवतां
एक मना धुरि थइए रे... सुविधि.
कुसुम, अक्षत, वरवास, सुगंधि
धूप दीप मन साखी रे,
अंगपूजा पण भेद सुणी इम
गुरुमुख आगम भाखी रे... सुविधि.
एहनु फल दोय भेद सुणी जे
अनंतर ने परंपर रे,
आणा-पालण चित्त प्रसन्नी
मुगति सुगति सुरमंदिर रे... सुविधि.
फूल अक्षत वर धूप पइवो
गंध नैवेद्य फल जल भरी रे,
अंग अग्र पूजा मली अडविध
भावे भविक शुभ गति वरी रे... सुविधि.
सत्तर भेद, एकवीस प्रकारे
अष्टोत्तर शत भेदे रे,
भावपूजा बहुविध निरधारी
दोहग - दुर्गति छेदे रे... सुविधि.
तुरिय भेद पडिवत्ति पूजा
उपशम खीण सयोगी रे,
चढण पूजा इम 'उत्तरज्झयणे'
भाखी केवल योगी रे... सुविधि.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इम पूजा बहु भेद सुणीने,
सुखदायक शुभ करणी रे
भविक-जीव करशे ते लेशे,
आनन्दघन-पद धरणी रे... सुविधि.

परमात्मप्रेम से जिनका हृदय लबालब भरा हुआ था, वे योगीश्वर आनन्दघनजी, परमात्ममिलन के लिए परमात्ममंदिर में जाते हैं। हालाँकि वे तो महाव्रतधारी श्रमण थे, उनकी परमात्मभक्ति की, परमात्मपूजन की रीति गृहस्थों से भिन्न थी। परन्तु उन्होंने इस स्तवना में गृहस्थ भक्तजनों को परमात्मपूजन की पद्धत्ति बतायी है।

प्रातःकाल में निद्रा-त्याग कर, जमीन पर बैठकर स्वस्थ तन-मन से, सुविधिनाथ भगवंत का स्मरण करें, भाव से उनके चरणों में नमन करें और परमात्मपूजन की शुभ क्रिया करने को तत्पर बनें।

अति घणो उलट अंग धरीने प्रह उठी पूजीजे रे...

अति महत्व की बात कह दी है कवि ने। परमात्मपूजन के लिए मंदिर जाना है, परन्तु शुष्क हृदय से, मूढ़ मन से नहीं जाना है। बहुत ही हर्ष हृदय में उभरना चाहिए... हृदय हर्ष से रोमांचित हो... शरीर में स्फूर्ति हो... और मंदिर की ओर आगे बढ़ो।

द्रव्य-भाव शुचिभाव धरीने हरखे देहरे जईये रे...

द्रव्य भी शुचि=पवित्र चाहिए और मन भी शुचि=पवित्र चाहिए। दोनों पवित्र होने चाहिए। तीन भुवन के नाथ के चरणों में जाना है... शरीर स्वच्छ होना चाहिए, वस्त्र भी शुद्ध और स्वच्छ होने चाहिए। पूजन की सामग्री [सामान] भी शुद्ध और स्वच्छ होनी चाहिए। कुछ भी गंदा, अशुद्ध और घटिया किस्म का नहीं होना चाहिए। जहाँ प्रीति होती है, भक्ति होती है, वहाँ शुद्धि का, स्वच्छता का और श्रेष्ठता का खयाल आ ही जाता है। खयाल करना नहीं पड़ता है।

पवित्रता चाहिए और प्रसन्नता चाहिए मंदिर में जाने के लिए। गुजरात में मंदिर को 'देहरुं' 'देरासर' कहते हैं।

मंदिर के द्वार पर पहुँचते ही-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दह तिग, पण अधिगम साचवतां, एकमना धुरि थइये रे...

दह = दश, तिग = त्रिक, पण = पाँच। पहले इन शब्दों का अर्थ जान लें। दश त्रिक और पाँच अधिगम को समझाता हूँ।

पाँच अधिगम : पाँच नियमों का पालन करने का होता है, मंदिर में जाने के लिए। पहला नियम : पूजन के सामान के अलावा कोई भी सजीव फल वगैरह मंदिर में नहीं ले जाना चाहिए। दूसरा नियम : अचित्त [जीवत्वरहित] वस्तु [पूजन के लिए] ले जानी चाहिए। तीसरा नियम : मन को परमात्मा में एकाग्र करना चाहिए। चौथा नियम : कोई भी शस्त्र साथ में नहीं रखना चाहिए। [अथवा उत्तरासंग का उपयोग] पाँचवा नियम : मंदिर में प्रवेश करते ही मस्तक पर अंजलि करनी चाहिए।

दश त्रिक : दश क्रियायें ऐसी हैं, जो तीन-तीन बार करने की होती हैं। यहाँ पर मात्र उन क्रियाओं के नाम ही बताता हूँ। इन क्रियाओं को विस्तार से समझने के लिए 'चैत्यवंदन भाष्य' का अध्ययन करना होगा।

१. निसीही, २. प्रदक्षिणा, ३. प्रणाम, ४. पूजा, ५. अवस्थाचिंतन, ६. प्रमार्जन, ७. दिशात्याग, ८. मुद्रा, ९. आलंबन, १०. प्रणिधान.

चेतन, परमात्मपूजन विधिपूर्वक करना है, तो इन बातों का पालन करना ही होगा। और, दूसरी बात है मन को एकाग्र करने की। दुनिया के सभी विचारों को बाहर छोड़कर, एक मात्र परमात्मा के ही विचारों में मन लीन होना चाहिए। 'निसीही' बोलने का यही तो तात्पर्य है। मंदिर में संसार की क्रियायें नहीं करने की हैं, संसार की बातें नहीं करने की हैं और संसार के विचार भी नहीं करने के हैं।

ललाट पर जिनाज्ञा के स्वीकार-रूप तिलक कर, दुपट्टे के अंचल से मुँह [और नासिका] बाँधकर, हाथ में पूजन-सामान का थाल लेकर परमात्मा के गर्भगृह में प्रवेश करना चाहिए और परमात्मा की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए।

अंगपूजा और अग्रपूजा पहले बताते हैं-

कुसुम, अक्षत, वरवास, सुगंधि, धूप दीप मन साखी रे
अंगपूजा पण भेद सुणी इम, गुरुमुख आगमभाखी रे...

अंगपूजा के पाँच प्रकार [पण भेद] गुरुजनों ने बताये हैं कि जो आगमग्रन्थों में कहे गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१. पुष्पपूजा, २. अक्षतपूजा, ३. वास-पूजा, ४. धूप पूजा और ५. दीपक पूजा। पाँच प्रकार की यह अंगपूजा है।

वर्तमान समय में इस प्रकार अंगपूजा नहीं होती है। अभी तो तीन प्रकार की अंगपूजा और पाँच प्रकार की अग्रपूजा ही होती है :

१. जलपूजा, २. केसरमिश्रित चंदनपूजा और ३. पुष्पपूजा। यह है, अंगपूजा कि जो जिनप्रतिमा के अंगों पर की जाती है।

१. धूपपूजा, २. दीपकपूजा, ३. अक्षतपूजा, ४. नैवेद्यपूजा और ५. फलपूजा-यह है, अग्रपूजा, यानी परमात्मा के आगे [अग्र] की जाती है।

श्री आनन्दघनजी ने अग्रपूजा में १. जलकलश, २. नैवेद्य और ३. फल-ये तीन प्रकार बताये हैं। और इस प्रकार अष्टप्रकारी पूजा का निर्देश किया है।

अंग-अग्रपूजा मली अडविध भावे भविक शुभगति वरी रे...

अडविध यानी आठ प्रकार की पूजा जो भविक जीव भावपूर्वक करता है, वह शुभ गति प्राप्त करता है। अर्थात् देवगति प्राप्त करता है।

जैसे अष्टप्रकारी पूजा बतायी है, वैसे १७ प्रकार की, २१ प्रकार की एवं १०८ प्रकार की पूजायें भी होती हैं। ये सारी पूजायें द्रव्यपूजायें हैं, यानी उत्तम द्रव्यों से परमात्मा का पूजन किया जाता है। भावपूजा में किसी द्रव्य की आवश्यकता नहीं रहती है। भावपूजा भी अनेक प्रकार की बतायी गयी है, धर्मशास्त्रों में।

भावपूजा बहुविध निरधारी दोहग-दुर्गति छेदे रे...

दोहग का अर्थ है दुर्भाग्य। भावपूजा करनेवाली जीवात्मा का दुर्भाग्य मिट जाता है, दुर्गति मिट जाती है। भावपूजा के निश्चित सूत्र हैं, उन सूत्रों के माध्यम से परमात्मा की पूजा की जाती है। मधुर स्वर से अर्थगंभीर स्तवना-गान करना चाहिए। गीत-नृत्य भी भावपूजा के ही प्रकार हैं।

द्रव्यपूजा और भावपूजा का फल बताते हुए कहते हैं-

एहनुं फल दोय भेद सुणीजे अनंतर ने परंपर रे...

फल दो प्रकार का प्राप्त होता है। एक प्रकार है, अनन्तर फल का, दूसरा प्रकार है, परंपर फल का। अनन्तर फल यानी इसी जीवन में जो प्राप्त हो, परंपर फल यानी आनेवाले भविष्य में जो प्राप्त हो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रत्यक्ष फल बताया-

आणापालन चित्तप्रसन्नी...

१. जिनाज्ञा का पालन होता है, २. चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है। प्रतिदिन परमात्म-पूजन करने की पूर्ण ज्ञानी पुरुषों की आज्ञा है। प्राचीन धर्मग्रन्थों से इस आज्ञा का ज्ञान होता है। परमात्म-पूजन से अशान्त मन शान्ति पाता है। उद्विग्न चित्त हर्षान्वित होता है।

परोक्ष फल यानी परंपर फल बताते हैं-

मुगति, सुगति, सुरमंदिर रे...

१. मुक्ति = मोक्ष मिलता है, अथवा २. श्रेष्ठ मनुष्य जन्म [सुगति] मिलता है, अथवा ३. देवगति प्राप्त होती है।

१. अंगपूजा, २. अग्रपूजा और ३. भावपूजा बताकर अब चौथा प्रकार बताते हैं, 'प्रतिपत्ति पूजा' का।

तुरियभेद पडिवत्ति-पूजा उपशम खीण सयोगी रे...

यह प्रतिपत्ति पूजा करनेवाली होती हैं, उत्तम आत्मायें। गुणस्थानक की दृष्टि से ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानक पर रही हुई आत्मायें यह प्रतिपत्तिपूजा करती हैं। कुछ न करने रूप यह पूजा है! ग्यारहवें गुणस्थानक की अवस्था में आत्मा का मोह उपशान्त होता है, बारहवें गुणस्थानक की अवस्था में मोह नष्ट हो जाता है और तेरहवें गुणस्थानक पर आत्मा सर्वज्ञ-वीतराग बन जाती है। तेरहवें गुणस्थानक को 'सयोगी' गुणस्थानक कहा गया है।

यह पूजा अभेदभाव की पूजा है। आत्मा और परमात्मा का भेद वहाँ नहीं रहता है। 'आत्मा ही परमात्मा' होता है, इस पूजा में। इस पूजा से आत्मा का मोह उपशान्त होता है, नष्ट होता है और वीतरागता की अनुभूति होती है।

ये चार प्रकार की पूजायें 'श्री उत्तराध्ययन सूत्र' में बतायी गई हैं-ऐसा कहकर वे 'आगमप्रमाण' प्रस्तुत करते हैं। परमात्मा की द्रव्य-भाव पूजा का विधान 'श्री भगवतीसूत्र' में भी प्राप्त होता है।

परमात्मपूजन का यह शुभ कार्य भौतिक-आध्यात्मिक सभी सुखों का विशेष कारण है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इम पूजा बहु भेद सुणीने सुखदायक शुभ करणी रे
भविक जीव करशे ते लेशे आनन्दघनपद धरणी रे...

स्तवनकार ने पूजा के अनेक भेद बताये और उसका फल भी बताया। परमात्मा की पूजा शुभ क्रिया है। शुभ क्रिया से पुण्यकर्म का ही बंध होता है। पापकर्मों का नाश होता है।

'द्रव्यपूजा करने में हिंसा का दोष लगता है'- ऐसा मान कर जो गृहस्थ द्रव्यपूजा और भावपूजा से वंचित रहते हैं, वे गृहस्थ अपूर्व पुण्यकर्म के लाभ से वंचित रहते हैं। परमात्मप्रीति... परमात्मभक्ति जैसी पवित्र क्रिया उनके जीवन में नहीं होने से, चित्तप्रसन्नता प्राप्त करने का श्रेष्ठ उपाय वे नहीं कर पाते।

परमात्मा के चारों निक्षेप पूजनीय हैं। नाम, स्थापना [मूर्ति], द्रव्य और भाव, ये चार निक्षेप हैं। परमात्मप्रेमी मनुष्य परमात्मा के सभी स्वरूपों से प्रेम करेगा। परमात्मा संबंधी हर वस्तु से प्रेम करेगा।

ऐसा परमात्मप्रेमी मनुष्य, एक दिन अवश्य आनन्दघनों की पृथ्वी पर पहुँच जायेगा! आनंदघनों की पृथ्वी है, सिद्धशिला। जहाँ सभी सिद्ध भगवंत आनंद के घन होते हैं। परमानन्दी होते हैं।

चेतन, योगीश्वर श्री आनन्दघनजी ने परमात्मा की पूजा का कितना स्पष्ट प्रतिपादन किया है! फिर भी कुछ कदाग्रही लोग परमात्मा के मंदिर से दूर भागते रहते हैं! रागी-द्वेषी देवों के मंदिर में जाते हैं... पीर-फकीरों की मजारों पर जाते हैं...वीतराग तीर्थंकर के मंदिरों में नहीं जाते!

जब ऐसे लोगों के हृदय में भी परमात्म-प्रेम की शहनाई बजने लगेगी...वे गलत परंपराओं को तोड़कर परमात्मा का दर्शन-पूजन करने जिनमंदिरों में दौड़ते हुए आयेंगे।

तू प्रतिदिन परमात्मा की पूजा करता ही है, अब उस शुभ क्रिया में विशेष रूप से मन को जोड़ना और प्रतिक्षण प्रसन्नता की अनुभूति करता रहे-यही मंगलकामना।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री शीतलनाथ भगवंत

स्तुति

सत्त्वानां - परमानन्द - कन्दोद्‌भेद - नवाम्बुदः।
स्याद्वादामृत - निःस्यन्दी, शीतलः पातु वो जिनः ।।

प्रार्थना

शीतलनाथ शशि से शीतल, कृपा किरन जब बरसाये
भवि जीवों के हृदय-गगन में, खुशियों के बादल छायें.
विपदा मिट जाती तन मन की, दशम प्रभु के दर्शन से
पूरी होती मनोकामना, तीर्थंकर के स्पर्शन से ।।

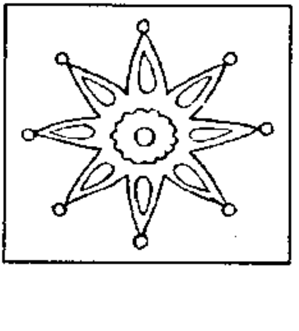

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री शीतलनाथ भगवन्त

१	माता का नाम	नंदा रानी
२	पिता का नाम	दृढ़रथ राजा
३	च्यवन कल्याणक	वैशाख कृष्णा ६ / भद्दिलपुर
४	जन्म कल्याणक	माघ कृष्णा १२ / भद्दिलपुर
५	दीक्षा कल्याणक	माघ कृष्णा १२ / भद्दिलपुर
६	केवलज्ञान कल्याणक	पौष कृष्णा १४ / भद्दिलपुर
७	निर्वाण कल्याणक	वैशाख कृष्णा २ / सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या ८१ प्रमुख नंद
९	साधु	संख्या १ लाख
१०	साध्वी	संख्या १ लाख ६ प्रमुख सुयशा
११	श्रावक	संख्या २ लाख ८९ हजार
१२	श्राविका	संख्या ४ लाख ५८ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	प्रियंगु
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	ब्रह्मा
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	अशोका
१६	आयुष्य	१ लाख पूर्व
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	श्रीवत्स
१८	च्यवन किस देवलोक से?	प्राणत [१० वाँ]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	पद्म के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	३ महीना
२२	गृहस्थ अवस्था	एक लाख पूर्व में पौन पाद कम
२३	शरीर-वर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	शुक्लप्रभा
२५	नाम-अर्थ	माता के कर-स्पर्श से पिता का दाह-ज्वर शांत हो गया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

❍ परमात्मा में परस्पर विरोधी ऐसे तीन गुण बताये हैं : १. करूणा, २. तीक्ष्णता और ३. उदासीनता।

❍ परमात्मा में परदुःखच्छेदन की इच्छारुप करुणा नहीं है, परन्तु अभयदानस्वरूप करुणा होती है।

❍ कर्तृत्व का अभिमान वीतराग में नहीं होता है, वे ज्ञाता-द्रष्टा होते हैं, यही उनकी उदासीनता होती है। संसारी जीवों की उदासीनता निराशारूप होती है, ग्लानिरूप होती है, उपेक्षारूप होती है।

❍ हमें सभी बातों में सापेक्ष दृष्टि से दर्शन-चिन्तन करना है। सापेक्ष दृष्टि से दर्शन-चिन्तन होगा तो राग-द्वेष की तीव्रता दूर होगी।

पत्र : ११ श्री शीतलनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला।

पारिभाषिक शब्दों में उलझना मत। धीरे-धीरे पारिभाषिक शब्दों से तू परिचित हो जायेगा। 'श्री आनन्दघन-चौबीसी' के माध्यम से तुझे जिनागमों के पारिभाषिक शब्दों का अध्ययन प्राप्त होगा।

श्री सुविधिनाथ की स्तवना में परमात्म-पूजा के विषय में अच्छा मार्गदर्शन मिला। प्रतिपत्ति-पूजा की श्रेष्ठता बताई गई। 'प्रतिपत्ति पूजा' की परिभाषा इस प्रकार की गई है - 'अविकलाप्तोपदेशपालना' आप्त पुरुषों के उपदेश का यथार्थ पालन, प्रतिपत्ति पूजा है।

परमात्मा का स्मरण, दर्शन, पूजन, स्तवन...करने से परमात्मा से आन्तरप्रीति दृढ़ हो जाती है। परमात्मप्रेमी मन, परमात्मा के विशिष्ट गुणों का दर्शन करने लगता है। श्री शीतलनाथ भगवंत की स्तवना में योगीश्वर आनन्दघनजी, स्याद्वाद के माध्यम से परमात्मा के विशिष्ट गुणों का दर्शन करते-करवाते हैं। अर्थ की चमत्कृति से यह स्तवना सुरुचिपूर्ण बनी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शीतल जिनपति ललित-त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे,
करूणा- कोमलता तीक्षणता, उदासीनता सोहे रे... शीतल.
सर्वजंतु - हितकरणी करुणा, कर्मविदारण तीक्षण रे,
हानादानरहित - परिणामी, उदासीनता वीक्षण रे... शीतल.
परदुःखछेदन इच्छा करूणा, तीक्षण परदुःख रीझे रे,
उदासीनता उभयविलक्षण, एक ठामे केम सीझे रे? शीतल.
अभयदान ते मलक्षय, करुणा, तीक्षणता गुण भावे रे,
प्रेरक विण कृति उदासीनता, इम विरोध मति नावे रे...शीतल.
शक्ति, व्यक्ति, त्रिभुवनप्रभुता, निर्ग्रन्थता संयोगे रे,
योगी-भोगी, वक्ता-मौनी, अनुपयोगी उपयोगे रे... शीतल.
इत्यादिक बहु भंग त्रिभंगी, चमत्कार चित्त देती रे,
अचरिजकारी चित्र-विचित्रा, आनन्दघन-पद लेती रे... शीतल.

'हे शीतल जिनपति! आप में रही हुई गुणों की सुंदर 'त्रिभंगी', द्विभंगी...वगैरह अनेक प्रकार की भंगियाँ [प्रकार] मेरे मन को मोह लेती हैं।'

भंग का अर्थ होता है, प्रकार। 'त्रिभंगी' यानी तीन गुणों का समूह, द्विभंगी यानी दो प्रकार के गुणों का समूह। परस्पर विरोधी गुणों का समूह परमात्मा में रहा हुआ है! हालाँकि वह विरोध प्रत्यक्ष में दिखता है, परन्तु स्याद्वाददृष्टि में वह विरोध नहीं रहता है।

परस्पर विरोधी ऐसे तीन गुण बताये हैं, उसी को 'त्रिभंगी' कहा है।

१. करुणा [कोमलता] २. तीक्ष्णता और ३. उदासीनता।

दूसरी गाथा में एक-एक गुण की व्याख्या की है :

सर्वजन्तु हितकरणी करुणा...

करुणा की कितनी व्यापक व्याख्या दी है! और ऐसी करुणा परमात्मा में अंतर्निहित है, यह बात महत्त्वपूर्ण कही है। परमात्मा सभी जीवों का हित करनेवाले हैं- यह बात इस विधान से स्पष्ट होती है।

कर्मविदारण तीक्षण रे...

परमात्मा में कर्मों का नाश करने रूप तीक्ष्णता भी है! किसी भी वस्तु का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाश करने के लिए तीक्ष्णता चाहिए। कर्मों का नाश करने के लिए तीक्ष्णता चाहिए, वह भी परमात्मा में है!

करुणा और तीक्ष्णता-परस्पर विरोधी गुण हैं।

हानादानरहितपरिणामी उदासीनता वीक्षण रे...

'हानादान' यानी त्याग-स्वीकार। उदासीनता में त्याग-स्वीकार की कोई इच्छा नहीं होती है। किसी भी प्रकार की इच्छा के बिना वीक्षण करना...यानी देखना, वह उदासीनता है। परमात्मा में ऐसी उदासीन दृष्टि होती है, मध्यस्थ दृष्टि होती है।

एक ही आत्मा में परस्पर विरोधी गुण कैसे रह सकते हैं, यह कैसे संभव है? विरोध को तीसरी गाथा में व्यक्त करते हैं :

परदुःख-छेदन इच्छा करुणा, तीक्षण परदुःख रीझे रे...

परदुःखों का नाश करने की इच्छा 'करुणा' कहलाती है और परदुःख देखकर खुश होना-तीक्ष्णता है! दोनों गुण परस्पर विरोधी हैं।

उदासीनता उभय-विलक्षण!

करुणा और तीक्ष्णता-दोनों से विलक्षण है, उदासीनता! तो फिर एक ही व्यक्ति में ये तीनों गुण कैसे रह सकते हैं? परमात्मा में यह त्रिभंगी कैसे संभव है?

आनन्दघनजी ने स्वयं यह प्रश्न उठाया है। चूँकि समाधान करना है, स्याद्वाद दृष्टि से! जब तक प्रश्न पैदा न हो, तब तक समाधान कैसे हो सकता है? इसलिए प्रश्न को अच्छी तरह समझना।

त्रिभंगी तो वही है - करुणा, तीक्ष्णता और उदासीनता की। परन्तु अर्थघटन दूसरा करते हैं। परमात्मा में परदुःखच्छेदन की इच्छारूप करुणा नहीं है, परन्तु अभयदानस्वरूप करुणा होती है! आत्मा के साथ अनादिकाल से जो कर्ममल का संयोग है, वह कर्ममल नष्ट होने पर विशुद्ध आत्मा में एक विशिष्ट गुण का आविर्भाव होता है- जीवों को संसार-भय से बचाने की अभयदान की वृत्ति। परमात्मा को 'अभयदयाणं' कहा गया है।

परमात्मा की करुणा अभयदान-स्वरूप होती है।

'अभयदान ते मलक्षय करुणा...'

जब करुणा की परिभाषा ही बदल गई...तब तीक्ष्णता, ऐसी करुणा के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साथ बिना विरोध रह सकती है। अनादिकालीन मलक्षय करने के लिए जैसा आत्मभाव चाहिए, वैसे आत्मभाव को ही तीक्ष्णता कहनी चाहिए। तीक्ष्णता का अर्थ उग्रता या तीव्रता नहीं करने का है। करुणा की पृष्ठभूमिका में तीक्ष्णता रह सकती है।

प्रेरक विण कृति उदासीनता, इम विरोध-मति नावे रे...

कर्मक्षय सहजभाव से होता है और अभयदान का गुण भी सहजता से प्रगट होता है...किसी प्रेरक की वहाँ प्रेरणा अपेक्षित नहीं होती है...कोई विशेष प्रयत्न नहीं होता है...यही आत्मा की उदासीनता है। कर्तृत्व का अंश मात्र भी अभिमान नहीं रहता है।

ऐसी उदासीनता, करुणा और तीक्ष्णता के साथ परमात्मा में रह सकती है, कोई विरोध पैदा नहीं हो सकता है।

त्रिभंगी का अर्थघटन, जो सही रूप में होना चाहिए वह कर दिया! यही सापेक्ष दृष्टि है, स्याद्वाद दृष्टि है। परमात्मा की अपेक्षा से करुणा अभयदान-स्वरूप है, जीवात्माओं की अपेक्षा से करुणा परदुःखच्छेदन की इच्छारूप है! परमात्मा में इच्छा नहीं होती है। वीतराग इच्छारहित होते हैं। इच्छा रागी-द्वेषी जीवों में होती है। वैसे कर्तृत्व का अभिमान वीतराग में नहीं होता है, वीतराग सभी प्रकार के अभिमानों से मुक्त होते हैं...ज्ञाता-द्रष्टा होते हैं - यही उनकी उदासीनता होती है। संसारी जीवों की उदासीनता निराशा - रूप होती है, ग्लानिरूप होती है। उपेक्षा-रूप होती है।

स्याद्वाद दृष्टि, अपेक्षा से शब्दों का अर्थ करना सिखाती है। पदार्थदर्शन अपेक्षा से किया जाना चाहिए।

अपेक्षाओं के माध्यम से एक वस्तु अनन्त धर्मात्मक देखी जा सकती है।

अब, परमात्मा में द्विभंगी बताते हैं, यानी परस्पर-विरोधी दिखने वाला व्यक्तित्व बताकर, उसका सामंजस्य स्थापित करते हैं-

- परमात्मा शक्ति-रूप हैं और व्यक्तिरूप भी हैं,
- परमात्मा त्रिभुवनपति हैं और निर्ग्रन्थ भी हैं,
- परमात्मा भोगी हैं और योगी भी हैं,
- परमात्मा वक्ता हैं और मौनी भी हैं,
- परमात्मा उपयोगवाले हैं और उपयोगरहित भी हैं!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परमात्मा का यह स्वरूपदर्शन अनेकान्त दृष्टि से कराया गया है- स्याद्वाददृष्टि से कराया गया है। एकान्त मान्यता इस प्रकार परमात्मा का स्वरूप-दर्शन नहीं करा सकती। एकान्त मान्यता तो कहती है- परमात्मा शक्तिरूप ही हैं! परमात्मा व्यक्तिरुप ही हैं, परमात्मा योगी ही हैं, मौनी ही हैं...! हर बात 'ही' से करती है, एकान्त मान्यता।

१. शक्तिरूप में सभी शुद्ध आत्मायें एक ही हैं। ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुण आत्मा की शक्ति है। परन्तु व्यक्तिरूप में प्रत्येक आत्मा अलग-अलग है। शक्तिरूप में अनन्त गुण होते हैं, परन्तु व्यक्तिरूप में गिनती हो सके उतने गुण ही होते हैं। इस प्रकार परमात्मा शक्तिरूप हैं और व्यक्तिरूप भी हैं।

२. त्रिभुवनपति का अर्थ है, त्रिभुवनपूज्य। परमात्मा त्रिभुवनपति होते हैं, फिर भी उनकी आत्मा में राग या द्वेष की कोई ग्रन्थि नहीं होती है। निर्ग्रन्थ आत्मा में त्रिभुवनपतित्व नहीं रह सकता है! फिर भी वे त्रिभुवनपूज्यता की दृष्टि से त्रिभुवनपति हैं! त्रिभुवनपति में निर्ग्रन्थता कैसे हो सकती है! फिर भी वे निर्ग्रन्थ हैं... चूँकि वे राग-द्वेषरहित होते हैं।

३. परमात्मा स्वगुणों की अपेक्षा से भोक्ता [भोगी] हैं और परद्रव्य के गुणों की अपेक्षा से योगी हैं। अथवा, तीर्थंकर तत्त्व की ऋद्धि को भोगते हैं, इस अपेक्षा से भोगी हैं, और आत्मभावों की संपूर्ण स्थिरता की अपेक्षा से योगी भी हैं!

४. परमात्मा समवसरण में बिराजकर, जो अभिलाप्य भाव हैं, उन भावों का कथन करते हैं, इस अपेक्षा से भगवान् वक्ता हैं और जो अनन्त अनभिलाप्य भाव हैं, उन भावों का कथन नहीं करते हैं, इस अपेक्षा से वे मौनी हैं। [चराचर विश्व में जो भी बातें हैं, वे दो प्रकार की हैं : अभिलाप्य यानी कथन हो सके वैसी, और अनभिलाप्य यानी कथन नहीं हो सके वैसी। अनभिलाप्य भावों का कथन सर्वज्ञ भी नहीं कर सकते हैं।]

५. सिद्ध अवस्था में परमात्मा के दो 'उपयोग' होते हैं : एक ज्ञानोपयोग और दूसरा दर्शनोपयोग। एक समय में एक ही उपयोग होता है। इस अपेक्षा से परमात्मा उपयोगवाले हैं और जब ज्ञानोपयोग होता है तब दर्शनोपयोग नहीं होता है, इस अपेक्षा से वे अनुपयोगी होते हैं।

अपेक्षाओं के माध्यम से, एक व्यक्ति में परस्पर विरुद्ध धर्म भी रह सकते हैं। परमात्मा में इस प्रकार गुणदर्शन करवाकर श्री आनन्दघनजी चमत्कृति का आनन्द पाते हैं!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इत्यादिक बहु भंग त्रिभंगा, चमत्कार चित्त देती रे...

अपेक्षावाद से यदि हम विश्व के पदार्थों को, गुणों को, बातों को देखना सीखें तो आश्चर्य से हम चकित हो जायेंगे। अपार चित्र-विचित्रतायें देखने को मिलेंगी। और यह सापेक्ष-दृष्टि ही आनन्दघन-स्वरुप मोक्षदशा प्रदान करती है।

योगीश्वरजी ने तो मात्र परमात्मा में सापेक्ष दृष्टि से गुणों का दर्शन करवाकर चमत्कृति का आनन्द दिया है, परन्तु हमें तो सभी बातों में सापेक्ष दृष्टि से देखना है, सापेक्ष दृष्टि से चिन्तन करना है। यदि सापेक्ष दृष्टि से दर्शन-चिन्तन होगा तो राग-द्वेष की तीव्रता दूर होगी। समताभाव पुष्ट होगा।

चेतन, सापेक्ष दृष्टि से दर्शन-चिन्तन करने का अभ्यास करना होगा। करते रहना अभ्यास...और राग-द्वेष को मंद करते रहना...

यही मंगल कामना।

- प्रियदर्शन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री श्रेयांसनाथ भगवंत

स्तुति

भव - रोगाऽऽर्त्त - जन्तूनामगदङ्कार - दर्शनः।
निःश्रेयस - श्री रमणः, श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तुवः ।।

प्रार्थना

श्री श्रेयांसजिनेश्वर भगवन्, इस सृष्टि का श्रेय करे
विष्णुनंदन के नयनों में, करुणा का सागर उभरे।
सिंहपुरी के राजा ओ गुणनिधि! हम पर महर करो
दर्शन के प्यासे कब से खड़े हम, जरा इधर भी नजर करो ।।

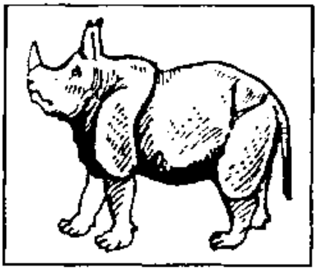

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री श्रेयांसनाथ भगवन्त

१	**माता का नाम**	*विष्णु रानी*
२	**पिता का नाम**	*विष्णु राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*ज्येष्ठ कृष्णा ६/सिंहपुरी*
४	**जन्म कल्याणक**	*फाल्गुन कृष्णा १२/सिंहपुरी*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*फाल्गुन कृष्णा १३/सिंहपुरी*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*माघ कृष्णा ३/सिंहपुरी*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*श्रावण कृष्णा ३/सम्मेतशिखर*
८	**गणधर**	*संख्या ७६ प्रमुख कच्छप*
९	**साधु**	*संख्या ८४ हजार प्रमुख कच्छप*
१०	**साध्वी**	*संख्या १ लाख ३ हजार प्रमुख धारणी*
११	**श्रावक**	*संख्या २ लाख ७९ हजार*
१२	**श्राविका**	*संख्या ४ लाख ४८ हजार*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*तिंदूक*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*यक्षराज*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*मानवी*
१६	**आयुष्य**	*८४ लाख वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न]**	*गेंडा*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*अच्युत [बारहवाँ]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*नलिनी गुल्म के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*३*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*२ महीना*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*६३ लाख वर्ष*
२३	**शरीरवर्ण (आभा)**	*सुवर्ण*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*विमलप्रभा*
२५	**नाम-अर्थ**	*माँ ने अपने आपको श्रेय करनेवाली देवशय्या में सोये हुए देखा।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **जो निष्कामी होते हैं वे ही आत्मरामी होते हैं। निष्कामी और आत्मलक्षी आत्मायें ही 'निज-स्वरूप' पाने का पुरुषार्थ कर सकती हैं।**
- **आत्मगुणों के आविर्भाव के लक्ष्य से जो उचित धर्मक्रिया हो, वह भावअध्यात्म है। वैसे, धर्मक्रिया सापेक्ष आत्मलक्ष्य बना रहे, वह भी भावअध्यात्म है। न लक्ष्य की उपेक्षा, न क्रिया की उपेक्षा।**
- **कहे जाने वाले सभी अध्यात्म के शास्त्रों में अध्यात्म होता ही है-ऐसा मानना नहीं। किस ग्रन्थ में से कौन-सी बात ग्रहण करनी चाहिए और कौन-सी बात छोड़ देनी चाहिए-यह तुम्हारी बुद्धि पर निर्भर रहेगा।**
- **अध्यात्म का मार्ग ही पूर्णता पाने का सही मार्ग है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १२ श्री श्रेयांसनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। स्वाध्याय में रसवृत्ति प्रबल बनती जा रही है, जानकर आनन्द, आनन्द!

श्री श्रेयांसनाथ भगवंत की स्तवना में आनन्दघनजी भक्तिभाव में झुम रहे हैं। चूँकि उनका हृदय परमात्मप्रेम से भरपूर था! उनके हृदयसिंहासन पर परमात्मा ही बिराजित थे। उनके होठों पर परमात्मा की ही स्तवना होती थी।

जिस व्यक्ति को आत्मा का ज्ञान होता है... उसको परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होगा ही! चूँकि परमात्मस्वरूप जो है, वह उसका खुद का ही स्वरूप है। परमात्मा से प्रेम करना यानी अपनी आत्मा से...विशुद्ध आत्मा से ही प्रेम करना है।

आत्मा, अध्यात्म के मार्ग पर चलती हुई...पूर्ण अध्यात्म को प्राप्त कर, परमात्मदशा को प्राप्त करती है, इसलिए आनन्दघनजी ने 'अध्यात्म' के विषय में गहरा चिन्तन किया और श्रेयांसनाथ की स्तवना के माध्यम से प्रस्तुत किया।

पहले पढ़िये स्तवना को-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री श्रेयांसजिन! अन्तरजामी! आतमरामी नामी रे,
अध्यातममत पूरण पामी, सहज मुगति-गति गामी रे...१
सयल संसारी इन्द्रियरामी, मुनिगण आतमरामी रे,
मुख्यपणे जे आतमरामी, ते केवल निःकामी रे...२
निज स्वरुप जे किरिया साधे, ते अध्यातम लहिये रे,
जे किरिया करी चउ गति साधे, ते न अध्यातम कहिए रे...३
नाम अध्यातम, ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छंडो रे,
भाव अध्यातम निज गुण साधे, तेहसुं रढ मंडो रे...४
शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे,
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हान-ग्रहण मति धरजो रे...५
अध्यातम जे वस्तु विचारी, बीजा जाण लबासी रे,
वस्तु गते जे वस्तु प्रकाशे, आनन्दघन मत वासी रे...६

'हे श्रेयांसनाथ भगवंत! आप सकल जीवसृष्टि के अन्तर्यामी हैं। आप से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है, हमारा आन्तर-बाह्य। आप आत्मभाव में ही लीन होते हैं और आपका नाम विश्व में सर्वविदित है। हे नाथ, आपने पूर्णरूप से अध्यात्म ज्ञान को पाया और इसी वजह से आपने सहजता से मुक्ति पायी है। आपको कोई विशेष पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा है, मुक्ति पाने के लिए।'

परमात्मा १. अन्तर्यामी हैं, २. आत्मलीन हैं, ३. प्रसिद्ध हैं, ४. पूर्ण अध्यात्मी हैं और ५. सहजता से मुक्ति पाये हुए हैं। परमात्मा की इस प्रकार स्तवना कर, कौन परमात्मा के मार्ग पर चल सकता है और कौन नहीं चल सकता है, यह बात बताते हैं-

'सयल संसारी इन्द्रियरामी'

जो जीव संसारी होते हैं, यानी कषायपरवश और इन्द्रियपरवश होते हैं...वे 'आत्मा' को समझ ही नहीं पाते हैं। 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा विचार भी नहीं आता है उनको। पाँच इन्द्रियों के वैषयिक सुखों में ही उनकी रमणता होती रहती है। इन्द्रिय-रामी मनुष्य के लिए अध्यात्म का मार्ग होता ही नहीं है। वैषयिक सुखों में लीन मनुष्य आत्मभाव में लीन नहीं हो सकता हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुनिगण आतमरामी रे...

जो मुनि होते हैं, मौनी होते हैं, वे आतमरामी हो सकते हैं। पौद्‌गलिक भावों के प्रति जिन्होंने मौन धारण किया होता है, यानी पौद्‌गलिक पदार्थों में से जिनकी सुख-दुःख की कल्पना मिट गई होती है, ऐसे मुनिराज ही आत्मभाव में लीन हो सकते हैं।

'मुझे आत्मरमणता रहती है...मुझे आत्मज्ञान हो गया है...' ऐसा बोलनेवाले, दूसरों को कहनेवाले इन्द्रियपरवश एवं कषायपरवश आत्मज्ञानियों की संख्या बढ़ती हुई दिखती है। ऐसे लोगों का छेद उड़ाते हुए श्री आनन्दघनजी कहते हैं -

मुख्यपणे जे आतमरामी ते केवल निष्कामी रे...

जो आतमरामी होते हैं, वे निष्काम योगी होते हैं! जिन्होंने कामनाओं के वस्त्र उतार दिये होते हैं। कोई भी पौद्‌गलिक सुख की इच्छा उनके मन में नहीं होती है। ऐसा भी कह सकते हैं कि जो निष्कामी होते हैं, वे ही आतमरामी होते हैं। ऐसी निष्कामी और आत्मलक्षी आत्मायें ही 'निज स्वरुप' पाने का पुरुषार्थ कर सकती हैं और सफलता भी प्राप्त कर सकती हैं। इसी को 'अध्यात्म' कहा गया है।

निज-स्वरूप जे किरिया साधे ते अध्यातम लहिये रे...

जो द्रव्यक्रिया और भावक्रिया, आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति करवाये, वह ही अध्यात्म है। शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का लक्ष्य होना चाहिए। अध्यात्म की परिभाषा भी यही है-

'आत्मानमधिकृत्य या शुद्धा क्रिया प्रवर्तते, तदध्यात्मम्'

ध्येय होना चाहिए आत्मविशुद्धि का और क्रिया होनी चाहिए उस ध्येय को सिद्ध करनेवाली। पौद्‌गलिक भावों की ओर अनासक्त बने हुए मुनिजन ऐसी क्रियायें करते रहते हैं और आत्मविशुद्धि के पथ पर चलते रहते हैं। वे प्रसन्नचित्त होते हैं। वे धीर और गंभीर होते हैं। 'मैं शीघ्र शुद्ध हो जाऊँ...' ऐसी भी अधीरता उनमें नहीं होती है। सहजता से वे गति करते हैं, सहजता से जीते हैं, सहजता से वे विश्व को देखते हैं। सहजता से वे देहमुक्त...भवमुक्त होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जे किरिया करी चउगति साधे ते न अध्यातम कहिए रे...

कुछ धर्मक्रियायें भी ऐसी होती हैं कि जो दिखने में आध्यात्मिक क्रिया लगती हैं...परन्तु वास्तव में वे आध्यात्मिक क्रिया नहीं होती हैं। हालाँकि क्रिया तो वह भी आध्यात्मिक बन सकती है, यदि क्रिया करनेवाला आध्यात्मिक हो तो!

जो मनुष्य बाहर से आध्यात्मिक होने का दिखावा करता है, भीतर में भौतिक सुखों की तृष्णा से भरा हुआ होता है, इन्द्रियों के विषयों की स्पृहा से व्याकुल होता है, ऐसे जीव अध्यात्म की क्रिया, आध्यात्मिक दिखाई देनेवाले अनुष्ठान करने पर भी, भवभ्रमण ही करते रहते हैं। संसार के दुःख पाते हैं।

इस दुनिया में भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग होते हैं। जैसे भौतिकता-प्रिय लोग होते हैं, वैसे अध्यात्म-प्रिय लोग भी होते हैं। अध्यात्म-प्रिय लोग जहाँ अध्यात्म का नाम सुनते हैं...जहाँ अध्यात्म का आश्रम वगैरह देखते हैं...वहाँ चले जाते हैं।

नाम-अध्यातम, ठवण अध्यातम, द्रव्य-अध्यातम छंडो रे...

श्री आनन्दघनजी कहते हैं कि मात्र अध्यात्म का नाम लेने से आत्मगुण की प्राप्ति नहीं होगी। कोई आध्यात्मिक पुरुष की मूर्ति बनाने मात्र से आत्मगुणों का आविर्भाव नहीं होगा। मात्र आत्मा का लक्ष्य रखने से भी आत्मगुणों का प्रगटीकरण नहीं होगा। और, आत्मा का लक्ष्य रखे बिना, मात्र क्रिया करने से भी आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्राप्त नहीं होगा।

- नाम-अध्यातम यानी 'अध्यात्म' ऐसा नाम बार-बार रटना,
- ठवण-अध्यातम यानी किसी आध्यात्मिक व्यक्ति की मूर्ति बनाना,
- द्रव्य-अध्यातम यानी बिना आत्मलक्ष्य रखे मात्र क्रिया करना, बिना क्रिया किये मात्र आत्मलक्ष्य रखना!

श्री आनन्दघनजी, ये तीन अध्यात्म छोड़ने की प्रेरणा देते हैं और भाव-अध्यात्म की आराधना करने को उत्साहित करते हैं।

भाव-अध्यातम निज गुण साधे, तेहसुं रढ़ मंडो रे...

आत्मगुणों के आविर्भाव के लक्ष्य से जो उचित धर्मक्रिया हो, वह भाव-अध्यात्म है। वैसे, धर्मक्रियासापेक्ष आत्मलक्ष्य रहे, वह भी भाव-अध्यात्म है। न लक्ष्य की उपेक्षा, न क्रिया की उपेक्षा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाव-अध्यात्म की प्राप्ति में जहाँ-जहाँ नाम-अध्यात्म, स्थापना-अध्यात्म और द्रव्य-अध्यात्म उपयोगी बनता हो, उसका उपयोग करना चाहिए। साधन के रूप में उपयोग करना चाहिए। भाव-अध्यात्म की प्राप्ति भ्रमणारूप नहीं बन जानी चाहिए। आत्मगुण-क्षमा, नम्रता, सरलता, समता वगैरह प्रगट होते जाते हों, तो समझना कि भाव-अध्यात्म प्राप्त होता जा रहा है।

दुनिया में अध्यात्म के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करनेवाले अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। अध्यात्म की बातें करनेवाले भी अनेक लोग होते हैं। चेतन, तू सुनना वे बातें। तू पढ़ना वे अध्यात्म की किताबें। ध्यान से पढ़ना। ध्यान से सुनना। परन्तु उन बातों में उलझना नहीं। वे बातें सुनकर विकल्पों की जाल में फँसना नहीं। विकल्परहित रहना।

शब्द-अध्यातम अर्थ सुणीने निर्विकल्प आदरजो रे...

शब्द-अध्यात्म का अर्थ है, अध्यात्म के शास्त्र। जो भी अध्यात्म का शास्त्र मिले, उसका अर्थ सुनना। उस शास्त्र के विद्वान् से सुनना। खंडन-मंडन में उलझना नहीं।

शब्द-अध्यातम भजना जाणी, हान-ग्रहण मति धरजो रे...

कहे जाने वाले सभी अध्यात्म के शास्त्रों में अध्यात्म होता ही है, ऐसा मानना नहीं। कुछ शास्त्रों में अध्यात्म होता है, कुछ शास्त्रों में अध्यात्म नहीं होता है। इसको 'भजना' कहते हैं।

चेतन, यह निर्णय तुझे स्वयं तेरी बुद्धि से करना होगा। 'यह शास्त्र अध्यात्म का है या नहीं'- इस बात का निर्णय तुझे करना होगा। किस ग्रन्थ में से कौनसी बात ग्रहण करनी चाहिए और कौनसी बात छोड़ देनी चाहिए- यह भी तेरी बुद्धि पर निर्भर रहेगा।

'हान-ग्रहण' का अर्थ छोड़ना और ग्रहण करना। छोड़ने में और ग्रहण करने में मनुष्य की विवेकबुद्धि निर्णायक बननी चाहिए। शास्त्रज्ञान से परिक्रमित सूक्ष्म (Sharp) बुद्धि होनी चाहिए।

आज विश्व में, पूर्व-पश्चिम के देशों में योग और अध्यात्म के नाम पर हजारों पुस्तकें छपती हैं। एक व्यवस्थित व्यवसाय ही चल रहा है। अध्यात्ममार्ग में व्यवसाय को कोई स्थान नहीं होना चाहिए। इसलिए 'अध्यात्मशास्त्र' की परीक्षा करनी ही चाहिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्यातम जे वस्तु विचारे, बीजा जाण लबासी रे...

आध्यात्मिक कौन हो सकता है-इस प्रश्न का प्रत्युत्तर बहुत संक्षेप में दे दिया है, स्तवनकार ने। जो मनुष्य आत्मविषयक चिंतन करता है, हर वस्तु को उसके मूल स्वरूप में जानने का प्रयत्न करता है, वह सही रूप में आध्यात्मिक होता है।

हर वस्तु के दो रूप होते हैं : द्रव्य और पर्याय। इन्द्रियरामी जीव वस्तु के पर्यायों में उलझते हैं। आतमरामी, वस्तु के द्रव्य को देखने का प्रयत्न करते हैं। वे पर्यायों में मन को उलझने नहीं देते हैं।

जो मनुष्य साधु का वेश धारण करता है, अथवा श्रावक का वेश धारण करता है, परन्तु वस्तु का सही द्रव्यस्वरूप नहीं जानता है, द्रव्यदृष्टि से वस्तु का चिंतन नहीं करता है, वह वास्तव में साधु या श्रावक नहीं है। वह होते हैं मात्र वेशधारी साधु-श्रावक! चूँकि वे इन्द्रियरामी होते हैं।

वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे आनन्दघनमत वासी रे...

आनन्दघन का मत यानी अध्यात्ममार्ग। अध्यात्ममार्ग में रहा हुआ मनुष्य, आध्यात्मिक पुरुष ही पूर्ण अध्यात्म प्राप्त कर, सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है, पूर्णता प्राप्त कर सकता है। सर्वज्ञता और वीतरागता, अध्यात्म की श्रेष्ठ भूमिका होती है। सर्वज्ञ-वीतराग ही सभी पदार्थों को सभी त्रैकालिक पर्यायों से जान सकते हैं। हर आत्मा की स्वाभाविक और वैभाविक अवस्थायें जान सकते हैं।

चेतन, अध्यात्म का मार्ग ही पूर्णता पाने का सही मार्ग है। पूर्ण सुख और पूर्णानन्द प्राप्त करने के लिए, और-और बातें-वाद-विवाद छोड़कर, आत्मगुणों की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित कर, तदनुकूल प्रवृत्ति-निवृत्ति का जीवन बना लेना होगा।

तुझे अध्यात्ममार्ग की प्राप्ति हो-ऐसी मंगल कामना करता हूँ।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री वासुपूज्य स्वामी

स्तुति

विश्वोपकारकीभूत-तीर्थकृत्-कर्म निर्मितिः।
सुरासुर-नरै पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ।।

प्रार्थना

वासुपूज्य प्रभु उपकारी, बारहवें तीर्थंकर थे जो
असीम पुण्यशाली प्रभुवरजी, जन जन के वल्लभ थे वो
रोहिणी नक्षत्र के समय में, आराधना उनकी करना
दुष्कर्मों को दूर हटाना, प्रसन्नता से मन भरना ।।

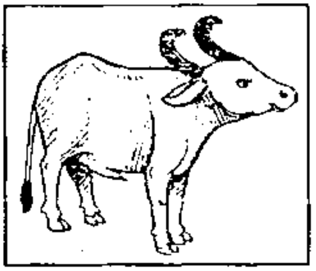

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री वासुपूज्य स्वामी

१	**माता का नाम**	*जया रानी*
२	**पिता का नाम**	*वसुपूज्य राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*ज्येष्ठ शुक्ला ६/चंपापुरी*
४	**जन्म कल्याणक**	*फाल्गुन कृष्णा १४/चंपापुरी*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*फाल्गुन कृष्णा ३०/चंपापुरी*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*माघ शुक्ला २/चंपापुरी*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*आषाढ़ शुक्ला १४/चंपापुरी*
८	**गणधर**	*संख्या ६६ प्रमुख सुभूम*
९	**साधु**	*संख्या ७२ हजार*
१०	**साध्वी**	*संख्या १ लाख प्रमुख धरणी*
११	**श्रावक**	*संख्या २ लाख १५ हजार*
१२	**श्राविका**	*संख्या ४ लाख ३६ हजार*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*पाटल*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*कुमार*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*चंडा*
१६	**आयुष्य**	*७२ लाख वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न-Mark]**	*महिष*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*प्राणत [१० वाँ]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*प्रश्नोत्तर के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*३*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*१ महीना*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*१८ लाख वर्ष*
२३	**शरीर-वर्ण (आभा)**	*लाल*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*पृथिवी*
२५	**नाम-अर्थ**	*वसुपूज्य के पुत्र होने से/वसुदेवता द्वारा पूजित*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **जब चेतना दर्शन में प्रवाहित होती है, तब आत्मा निराकार होती है, और जब चेतना ज्ञान में प्रवाहित होती है, तब आत्मा साकार होती है।**
- **द्रव्यार्थिक नय वस्तु के मूल स्वरूप का ज्ञान करवाता है, पर्यायार्थिक नय वस्तु की अनेक अवस्थाओं का बोध करवाता है।**
- **निश्चय नय आत्मा के शुद्ध स्वरूप की ही बात करता है। शुद्ध स्वरूप में सुख-दुःख की भोक्ता आत्मा नहीं होती है। कर्मजन्य अशुद्ध अवस्था में ही आत्मा सुख-दुःख की भोक्ता होती है। दोनों अवस्थायें 'शुद्ध और अशुद्ध' होती हैं, आत्मा की ही।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १३ श्री वासुपूज्यस्वामी स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र संक्षिप्त है, परन्तु गहराई ज्यादा है। ज्यों-ज्यों आत्म-चिन्तन की गहराई में जायेगा, त्यों-त्यों आत्मानन्द की अनुभूति भी गहरी होती जायेगी।

चेतन, आध्यात्मिक विकास यदि चाहता है, तो आत्मस्वरूप का व्यापक ज्ञान तुझे प्राप्त करना होगा। आत्मा के अस्तित्व का स्वीकार तो सहजता से हो गया है, कोई शंका-संदेह नहीं रहा है आत्मा के अस्तित्व के विषय में।

अब, आत्मा का स्वरूप जानना होगा। आत्मवादी विचारधाराओं में, स्वरूप को लेकर अनेक मतभेद दिखाई देते हैं। विभिन्न विचारों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है, श्री आनन्दघनजी ने। भिन्न-भिन्न दृष्टि से आत्मस्वरूप समझाने का इस स्तवना में उन्होंने सफल प्रयत्न किया है। हालाँकि इस वासुपूज्य-स्तवना में पारिभाषिक-अपरिचित शब्दों का ढेर तुझे देखने को मिलेगा। सभी अपरिचित शब्दों का विश्लेषण इस पत्र में करना संभव भी नहीं है, फिर भी सरलता से तुझे समझाने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।

वासुपूज्य जिन! त्रिभुवन स्वामी! घननामी परनामी रे,
निराकार साकार सचेतन, करम करमफल कामी रे...१

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निराकार अभेदसंग्राहक, भेदग्राहक साकारो रे,
दर्शन ज्ञान दु भेद चेतना, वस्तुग्रहण व्यापारो रे...२
कर्त्ता परिणामी परिणामो, कर्म जे जीवे करिये रे,
एक-अनेक रूप नयवादे, नियते नर अनुसरिये रे...३
दुःख-सुख, रूप, कर्मफल जाणो, निश्चय एक आनंदो रे,
चेतनता-परिणाम न चूके, चेतन कहे जिनचंदो रे...४
परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान, कर्म फल भावी रे,
ज्ञान, कर्मफल चेतन कहिए, लेजो तेह मनावी रे...५
आतमज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्य लिंगी रे,
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, आनन्दघन-मत संगी रे...६

हे वासुपूज्य भगवंत! आप देव-देवेन्द्रों के पूजनीय हो, सुर-असुरों के पूजनीय हो, मानव-मानवेन्द्रों के पूजनीय हो...नारकी के जीवों के भी आप ही स्मरणीय हो... इसी वजह से आप तीनों भुवन के स्वामी हो।

हे वासुपूज्य स्वामी! आप 'घननामी' हो। यानी आप वास्तव में परम आत्मा हैं। निश्चय नय की दृष्टि से आपका नाम नहीं है! आप परम विशुद्ध आत्मा ही हैं, परन्तु व्यवहार नय से आप 'परनामी' हैं। यानी आपका 'वासुपूज्य' ऐसा नाम, आपके शरीर का नाम है! और, शरीर आत्मा से पर है, भिन्न है। इस अपेक्षा से आप परनामी हैं।

'हे भगवंत! आप निराकार हैं। आप साकार भी हैं। आप सचेतन हैं। आप कर्म करनेवाले हैं और कर्मफल के भोक्ता भी हैं।'

- परमात्मा निराकार हैं,
- परमात्मा साकार हैं,
- परमात्मा सचेतन हैं,
- परमात्मा कर्मों के कर्ता हैं,
- परमात्मा कर्मफल के भोक्ता हैं।

चेतन, ये पाँच बातें श्री आनन्दघनजी ने समझाने का प्रयत्न किया है, परन्तु अपरिचित शब्दों में! वे कहते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'निराकार अभेदसंग्राहक, भेदग्राहक साकारो
दर्शन-ज्ञान, दु भेद चेतना, वस्तुग्रहण व्यापारो...'

संक्षेप में...सूत्रात्मक भाषा में उन्होंने तत्त्वज्ञान की गहरी बात कह दी है। जैनदर्शन की यह तत्त्वविश्लेषणा समझने के बाद चेतन, तुझे बड़ा आनन्द मिलेगा।

प्रत्येक वस्तु में दो धर्म होते हैं, यानी वस्तु-स्वभाव दो प्रकार का होता है। एक 'सामान्य' और दूसरा 'विशेष'। वस्तु के सामान्य स्वभाव को जानना 'दर्शन' कहलाता है और वस्तु के विशेष स्वभाव को जानना 'ज्ञान' कहलाता है।

वस्तु का सामान्य-स्वभाव निराकार होता है, यानी कोई विशेष आकार नहीं होता है। जबकि वस्तु का विशेष-स्वभाव साकार होता है। आकार भेद पैदा करता है। निराकार में अभेद ही रहता है।

'यह मनुष्य है', इस दर्शन में मनुष्यों की अपेक्षा से कोई भेद नहीं है, परन्तु 'यह चेतन है', ऐसा ज्ञान होता है, तब भेद बन जाता है। तू चेतन है, तू भरत नहीं है, अमित नहीं है...यह भेद हुआ न?

आत्मा में दर्शनशक्ति है, आत्मा में ज्ञानशक्ति है। किसी भी वस्तु को जानने का प्रयत्न आत्मा दो प्रकार से करती है : दर्शन से और ज्ञान से। इस अपेक्षा से आनन्दघनजी कहते हैं कि चेतना के दो प्रकार हैं : दर्शन-चेतना और ज्ञान-चेतना। तात्पर्य यह है कि आत्मा की चेतना दर्शन में प्रवाहित होती है और ज्ञान में भी प्रवाहित होती है। इस दृष्टि से, आत्मा निराकार और साकार कहलाती है। जब चेतना दर्शन में प्रवाहित होती है, तब आत्मा निराकार होती है और जब चेतना ज्ञान में प्रवाहित होती है, तब आत्मा साकार होती है।

आत्मा चैतन्यसहित होने से 'सचेतन' कहलाती है। यानी आत्मा सदैव सचेतन ही होती है। कभी भी आत्मा चैतन्यरहित नहीं होती है। आत्मा कर्मसहित हो या कर्मरहित हो, उसमें चैतन्य तो रहता ही है।

एक ही जीवात्मा के कितने परिवर्तन! जीवात्मा स्वयं वे परिवर्तन करता है। परिवर्तन का माध्यम होते हैं, कर्म। जीवात्मा कर्म करता है और परिवर्तन पाता है।

परिवर्तनशील जीवात्मा को जैनदर्शन में 'परिणामी आत्मा' कही गई है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'परिणाम' यानी रूपान्तर। जैनदर्शन का यह पारिभाषिक शब्द है। जीवात्मा परिणामी कर्त्ता है, यानी कर्मबंधन करता है, यह बात कही है।

कर्ता परिणामी परिणामो, कर्म जे जीवे करिये रे...

जीवात्मा अपने निश्चित पर्यायों के अनुसार परिवर्तन पाता रहता है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से आत्मद्रव्य एक ही होता है, इस से वह एक ही कहलाता है, परन्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से, आत्मा के अनन्त पर्याय होते हैं, इस दृष्टि से एक आत्मा अनन्त भी कहलाती है।

चेतन, 'नयवाद' जैनदर्शन का महत्वपूर्ण तत्त्वज्ञान है। नयवाद के माध्यम से एक-एक वस्तु के अनेक धर्म, अनेक स्वभाव, अनेक अवस्थाओं का बोध होता है। नयवाद के अनेक प्रकार हैं। उनमें दो प्रकार मुख्य हैं : द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नय वस्तु के मूल स्वरूप का ज्ञान कराता है, पर्यायार्थिक नय वस्तु की अनेक अवस्थाओं का बोध कराता है।

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र.... वगैरह सात नय भी बताये गये हैं। इसमें संग्रह नय, सभी आत्माओं की एक शुद्ध अवस्था की अपेक्षा से आत्मा को 'एक' मानता है, जबकि व्यवहार नय, सभी आत्माओं को भिन्न-भिन्न मानता है। इसी भाव को लेकर योगीश्वर कहते हैं-

एक-अनेक रूप नयवादे नियते नर अनुसरिये रे....

'नर' का अर्थ है, आत्मा। जीवात्मा 'नर' कहलाता है, परमात्मा 'नारायण' कहलाता है। नयों की अपेक्षा से नर एक और अनेक कहलाता है।

दुःख-सुखरुप कर्मफल जाणो, निश्चय एक आनन्दो रे....

'आत्मा जो कर्म बाँधती है, उन कर्मों का फल है सुख और दुःख। आत्मा कर्म बाँधती है और आत्मा कर्मों का फल भी भोगती है।' यह बात व्यवहार नय से कही गई है। निश्चय नय की दृष्टि से तो आत्मा आनन्द को ही भोगती है। निजानन्द का ही अनुभव करती है।

'चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहे जिनचंदो रे....

श्री जिनचन्द्र-जिनेश्वर भगवंतों ने कहा हैं कि चेतन आत्मा कभी चेतना का त्याग नहीं करती है। चेतना का धर्म है, आनन्द।

निश्चय नय आत्मा के शुद्ध स्वरूप की ही बात करता है। शुद्ध स्वरूप में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुख-दुःख की भोक्ता आत्मा नहीं होती है। कर्मजन्य अशुद्ध अवस्था में ही आत्मा सुख-दुःख की भोक्ता होती है। परन्तु दोनों अवस्थाएँ [शुद्ध और अशुद्ध] होती है, आत्मा की ही। इसलिए कहा जा सकता है कि :

- आत्मा सुख-दुःख की भोक्ता है,
- आत्मा मात्र आनन्द की ही भोक्ता है।

आत्मा को 'सांख्यदर्शन' ने कूटस्थ नित्य कहा है, जो कि कूटस्थ नित्य नहीं है, परन्तु परिवर्तनशील है, यह बात करते हैं-

परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान-कर्मफल भावि रे....

चेतन, आत्मा परिणामी है। आत्मा की अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। वह परिवर्तन ज्ञानरूप होता है, कर्मरूप होता है.... और भविष्यकालीन अनेक कर्म फलरूप होता है। कभी आत्मा अल्पज्ञ कहलाती है, कभी वही आत्मा सर्वज्ञ कहलाती है.... तो कभी अज्ञानी कहलाती है। कभी एक आत्मा सुखी कहलाती है, कभी वही आत्मा दुःखी कहलाती है....। कभी एक आत्मा सुरूप कहलाती है, वही आत्मा कभी कुरूप कहलाती है। ज्ञान एवं कर्मफल के माध्यम से आत्मा को भिन्न-भिन्न नाम से व रूप से पुकारा जाता है-यह बात योगीराज करते हैं-

ज्ञान कर्मफल चेतन कहिए, लेजो तेह मनावी रे....

निश्चय नय से यह बात नहीं की जा रही है, यह बात व्यवहार नय से की जा रही है। कर्मजन्य पर्यायों के माध्यम से आत्मा के साथ व्यवहार किया जाता है। निश्चय नय से तो आत्मा सर्वज्ञ है, परन्तु व्यवहार नय से आत्मा को अल्पज्ञ, अज्ञानी, विशेषज्ञ.... वगैरह कहा जाता है। निश्चय नय से आत्मा अरूपी है, परन्तु व्यवहार नय से आत्मा को सुरूप, कुरूप वगैरह कहा जाता है। हालाँकि सुरूपता या कुरुपता कर्मजन्य है, फिर भी आत्मा के ही कर्मों का फल होने से आत्मा को सुरूप.... कुरूप कहा जाता है। व्यवहार नय तो मानता है कि आत्मा ही कर्म बाँधती है और आत्मा ही कर्मफल भोगती है।

परस्पर सापेक्ष दोनों नयों की मान्यता स्वीकार्य होती है। निश्चय नय और व्यवहार नय, दोनों हमें मान्य करने के हैं।

आतमज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्यलिंगी रे....

जो श्रमण हैं, साधु हैं, मुनि हैं, वे आत्मज्ञानी होने चाहिए। उनको आत्मज्ञान इस प्रकार नयों की अपेक्षा से होना चाहिए। जो इस प्रकार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मज्ञानी होते हैं, वे ही सच्चे अर्थ में श्रमण हैं। जिनको ऐसा आत्मज्ञान नहीं होता है, वे मात्र मुनिवेशधारी हैं। उन्होंने मात्र साधु का वेश पहना हुआ है, भावसाधुता उनमें नहीं होती है।

हालाँकि द्रव्य-साधुता भी व्यर्थ नहीं होती है। उनका लक्ष्य भावसाधुता पाने का होना चाहिए। नयों की अपेक्षा से आत्मज्ञान प्राप्त करने का लक्ष्य होना चाहिए। सभी श्रमण तीव्र मेधावी नहीं होते हैं। बहुत कम श्रमण मेधावी होते हैं। जो मेधावी होते हैं, वे ही नयवाद को समझ पाते हैं। जो मेधावी नहीं होते हैं, वे नयवाद नहीं समझ सकते। तो क्या वे मात्र द्रव्यलिंगी कहलायेंगे? नहीं, उनमें यदि आत्मज्ञान पाने की चाह है.... अथवा आत्मज्ञान का फल, जो कि विरति का परिणाम है, वह प्राप्त हो गया है, तो वे भाव-श्रमण हैं।

वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, आनन्दघन-मत संगी रे....

जो ज्ञानी पुरुष, वस्तु के सभी स्वभावों को, सभी धर्मों को यथार्थ रूप में जानते हैं और बताते हैं, वे ही आत्मस्वरूप के चिंतन में लीनता पाते हैं। यानी वे आत्माएँ ही मोक्षमार्ग पर प्रगति कर सकती हैं।

चेतन, इस स्तवना में 'नयवाद' की प्रमुख बात कही गई है। मात्र 'मैं आत्मा हूँ.... मैं आत्मा हूँ....' इतना रटने से आत्मज्ञान नहीं पा सकते हैं। भिन्न-भिन्न नयों की दृष्टि से आत्मा का स्वरूप समझना होगा। आत्मविषयक विपुल ज्ञान तभी प्राप्त हो सकेगा।

तू कब पढ़ेगा आत्मवाद को? कब पढ़ेगा नयवाद को? और कब पढ़ेगा कर्मवाद को? प्रति वर्ष यदि १-१ महीना इसके लिए निकाल सके.... तो अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

तुझे आत्मज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो-ऐसी मंगल कामना करता हूँ।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री विमलनाथ भगवंत

स्तुति

विमलस्वामिनो वाचः, कतक-क्षोद-सोदराः।
जयन्ति त्रिजगच्चेतो-जल-नैर्मल्य-हेतवः ।।

प्रार्थना

विमलनाथ है वत्सलदायक, वारि बहाए समता के
तेरहवें तीर्थंकर का दर्शन, तोड़े बंधन ममता के।
श्यामामाता के ओ लाड़ले, कृतवर्मा के कुल-दीपक
एक बार तो आन बसो, प्यारे प्रभुवर मन के भीतर ।।

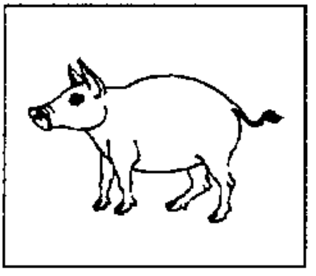

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री विमलनाथ भगवंत

१ माता का नाम	*श्यामा रानी*
२ पिता का नाम	*कृतवर्म राजा*
३ च्यवन कल्याणक	*वैशाख शुक्ला १२/कंपिलपुर*
४ जन्म कल्याणक	*माघ शुक्ला ३/कंपिलपुर*
५ दीक्षा कल्याणक	*माघ शुक्ला ४/कंपिलपुर*
६ केवलज्ञान कल्याणक	*पौष शुक्ला ६/कंपिलपुर*
७ निर्वाण कल्याणक	*आषाढ़ कृष्णा ७/सम्मेतशिखर*
८ गणधर	*संख्या ५७ प्रमुख मंदर*
९ साधु	*संख्या ६८ हजार प्रमुख मंदर*
१० साध्वी	*संख्या १ लाख ८ सौ प्रमुख धरा*
११ श्रावक	*संख्या २ लाख ८ हजार*
१२ श्राविका	*संख्या ४ लाख २४ हजार*
१३ ज्ञानवृक्ष	*जंबू*
१४ यक्ष [अधिष्ठायक देव]	*षण्मुख*
१५ यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	*विदिता*
१६ आयुष्य	*६० लाख वर्ष*
१७ लंछन [चिह्न-Mark]	*वराह [शूकर]*
१८ च्यवन किस देवलोक से?	*सहस्रार [८ वाँ]*
१९ तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	*पद्मसेन के भव में*
२० पूर्वभव कितने?	*३*
२१ छद्मस्थ अवस्था	*२ महीना*
२२ गृहस्थ अवस्था	*४५ लाख वर्ष*
२३ शरीर-वर्ण [आभा]	*सुवर्ण*
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	*देवदिन्ना*
२५ नाम-अर्थ	*गर्भ में आने पर माता का शरीर एवं मन विमल [स्वच्छ] बन गया।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- **हे भगवंत, आप जैसे महान् परमपुरुष मेरे सर पर मालिक हैं, अब मैं पामर मनुष्यों की परवाह क्यों करूँ?**
- **आनन्दघनजी अपने जीवन में कभी पामर जीवों से दबे नहीं। उन्होंने परमात्मा के लोचनों में से हिम्मत का, सत्त्व का तत्त्व पाया था।**
- **जब मनुष्य किसी भी विषय की मस्ती में झूमता है, तब वह दुनिया को व दुनिया के पदार्थों को नगण्य समझता है।**
- **जिनभक्ति में लीन बना हुआ मन, दिव्य-दैवी तत्त्वों के प्रति भी लापरवाह बन जाता है।**
- **आनन्दघनजी को जिनमूर्ति अमृतपूर्ण लगती है, अमृत के महासागर में स्नान करती दिखती है।**

पत्र : १४ श्री विमलनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। श्री वासुपूज्यस्वामी की स्तवना को समझने में तुझे पूरी सफलता नहीं मिली, ठीक है। यह विषय ही ऐसा है। जैन दर्शन की अनेकान्त-दृष्टि से श्री आनन्दघनजी ने कुछ खूबियाँ बतायी हैं, कुछ विशेषतायें बतायी हैं। पुनः-पुनः मनन करने से ही ये बातें समझ पायेगा।

तू लिखता है कि मैं विस्तार से विवेचन लिखूँ। परंतु कितना विस्तार करूँ? ज्यादा विस्तार करूँगा तो पूरा प्रवचन हो जायेगा। एक स्तवना पर एक प्रवचन भी पर्याप्त नहीं होगा! तू जानता है न कि मांडवी [कच्छ] में अजितनाथ भगवंत की स्तवना पर ११ या १२ प्रवचन दिये थे, तब जाकर उस स्तवना का विवेचन पूर्ण हुआ था।

आज श्री विमलनाथ भगवंत की स्तवना के विषय में लिखता हूँ।

दुःख-दोहग दूरे टल्यां रे, सुख-संपद शुं भेट,
धींग धणी माथे कियो रे, कुण गंजे नर-खेट?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विमलजिन! दीठां लोयण आज!
मारां सिध्यां वांछित-काज.... विमलजिन. १
चरण-कमल कमला वसे रे, निर्मल-स्थिर-पद देख,
समल-अथिर पद परिहरी रे, पंकज पामर पेख....वि. २
मुज मन तुज पद पंकजे रे, लीनो गुण-मकरन्द,
रंक गणे मंदर-धरा रे, इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र....वि. ३
साहिब! समरथ तूं धणी रे, पाम्यो परम उदार,
मन विशरामी वालहो रे, आतम चो आधार....वि. ४
दरिसण दीठे जिन तणुं रे, संशय न रहे वेध,
दिनकर करभर पसरतां रे, अंधकार प्रतिषेध....वि. ५
अमियभरी मुरति रची रे, उपमा न घटे कोय,
शांतसुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय....वि. ६
एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिनदेव,
कृपा करी मुज दीजिये रे, आनन्दघन-पदसेव....वि. ७

चेतन, प्रतिदिन अपन जिनमंदिर जाते हैं और परमात्मा के दर्शन करते हैं। परंतु क्या कभी परमात्मा के लोचन.... आँखें देखी है? लोचनों में ऐसे किसी दिव्य तत्त्व का दर्शन किया है कि दर्शन कर मन नाच उठा हो और बोल उठा हो कि 'मारां सिध्यां वांछित काज!'

आनन्दघनजी ने श्री विमलनाथजी के लोचनों में ऐसा कुछ देख लिया था.... एक दिन, और वे नाच उठे थे।

उनके मुँह से शब्द निकले-

विमलजिन! दीठां लोयण आज....

यूँ तो वे रोजाना परमात्मदर्शन करते होंगे.... परंतु रोजाना दिव्यता का दर्शन नहीं होता है। एक दिन उस महायोगी को प्रभु की आँखों में दिव्यता दिखाई दी और वे बोल उठे-

मारां सिध्यां वांछित काज.... विमलजिन!

वांछित यानी इच्छित। 'हे विमल भगवंत, मेरे इच्छित सभी कार्य सिद्ध हो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गये!' आनन्दघनजी को क्या इच्छित था? वे क्या चाहते थे? भगवंत के नयन देखकर उनकी वह चाहना पूर्ण हो गई थी। उनके मन में कोई दुःख नहीं रहा, उनके पास दुर्भाग्य नहीं रहा! उनके मन में सुख का सागर उछलने लगा और उनके चरणों में संपत्ति का ढेर आकर पड़ा.... ऐसा अनुभव उन्होंने किया था।

'दुख-दोहग दूरे टल्यां रे, सुख-संपद शुं भेट....'

चेतन, इस पंक्ति के बाद जो दूसरी पंक्ति उन्होंने लिखी है, बड़ी मार्मिक है! और मैं यह समझता हूँ कि आनन्दघनजी वही तत्त्व चाहते होंगे! वह तत्त्व है, निर्भयता! निराकुलता!

धींग धणी माथे कियो रे, कुण गंजे नर-खेट....

गुजराती भाषा में 'धींग' कहते हैं, शूरवीर को, बहादुर को। कवि कहते हैं- 'हे भगवंत, आप जैसे महान् परम पुरुष मेरे सर पर मालिक हैं, अब मैं पामर मनुष्यों की क्यों परवाह करूँ? [नरखेट' का अर्थ है : पामर मनुष्य] मैं क्यों समाज के पामर मनुष्यों से दबूँ?

आनन्दघनजी का जो समय था, उस समय में शिथिलाचारी यतियों का जैन समाज पर भारी प्रभाव था। सच्चे.... संयमी और शास्त्रज्ञ ऐसे साधुओं को भी व्यवहार दृष्टि से दबना पड़ता था। समाज का बहुमत उन शिथिलाचारी यतियों के पक्ष में था। आनन्दघनजी ऐसे लोगों को 'पामर मनुष्य' [नरखेट] कहते हैं। वे जीवन में कभी भी पामर जीवों से दबे नहीं। उन्होंने परमात्मा के लोचनों में से हिम्मत का, सत्त्व का तत्त्व पाया था। वही उनका इच्छित था, वांछित था।

दृष्टि की दिव्यता पाने के बाद वे विमलनाथ के चरणों पर दृष्टि स्थिर करते हैं। उन्होंने वहाँ 'कमला' को देखी! लक्ष्मी को देखी। वे आश्चर्य पाते हैं! 'कमला तो पंकज [कमल] में रहती है, वह यहाँ विमलनाथ के चरणों में कैसे आ गयी?' कुछ सोचा और कारण मिल गया!

चरण-कमल कमला वसे रे, निर्मल थिर-पद देख....

हे विमलप्रभो, कमला [लक्ष्मी] ने आपके चरणों में निर्मलता देखी, स्थिरता देखी, इसलिए वह आपके चरण-कमल में आकर बस गई! उसने उस पंकज का त्याग कर दिया.... चूँकि वह पैदा होता है पंक में! इसलिए वह निर्मल नहीं है और शाम को मुरझा जाता है, इसलिए वह स्थिर नहीं है। मलीन और अस्थिर पंकज का इसलिए त्याग किया कमला ने!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समल अथिरपद परिहरे रे पंकज पामर पेख....

कमला की दृष्टि में पंकज पामर [तुच्छ] दिखायी दिया, उसने उसका त्याग कर दिया और विमलनाथजी के चरण-कमल में जा बसी!

आनन्दघनजी भी विमलनाथ के चरण-कमल पर मोहित हो जाते हैं! वे कहते : 'हे प्रभो, मेरा मनभ्रमर भी आपके पद-पंकज में लीन बना है! आपके पदपंकज का गुण-मकरन्द पीने में लीन बना है! तेरे गुणों का रसपान करने में मेरा मन मस्त बना है।'

मुझ मन तुज पदपंकजे रे लीनो गुणमकरन्द....

जब मनुष्य किसी भी विषय की मस्ती में झूमता है, तब वह दुनिया को व दुनिया के पदार्थों को नगण्य समझता है। कवि का मन परमात्मा के चरणकमलों में भ्रमर बनकर, गुणरस [मकरन्द] का पान करने में मस्त बना है, इसलिए कहते हैं-

रंक गणे मंदर-धरा रे, इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र....

मेरा मन मेरुपर्वत की स्वर्णमय पृथ्वी को [मंदर=पर्वत, धरा=पृथ्वी] भी तुच्छ [पामर] मानता है। यानी अब मुझे मेरुपर्वत का भी आकर्षण नहीं रहा है। न मुझे इन्द्रदर्शन में, चन्द्र-दर्शन में या नागराज के दर्शन में भी रस रहा है। मेरे लिए ये सारे दर्शन नीरस बन गये हैं। विमलनाथ के चरणकमलों में ही मेरा मन तृप्ति पाता है और मुक्ति भी वहीं पाना चाहता है।

जिनभक्ति में लीन बना हुआ मन, दिव्य-दैवी तत्त्वों के प्रति भी लापरवाह बन जाता है। अनासक्त बन जाता है। 'मेरे ऊपर कोई देव या देवी प्रसन्न हो जाय....' ऐसी इच्छा जिनभक्ति में रंगे हुए ज्ञानीपुरुष के हृदय में जागृत नहीं होती है। क्यों करनी चाहिए ऐसी आशा? परमात्मा में ही परम सामर्थ्य और परम शक्ति जिसने देख ली.... वह पुरुष रागी-द्वेषी देवों में आकर्षित क्यों होगा? कवि कहते हैं-

साहिब! समरथ तूं धणी रे, पाम्यो हूं परम उदार....

आनन्दघनजी के समय में परमात्मा के लिए 'साहिब' शब्द का प्रयोग होता था। उस समय के दूसरे कवियों की काव्यरचना में भी 'साहिब' शब्द का प्रयोग पढ़ने में आता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कवि कहते हैं : 'भगवंत, तू मेरा सामर्थ्यशाली स्वामी है। विश्व में तेरा सामर्थ्य श्रेष्ठ है। वैसे ही तेरी उदारता भी 'परम' है। तेरी उदारता का कभी अंत नहीं आता है। तू प्रतिक्षण उदार है।

जिस मनुष्य को उदारश्रेष्ठ और शक्तिश्रेष्ठ महापुरुष का सहारा मिला हो, उस मनुष्य को दूसरों के सामने हाथ पसारने की जरुरत ही क्या?

मेरा तो तू ही भगवान है, नाथ है। तू अनन्त शक्ति का मालिक है और तू ही परम-अंतहीन उदार है। इसलिए-

मन-विशरामी वालहो रे.... आतम चो आधार....

हे मेरे प्रियतम, मेरे मन का तू ही विश्रामगृह है। चंचल मन संसार की गलियों में भटकता-भटकता जब थक जाता है.... तब विश्राम पाने के लिये तेरे चरणो में ही आता है और आता रहेगा। तू ही मेरा बालम [वालहो] है.... मेरा प्रियतम है। मेरी यही निष्ठा है। तू ही मेरी आत्मा का आधार है। मैंने तुझे ही मेरा आधार माना है.... शरण्य माना है। तेरी शरण में मैं निर्भय हूँ, तेरे प्रेम में मैं तृप्त हूँ, तेरे संग मुझे सब प्रकार से आराम है।

आनन्दघनजी कहते हैं : 'हे प्रभो, मेरा यह कथन मात्र शब्दों की जाल नहीं है, मैंने आपके दर्शन पाये हैं, मैंने आपका साक्षात्कार पाया है, भले वह साक्षात्कार क्षणिक था, परंतु एक बार मैंने स्वानुभूति कर ली है.... इसलिए मेरे मन में किसी प्रकार का संशय नहीं रहा है!' वे कहते हैं-

दरिसण दीठे जिनतणुं रे संशय न रहे वेध....

'दरिसण दीठे' शब्दप्रयोग गंभीर है। 'दीठे' का अर्थ है 'देखने से'। 'दर्शन देखने से....' कैसा शब्दप्रयोग है! 'दर्शन करने से' लिखते तो सरल बात थी, 'दर्शन देखने से....' प्रयोग अटपटा लगता है न? चेतन, एक विशिष्ट ज्ञानीपुरुष जब कवि होते हैं, उनकी काव्यरचना अर्थगंभीर होती है।

दर्शन देखने का अर्थ है, जैनदर्शन के सिद्धान्तों का अध्ययन। जैनदर्शन के सिद्धान्तों को पढ़ने से [देखने से] मन में तत्त्वों के विषय में कोई शंका नहीं रहती है। ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान का अंधकार नहीं रहता है। इस बात को उपमा से समझाते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिनकर-करभर पसरतां रे अंधकार प्रतिषेध....

[दिनकर = सूर्य, करभर = किरणों का समूह] पृथ्वी पर सूर्य की असंख्य किरणें फैलने पर अंधकार का प्रतिषेध हो जाता है.... यानी अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे जैन दर्शन देखने पर-समझने पर किसी भी बात का संशय नहीं रहता है। सभी शंकायें नष्ट हो जाती हैं।

दूसरा अर्थ यह भी किया जा सकता है-दर्शन यानी दीदार। दर्शन यानी परमात्मस्वरूप। परमात्मस्वरूप देखने के बाद, स्वरूप की अनुभूति होने पर मन में किसी प्रकार का संशय नहीं रहता है। स्वरूप की अनुभूति, सूर्य के प्रकाश जैसी होती है। प्रारंभ में यह अनुभूति क्षणिक होती है! बाद में अनुभूति की क्षणें बढ़ती जाती हैं। अनुभूति का सातत्य कई घंटों तक बना रहता है, कई दिनों तक अनुभूति की मस्ती बनी रहती है।

विमलनाथ भगवंत के लोचन और चरणकमल में मग्नता प्राप्त करने के पश्चात् आनन्दघनजी समग्रतया मूर्ति का अवलोकन करते हैं। टकटकी बाँध कर देंखते हैं.... उनको मूर्ति अमृतमय लगती है। अमृत के महासागर में स्नान करती हुई दिखती है-

अमियभरी मुरति रची रे, उपमा न घटे कोय
शान्तसुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय....

आनन्दघनजी कहते हैं कि विमलनाथ की ऐसी अमृतपूर्ण [अमिय=अमृत] मूर्ति मैंने देखी.... उसका वर्णन मैं कैसे करूँ? मुझे दुनिया में ऐसी कोई उपमा नहीं दिखती है कि जिसके साथ मूर्ति की तुलना करूँ! 'सागरः सागरोपमः' जैसी बात है। मूर्ति, मूर्ति जैसी है!

शान्तसुधारस में वह मूर्ति स्नान कर रही है.... यानी मूर्ति के एक-एक परमाणु में से शान्तसुधारस छलक रहा दिखता है! मूर्ति ऐसी प्यारी लग रही है.... कि देखता ही रहूँ.... देखता ही रहूँ। परंतु फिर भी तृप्ति नहीं होती है।

मूर्ति में परमात्मा का दर्शन करते हैं! पाषाण की मूर्ति में जीवंत परमात्मा का दर्शन करते हैं.... और भीतर में महानन्द का अनुभव करते हैं। मूर्ति काहे की भी हो.... पाषाण की हो या स्वर्ण-चांदी की हो.... देखने की दृष्टि चाहिए। भीतर में परमात्मप्रेम चाहिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्तवना को पूर्ण करते हुए वे महायोगी, अपने हृदय की एक कामना अभिव्यक्त करते हैं :

एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिन देव!
कृपा करी मुज दीजिये रे, आनन्दघन-पद-सेव....

हे जिनेश्वरदेव! मेरी एक अरज है.... आप स्वीकार करें भगवंत! मेरे ऊपर कृपा करें और आप [आनन्दघन] के चरणों की सेवा करने का अवसर प्रदान करें, यानी मुझे आपके पास ले लें.... मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ।

'आनन्दघन' शब्द को गुणवाचक बनाकर उन्होंने परमात्मा को आनन्दघन कहा। अपना नाम भी उन्होंने इस प्रकार रख दिया।

चेतन, आनन्दघनजी को इस दुनिया में रहना पसंद नहीं था। वे परमात्मा की सृष्टि में बसना चाहते थे। सेवा भी परमात्मा की ही करना चाहते थे। परमात्मा से पाना कुछ नहीं था, परमात्मा को ही पाना चाहते थे।

काश.... अपना भी इस दुनिया से लगाव टूट जाय.... और परमात्मा से प्रीति बंध जाय....। अपन भी परमात्मा की मूर्ति को अमृतमय देखें! परमात्मा की मूर्ति के हर परमाणु से अमृत छलकता देखें! अपनी भी आँखें अमृतपूर्ण हो जायें....। चेतन, इस स्तवना को तू याद कर लेना। कभी-कभी मंदिर में मधुर स्वर में गाना।

कुशल रहना।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अनंतनाथ भगवंत

स्तुति

स्वयम्भूरमण-स्पर्द्धी, करुणारस-वारिणा।
अनन्तजिदनन्तां वः प्रयच्छतु सुख-श्रियम् ।।

प्रार्थना

अनंतनाथ अनंतसुखदाता अक्षयपद से युक्त हुए
जन्म जरा मृत्यु के बंधन से प्रभुवर तुम मुक्त हुए,
सिंहसेन और सुयशारानी के नंदन हो पावनकारी
अयोध्या के राजा तुम पर संघ चतुर्विध बलिहारी ।।

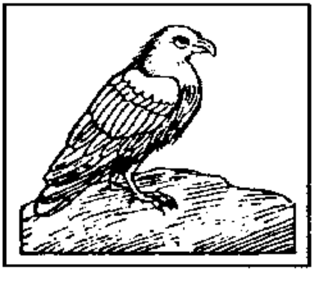

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अनंतनाथ भगवंत

१	माता का नाम	सुयशा रानी
२	पिता का नाम	सिंहसेन राजा
३	च्यवन कल्याणक	श्रावण कृष्णा ७/अयोध्या
४	जन्म कल्याणक	वैशाख कृष्णा १३/अयोध्या
५	दीक्षा कल्याणक	वैशाख कृष्णा १४/अयोध्या
६	केवलज्ञान कल्याणक	वैशाख कृष्णा १४/अयोध्या
७	निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ५/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या ५० प्रमुख जस
९	साधु	संख्या ६६ हजार प्रमुख जस
१०	साध्वी	संख्या ६२ हजार प्रमुख पद्मा
११	श्रावक	संख्या २ लाख ६ हजार
१२	श्राविका	संख्या ४ लाख १४ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	अश्वत्थ [पीपल]
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	पाताल
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	अंकुशा
१६	आयुष्य	३० लाख वर्ष
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	बाजपक्षी
१८	च्यवन किस देवलोक से?	प्राणत [१० वाँ]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	पद्मरथ के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	३ वर्ष
२२	गृहस्थ अवस्था	२२ लाख ५० हजार वर्ष
२३	शरीर-वर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४	दीक्षा-दिन की शिबिका का नाम	सागरदत्ता
२५	नाम-अर्थ	गर्भ में आने पर माँ ने अनंत मणियों की माला देखी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **प्रीति परमात्मा का स्मरण और दर्शन करवाती है। प्रीति परमात्मा का स्पर्शन करवाती है और प्रीति ही परमात्मा की आज्ञा का पालन करने के लिये प्रेरित करती है।**
- **परमात्मप्रेमी के लिए आज्ञापालन मुश्किल नहीं होता है।**
- **जिसमें जिनाज्ञा की उपेक्षा हो, वैसा कोई भी मार्ग सही नहीं है।**
- **जिनाज्ञा के साथ जिस व्यवहार का कोई संबंध न हो, वैसा व्यवहार जिनशासन में मान्य नहीं है।**
- **आगम-वचनों के अर्थ, भवभीरु और जिनशासन के प्रति निष्ठावाले बहुश्रुत गुरुजनों से प्राप्त करने चाहिए।**
- **उत्सूत्रभाषण तो सभी पापों से बढ़कर पाप है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १५ श्री अनंतनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, आनन्द!

श्री विमलनाथ भगवंत की स्तवना में तुझे-

'साहिब! समरथ तूं धणी रे, पाम्यो परम-उदार,
मन-विशरामी वालहो रे, आतम चो आधार....'

ये पंक्तियाँ हृदयस्पर्शी लगी, जानकर खुशी हुई। इन पंक्तियों के ऊपर तू ज्यों-ज्यों चिंतन करता जायेगा, त्यों-त्यों परमात्मा की शक्ति के प्रति, सामर्थ्य के प्रति तेरी श्रद्धा बढ़ती जायेगी। परमात्मा के अचिन्त्य प्रभावों की कभी-कभी तुझे अनुभूति होने लगेगी।

चेतन, श्री अनन्तनाथ भगवंत की इस स्तवना में श्री आनन्दघनजी ने, अपने परम प्रियतम परमात्मा की आज्ञाओं के पालन के विषय में बहुत कुछ कहा है। काफी मार्मिक ढंग से कहा है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धार तलवारनी सोहिली, दोहिली चउदमा जिनतणी चरणसेवा,
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना-धार पर रहे न देवा....

धार...१

एक कहे सेवीए विविध किरिया करी, फल अनेकान्त लोचन न देखे,
फल अनेकान्त-किरिया करी बापड़ा, रडवड़े चारगतिमांहे लेखे

धार...२

गच्छना भेद बहु नयण निहाळतां, तत्त्वनी वात करतां न लाजे,
उदरभरणादि निज कार्य करतां थकां, मोह नडिया कलिकाल राजे

धार...३

वचन-निरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो, वचन-सापेक्ष व्यवहार साचो,
वचन-निरपेक्ष व्यवहार संसारफल, सांभली आदरी कांई राचो

धार...४

देव-गुरु-धर्मनी शुद्धि कहो किम रहे, किम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो,
शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया करे, छार पर लींपणु तेह जाणो

धार...५

पाप नहीं कोई उत्सूत्रभाषण जिस्यो, धर्म नहीं कोई जग सूत्र सरिखो,
सूत्र-अनुसार जे भविक किरिया करे, तेहनुं शुद्ध चारित्र परखो

धार...६

एह उपदेशनो सार संक्षेपथी, जे नरा चित्तमां नित्य लावे,
ते नरा दिव्य बहु काल सुख अनुभवी, नियत आनन्दघन-राज पावे

धार...७

योगीराज आनन्दघनजी ने परमात्मप्रीति के और परमात्मभक्ति के गीत गाये। इस स्तवना में वे परमात्म-वचन, परमात्म-आज्ञा का पालन करने की बात कहते हैं।

चेतन, आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने चार प्रकार के अनुष्ठान बताये हैं- १. प्रीति-अनुष्ठान, २. भक्ति-अनुष्ठान, ३. वचन-अनुष्ठान और ४. असंग-अनुष्ठान। सर्वप्रथम चाहिए परमात्मा के प्रति हार्दिक प्रीति। प्रीति हमेशा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हार्दिक ही होती है। हृदय में जब प्रेम जागृत होता है, तब भक्ति हो ही जाती है। प्रीति, परमात्मा का स्मरण और दर्शन करवाती है। प्रीति परमात्मा का स्पर्शन करवाती है, यानी पूजन करवाती है और प्रीति ही, परमात्मा की आज्ञा का पालन करने के लिये प्रेरित करती है।

परमात्मा की आज्ञा का पालन करना कितना मुश्किल होता है, यह बात बताते हुए कवि कहते हैं :

'धार तलवारनी सोहिली, दोहिली चौदमा जिन तणी चरणसेवा'

तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलना सरल [सोहिली] है, परन्तु चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ की आज्ञाओं का पालन [चरण सेवा] करना मुश्किल है। चूँकि आज्ञापालन करने के लिए जीवन बदलना पड़ता है। विचारों को, वाणी को और शरीर के क्रिया-कलापों को बदलना पड़ता है। मुश्किल होता है, जीवन-परिवर्तन! कवि कहते हैं :

धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना-धार पर रहे न देवा!

तलवार की धार पर खेल करनेवाले जादूगर तो दुनिया में कई दिखायी देते हैं! परमात्म-आज्ञा की धार पर खेलना तो नहीं, चलना भी नहीं, खड़ा रहना भी मुश्किल होता है। आज्ञापालन की धार पर टिकने नहीं देते हैं भीतर के काम-क्रोधादि शत्रु।

यह बात ऐसे मनुष्यों के लिये कही गई है कि जिनके हृदय में परमात्मा के प्रति दृढ़ अनुराग नहीं जन्मा है। परमात्मप्रेमी के लिये आज्ञापालन मुश्किल नहीं होता है। परमात्मप्रेमी तो पहले परमात्मा की आज्ञाओं को अच्छी तरह समझेगा। आज्ञाओं का मर्म समझेगा और तदनुसार पालन करेगा। जो लोग परमात्मा की आज्ञाओं का मात्र शब्दार्थ समझते हैं, परमार्थ नहीं समझते हैं, वे लोग सही रूप में परमात्मा की आज्ञाओं का पालन नहीं कर सकते हैं। यहाँ श्री आनन्दघनजी ऐसे अपूर्ण ज्ञानी लोगों की अपूर्ण समझदारी के कुछ नमूने बताते हैं-

एक कहे सेविये विविध किरिया करी, फल अनेकान्त लोचन न देखे'

जिनाज्ञा का परमार्थ नहीं जाननेवाले [वे खुद यह मानते हैं कि हम परमार्थ जानते हैं!] कुछ लोग कहते हैं कि 'विविध प्रकार की धर्मक्रिया करना ही जिनाज्ञा का पालन है। वही परमात्मा की सेवा हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐसे क्रियावादी लोगों को कवि कहते हैं-

फल अनेकान्त किरिया करी बापड़ा, रडवडे चार गतिमांहे लेखे....

क्रियावादी लोग अपनी आँखों से क्रियाओं का अनेकान्त-फल [अनिश्चित फल] नहीं देखते हैं और ऐसी अनिश्चित फलवाली क्रियायें कर वे बेचारे.... चार गतियों में जन्म-मरण करते रहते हैं। संसार में भटकते [रडवड़े] हैं।

जिनाज्ञापालन का यथार्थ फल है मोक्ष। यदि मनुष्य धर्मक्रिया कोई माया से करता है, लोभ से करता है, अथवा भौतिक पदार्थों की आशंसा से करता है, तो उस धर्मक्रिया से मोक्ष नहीं मिलता है, परंतु संसार की चार गतियों में भटकने रूप फल मिलता है-इसको कहा गया है, अनेकान्त-फल। ज्ञानरहित क्रिया का फल मोक्ष नहीं है, ज्ञानसहित क्रिया का फल मोक्ष है।

क्रियावादी लोग जिनाज्ञा का यथोचित पालन नहीं कर सकते। क्रियामार्ग को लेकर अनेक मतभेद पैदा होते हैं, और अनेक अलग-अलग 'गच्छ' पैदा होते हैं। श्री आनन्दघनजी के समय में ऐसे ८४ गच्छ थे। गच्छों की आपस की लड़ाइयों को देखकर आनन्दघनजी क्षुब्ध थे। उन्होंने कहा-

गच्छना भेद बहु नयण निहालतां, तत्त्वनी वात करतां न लाजे....

अलग-अलग गच्छवाले, अपनी-अपनी मान्यताओं का प्रतिपादन करते हैं। और जिनोक्त तत्त्वों की बाते करते हैं! एकान्त मान्यताओं में बंधे हुए ये लोग अनेकान्तवाद की, स्याद्वाद की बात करते हुए शरमाते नहीं! रागद्वेष की परिणतिवाले ये लोग रागद्वेष से मुक्त होने की बात करते हुए लजाते नहीं! ये लोग कैसे जिनवचनों का अपने जीवन में पालन कर सकते हैं? यानी नहीं कर सकते।

घरबार छोड़कर जो साधु बने, साधु का वेश पहना, वे भी गच्छ के व्यामोह में फँस गये और आत्मा को भूल गये! मानपान और खानपान में डूब गये। इस व्यथा को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं-

उदरभरणादि निज कार्य करता थकां, मोह नडिया कलिकाल राजे.

कलिकाल का यह प्रभाव है.... कि संसारत्यागी साधु-संतों को भी मोह नचाता है। अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए वे प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। अच्छा.... बढ़िया खानपान [उदरभरण] और मान-सम्मान पाने के लिए उनका सारा क्रियाकलाप होता है। ऐसे लोग जिनाज्ञा का पालन कैसे कर सकते हैं?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री आनन्दघनजी ने किसी जीव का दोष नहीं बताते हुए 'कलिकाल' का दोष बताया है। 'मोहनीय-कर्म' की प्रबलता का दोष बताया है।

जब आनन्दघनजी ने ऐसे कोई साधुवेशधारी को कहा : 'महानुभाव, जिनाज्ञा का पालन ऐसे नहीं हो सकता, यह तो आप जिनशासन की विडंबना कर रहे हो....।' तब उनका जवाब मिला : 'योगीराज, यह तो व्यवहार मार्ग है।'

तब योगीराज का पुण्यप्रकोप प्रज्ज्वलित होता है, वे कहते हैं-

वचन निरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो, वचन सापेक्ष व्यवहार साचो,

क्या व्यवहारमार्ग की बात करते हो? जिसमें जिनाज्ञा की उपेक्षा हो, वैसा कोई भी मार्ग सही नहीं है, गलत है। गच्छवाद के ये सारे क्रियाकलाप क्या व्यवहारमार्ग हैं? साधुवेश में रहते हुए, स्वार्थपरवश होकर मंत्र-तंत्र और डोराधागा करना, कौन सा व्यवहारमार्ग है? जिनाज्ञा के साथ जिस व्यवहार का कोई संबंध न हो, वैसा व्यवहार जिनशासन में मान्य नहीं है।

वचन निरपेक्ष व्यवहार संसारफल, सांभली आदरी कांई राचो....

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के माध्यम से जिनाज्ञा का विचार करना चाहिए। ऐसा कोई भी विचार किये बिना, केवल मान-सम्मान पाने के लिए मनमाना व्यवहार चलाना दुःखदायी सिद्ध होता है। यानी वैसा व्यवहारमार्ग चलानेवाले और उस पर चलनेवाले संसार की चार गतियों में भटक जाते हैं। उनकी आत्मा पतनोन्मुख हो जाती है।

परमात्मा के वचन आगम-ग्रंथों में संग्रहित हैं। आप सुनें उन वचनों को, ग्रहण करें उन वचनों को और आनन्दित बनें।

जिनाज्ञा से विपरीत सभी क्रिया-कलापों को छोड़ने चाहिए, बंद करने चाहिए। अन्यथा ऐसे क्रिया-कलापों को देखकर दुनिया के लोग परमात्मा महावीरदेव [देव] के विषय में, निर्ग्रन्थ साधुपुरुषों [गुरु] के विषय में और सद्धर्म के विषय में कैसी कल्पना करेंगे? विशुद्ध कल्पना नहीं कर पायेंगे। दूसरे लोग तो जैनधर्म का पालन करनेवाले साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविकाओं के क्रिया-कलापों को देखकर ही सारी धारणायें बनाते हैं।

देव-गुरु-धर्मनी शुद्धि कहो किम रहे? किम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो,

अशुद्ध व्यवहारों को देखकर, दुनिया के लोग परमात्मा के विषय में, गुरुतत्त्व के विषय में और धर्म के विषय में गलत धारणायें बाँध लेते हैं, इस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से लोगों की प्राप्त की हुई [आणो] श्रद्धा कैसे टिकेगी? उनकी श्रद्धा चली जायेगी।

शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया करी, छार पर लींपणु तेह जाणो....

शुद्ध श्रद्धारहित [श्रद्धा विण] मनुष्य जो भी धर्मक्रियायें करता है, वह राख [छार] ऊपर की लिपाई जैसी समझना। राख पर की हुई लिपाई टिकती नहीं है। वैसे श्रद्धारहित जो कोई धर्मक्रिया होती है, वह सही फल को नहीं देती है। इसलिए, जो भी व्यवहारधर्म किया जाय, वह जिनाज्ञा-सापेक्ष होना चाहिए। हृदय में जिनाज्ञापालन का भाव अखंडित रहना चाहिए। जिनशासन के प्रति निष्ठा रखनेवाले ज्ञानी गुरुदेवों का मार्गदर्शन लेकर व्यवहारमार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जो निष्ठावाले साधु नहीं होते हैं, भले वे विद्वान् हों, परंतु वे आगमों के वचनों का अर्थ मनमाने ढंग से करते हैं। आगम-वचनों के अर्थ, भवभीरु और जिनशासन के प्रति निष्ठावाले बहुश्रुत गुरुजनों से प्राप्त करने चाहिए। जो धर्मगुरु भवभीरु नहीं होते हैं, निष्ठावान नहीं होते हैं और बहुश्रुत नहीं होते हैं, वैसे धर्मगुरु आगम-वचनों का गलत अर्थ करते हैं, यानी अपनी मान्यताओं के पक्ष में अर्थ करते हैं, इसको 'उत्सूत्रभाषण' कहते हैं। 'उत्सूत्रभाषण' को लेकर आनन्दघनजी कहते हैं :

पाप नहीं कोई उत्सूत्रभाषण जिस्यो, धर्म नहीं कोई जग सूत्र सरिखो

उत्सूत्रभाषण जैसा [जिस्यो] कोई पाप नहीं है। हिंसा, झूठ, चोरी, दूराचार, परिग्रह.... वगैरह पाप हैं, परंतु उत्सूत्रभाषण जैसे पाप ही नहीं हैं! उत्सूत्रभाषण तो सभी पापों से बढ़कर पाप है। हिंसा वगैरह पाप तो करनेवाले को ही दुःखी करता है, उत्सूत्रभाषण का पाप करनेवाले को तो दुर्गतियों में भटकाता है, साथ-साथ सुननेवालों को भी गुमराह करता है और दुःखों के समुद्र में डुबो देता है।

आगमग्रन्थों का सही अर्थ करना और तदनुसार जिनाज्ञा का पालन करना-यही श्रेष्ठ धर्म है। कभी मनुष्य में सत्त्व नहीं हो और जिनाज्ञा का पालन नहीं कर सकता है, परंतु अर्थ तो वही करेगा कि जो सही है, जो महामनिषी आचार्यों ने भूतकाल में किया है। यह श्रेष्ठ धर्म है।

चेतन, प्रमादवश यदि कोई विशेष धर्माराधना नहीं हो सके तो चलेगा, परंतु अपने प्रमाद को सही सिद्ध करने के लिए युक्ति का या आगम का उपयोग कभी नहीं करना। जो भी धर्मक्रिया करना है, आगमवाणी के अनुसार करना।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूत्र अनुसार जे भविक किरिया करे, तेहनुं शुद्ध चारित्र परखो....

जो मोक्षगामी मनुष्य [भविक] सूत्रानुसारी-आगमानुसारी क्रिया करता है, वही शुद्ध चारित्री कहलाता है। जिनाज्ञा के प्रति सापेक्षभाव रखनेवाले साधक का ही शुद्ध चारित्र समझना चाहिए। साधक को परखना पड़ेगा। इसलिए सर्वप्रथम स्वयं ही वैसा साधक बन जाना चाहिए। जिनाज्ञा के प्रति सापेक्ष भाव बनाये रखने के लिये, जिनाज्ञाओं को समझना बहुत आवश्यक है। जिनाज्ञाओं को समझने के लिए बुद्धि सूक्ष्म होनी चाहिए।

एह उपदेशनो सार संक्षेपथी, जे नरा चित्तमां नित्य ध्यावे,
ते नरा दिव्य बहुकाल सुख अनुभवी, नियत आनन्दघन राज पावे...

सार भी संक्षेप में कहते हैं!

श्री अनन्तनाथ भगवंत की स्तवना के माध्यम से, वचन-अनुष्ठान का स्वरूप समझाते हुए, आनन्दघनजी ने बहुत सी बातें कह दी हैं। सभी बातों का संक्षिप्त सार बताते हुए उन्होंने कहा :

'जगत में, जिनाज्ञा से सापेक्ष रह कर प्रत्येक क्रिया करनी चाहिए।'

इस सारभूत बात का जो मनुष्य [नरा] अपने मन में चिंतन करेंगे, वे मनुष्य आनेवाले जन्मों में दीर्घकाल तक देवलोक के सुख पायेंगे.... और बाद में अवश्य [नियत] आनन्दघन-राज्य [मोक्ष] पायेंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि सूत्र-सापेक्ष क्रिया-धर्मक्रिया करनेवाला मनुष्य दुर्गति में नहीं जायेगा, देवगति पायेगा। देवलोक का असंख्य वर्षो का दिव्य सुख पायेगा। बाद में पुनः मनुष्यगति में जन्म पाकर, सभी कर्मों का नाश कर, विशुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति करेगा।

चेतन, जिनागमों की कोई-कोई बातें समझ में नहीं भी आये, तो भी उन बातों की उपेक्षा मत करना। अपनी बुद्धि की अक्षमता मान लेना और जिनागमों के प्रति आदरभाव अखंड बनाये रखना।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री धर्मनाथ भगवंत

स्तुति

कल्पद्रुम-सधर्माणमिष्ट-प्राप्तौ शरीरिणाम्।
चतुर्धा धर्म-देष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ।।

प्रार्थना

धर्म के दाता धर्मनाथजी धीर-वीर गंभीर प्रभो
कर्म के भरम को मार भगाया बनकर के शूरवीर विभो।
सुव्रतानंदन सुव्रत देकर हम सब का उद्धार करो
भानुराजा के जाये प्रभुजी जीवननैया पार करो ।।

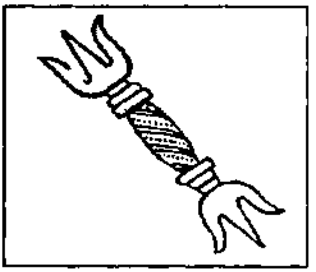

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री धर्मनाथ भगवंत

१	**माता का नाम**	*सुव्रता रानी*
२	**पिता का नाम**	*भानु राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*वैशाख शुक्ला ६/ रत्नपुरी*
४	**जन्म कल्याणक**	*माघ शुक्ला ३/ रत्नपुरी*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*माघ शुक्ला १३/ रत्नपुरी*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*पौष शुक्ला १५/ रत्नपुरी*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*ज्येष्ठ शुक्ला ५/ सम्मेतशिखर*
८	**गणधर**	*संख्या ४३ प्रमुख अरिष्ट*
९	**साधु**	*संख्या ६४ हजार प्रमुख अरिष्ट*
१०	**साध्वी**	*संख्या ६२ हजार ४ सौ प्रमुख शिवा*
११	**श्रावक संख्या**	*२ लाख ४ हजार*
१२	**श्राविका**	*संख्या ४ लाख १३ हजार*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*दधिपर्ण*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*किन्नर*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*कंदर्पा*
१६	**आयुष्य**	*१० लाख वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न-Mark]**	*वज्र*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*विजय [अनुत्तर देवलोक]*
१९	**तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन**	*दृढ़रथ के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*३*
२१	**छद्मस्थावस्था**	*२ वर्ष*
२२	**गृहस्थावस्था**	*७५ हजार वर्ष*
२३	**शरीरवर्ण (आभा)**	*सुवर्ण*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*नागदत्ता*
२५	**नाम-अर्थ**	*गर्भ में आने पर माँ ने धर्म का सुंदर व अधिक पालन किया।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **जिनचरणों को ग्रहण करना-यही धर्म का मर्म है। प्रतिपल जिनाज्ञा के प्रति जाग्रत बनकर जीना, यह धर्म है।**
- **आन्तरचक्षु से परमात्मा के दर्शन होने पर, परमात्मा की ओर दौड़ने के लिये योगीराज प्रेरणा करते हैं।**
- **'जगदीश की ज्योति' का अर्थ है, सम्यग्दर्शन। राग-द्वेष की प्रबलता कम हुए बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता है।**
- **राग और मोह की प्रबलता, आध्यात्मिक संपत्ति को देखने ही नहीं देती। रागदृष्टि और मोहदृष्टि से आत्मा के गुण नहीं दिखाई देते।**
- **प्रेम और भक्ति से भरा हुआ मन, श्रद्धा और शरणागति के भावों से भरा हुआ मन, सुन्दर मन है। ऐसा मन ही परमात्मा के चरणकमल के पास रह सकता है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १६ श्री धर्मनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। आनन्द!

श्री आनन्दघनजी की ये स्तवनायें अच्छे शास्त्रीय रागों में गायी जा सकती हैं। यदि तू अकेला-अकेला भी एकान्त कमरे में.... कि जहाँ तूने सुंदर जिनप्रतिमा स्थापित की है-वहाँ बैठकर ये स्तवन गायेगा, तुझे अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। अब थोड़ा-थोड़ा भी अर्थबोध तो तुझे हो ही गया है! विशेष अर्थ तो गाते-गाते कभी प्रस्फुटित होता जायेगा।

परमात्मा के प्रति प्रीति और भक्ति के फूल खिलते रहेंगे और परमात्मा की आज्ञाओं का बोध स्पष्ट होने पर अनेक शुभ भावों के फल तुझे मिलते जायेंगे।

श्री धर्मनाथ भगवंत की स्तवना के माध्यम से कविराज ने यहाँ 'धर्म' की परिभाषा की है। बहुत अच्छी परिभाषा की है। धर्म का फल भी अभिनव बताया है। परंतु धर्म की यह परिभाषा और फल आत्मा की उच्चतम अप्रमत्त अवस्था की दृष्टि से बताया है-यह बात याद रखना।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्म जिनेश्वर! गाउं रंगशुं, भंग म पडशो हो प्रीत... जिनेश्वर.
बीजो मनमन्दिर आणुं नहीं, ए अम कुलवट रीत... जिने. १
'धरम धरम' करतो जग सहु फिरे, धरम न जाणे हो मर्म... जिने.
धरम जिनेश्वर-चरण ग्रह्या पछी, कोई न बांधे हो कर्म... जिने. २
प्रवचन-अंजन जो सद्‌गुरु करे, देखे परम निधान... जिने.
हृदयनयण निहाले जगधणी, महिमा मेरु समान... जिने. ३
दोडत दोडत दोडत दोडीयो, जेती मननी रे दोड़... जिने.
प्रेम-प्रतीत विचारो ढुंकडी, गुरुगम लेजो रे जोड़... जिने. ४
एकपखी केम प्रीति परवडे, उभय मिल्या होय संधि... जिने.
हुं रागी, हुं मोहे फंदियो, तूं नीरागी निरबंध... जिने. ५
परम निधान प्रगट मुख आगले, जगत उल्लंघी हो जाय... जिने.
ज्योति विना जुओ जगदीशनी, अंधोअंध पलाय.... जिने. ६
निर्मल गुणमति-रोहण भूधरा, मुनिजन-मानस हंस.... जिने.
धन्य ते नगरी धन्य वेला घडी, मात-पिता-कुल-वंश.... जिने. ७
मनमधुकर-वर कर जोडी कहे, पदकजनिकट निवास.... जिने.
घननामो आनन्दघन सांभलो, ए सेवक अरदास.... जिने. ८

हे धर्मनाथ भगवंत! मैं रसपूर्ण हृदय से [रंगशुं] आपके गीत गाता हूँ। आपके साथ मेरे हृदय ने प्रीति बाँध ली है। हे नाथ, अब यह प्रीति टूटनी नहीं चाहिए। आपको निभानी है, मेरी प्रीति। आप विश्वास करना कि आपके अलावा दूसरा कोई भी देव मेरे मनमंदिर में आयेगा नहीं।

बीजो मनमन्दिर आणुं नहीं, ए अम कुलवट रीत!

आनन्दघनजी का कुल योगीकुल था न! योगियों के कुल की यह परंपरा होती है कि हृदयमंदिर में एक बार जिसको प्रतिष्ठित किया, उसका उत्थापन कर, दूसरे की प्रतिष्ठा नहीं की जाती। इसको कुल की खानदानी कहते हैं। आनन्दघनजी कहते हैं कि 'मैं उस खानदानी को निभाऊँगा।'

'धर्मनाथ' शब्द में से 'धर्म' को लेकर कविराज, धर्म के ठेकेदारों को लताड़ते हुए कहते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धरम धरम करतो जग सहु फिरे, धर्म न जाणे हो मर्म....

जगत में सभी लोग धर्म.... धर्म.... करते हुए फिर रहे हैं। 'हमारा धर्म ही सही है....' का नारा लगाते फिर रहे हैं.... परंतु कौन जानता है धर्म का मर्म? कौन समझता है धर्म का रहस्य? कोई नहीं! मात्र 'धरम.... धरम' की रटंत लगा रखी है।

धर्म का मर्म बताते हुए योगीराज कहते हैं-

धर्म जिनेश्वर-चरण ग्रह्या पछी, कोई न बांधे हो कर्म....

जिनचरणों को ग्रहण करना-यही धर्म का मर्म है। जिनचरणों को ग्रहण करना यानी जिनाज्ञा का आदर करना, यथाशक्ति पालन करना। प्रतिपल जिनाज्ञा के प्रति जाग्रत बन कर जीना, यह धर्म है।

चेतन, ऐसी प्रतिपल की आत्मजागृति न तेरी रह सकती है, न मेरी रह सकती है। ऐसी जागृति रहती है, सातवें गुणस्थानक पर रहे हुए अप्रमत्त मुनि की!

अप्रमत्त अवस्था में पापकर्म एक भी नहीं बंधता है। धर्म का यह अप्रतिम फल है। नये कर्मों का बंधन रुक जाय, पुराने कर्मों की निर्जरा होती रहे और यदि कुछ कर्मबंध होता है [योगजनित] तो पुण्यानुबंधी पुण्यकर्म का बंध हो- ऐसी यह अवस्था होती है, आत्मा की। कहने का तात्पर्य यह है कि जिससे पापकर्मों का बंधन रुक जाय, वह ही सही धर्म है।

ऐसी अप्रमत्त आत्मदशा कैसे प्राप्त होती है, यह बताते हैं-

प्रवचन-अंजन जो सद्‌गुरु करे, देखे परम निधान....

सद्‌गुरु की कृपा हो जाय और शिष्य की आँखों में [हृदयरूपी आँखें] प्रवचन-अंजन करें तो अप्रमत्त आत्मदशा प्राप्त हो सकती है। चूँकि उस अंजन से हृदयदृष्टि खुल जाती है और आत्मा में अनन्त गुणों का निधान देख लेती है। निधान पर दृष्टि स्थिर हो जाती है। इससे, बाह्य दुनिया में मन नहीं जाता है। बाह्य दुनिया में मन नहीं जाने से प्रमाद का प्रवेश नहीं हो पाता है।

परंतु महत्वपूर्ण है, सद्‌गुरु का प्रवचन-अंजन। प्रवचन यानी जिनेश्वर- वीतराग के वचन। सद्‌गुरु की कृपा से ही ये वचन प्राप्त होते हैं और आत्मा में परिणत होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृदयनयण निहाले जगधणी, महिमा मेरु समान....

हे जिननाथ, हृदयरूप नयनों से मेरू समान आप की महिमा का दर्शन होता है। आपकी अपार महिमा का दर्शन हृदयदृष्टि से ही हो सकता है। 'निःसीम महिमा' समझाने के लिए 'मेरू समान' कहा है।

प्रवचन-अंजन प्राप्त होने पर, आत्मा में परम निधान देखने पर और मेरु समान महिमावाले जगधणी का दर्शन करने पर, योगीराज कहते हैं.... दौड़ते रहो! जितनी मन की शक्ति हो.... उतना दौड़ते रहो....!

दोडत दोडत दोडत दोडियो, जेती मननी रे दोड़
प्रेम-प्रतीत विचारो ढुंकड़ी, गुरुगम लेजो रे जोड़....

खूब आगे बढ़ते चलो। परमात्मा के साथ प्रेम होने की प्रतीति निकट [ढुंकड़ी] में ही होनेवाली है। इस आभ्यंतर दौड़ में यदि ज्ञानी गुरुदेव का मार्गदर्शन मिल गया.... तब तो प्रेम-संबंध पक्का ही समझ लेना।

आन्तरचक्षु से परमात्मा के दर्शन होने पर, परमात्मा की ओर दौड़ने के लिए योगीराज प्रेरणा करते हैं। 'कैसे दौड़ना?' इस रहस्य को वे छिपाकर रखते हैं और 'गुरुगम' से समझने के लिए कहते हैं। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए उस मार्ग के अनुभवी महापुरुषों का मार्गदर्शन लेना जरूरी होता ही है।

परमात्मा के पास दौड़ कर पहुँचने की बात सुनकर, परमात्मप्रेमी मनुष्य आनन्दविभोर तो हो जाता है, परन्तु उसके मन में एक बड़ा प्रश्न पैदा हो जाता है-

एक पखी किम प्रीत परवड़े? उभय मिल्या होय संधि....

प्रीति तो दोनों पक्ष की होनी चाहिए न! एक पक्षीय प्रीति कैसे निभ [परवड़े] सकती है? दोनों मिलने पर संबंध (संधि) होता है। कवि का यह कहना है कि परमात्मा से मेरी प्रीति तो है ही, परंतु परमात्मा की मेरे प्रति यदि प्रीति नहीं है, तो हमारा संबंध कैसे बनेगा? और परमात्मा की मेरे साथ प्रीति होगी भी कैसे? चूँकि-

हुं रागी, हुं मोहे फंदियो, तूं नीरागी निरबंध....

हे भगवंत, मैं रागी हूँ, तू वीतराग [नीरागी] है। मैं मोह में फँसा [फंदियो]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ हूँ.... तू निर्बंधन है.... अपनी प्रीति कैसे निभ सकती है? समान भूमिकावालों के बीच ही प्रीति हो सकती है और निभ सकती है। इसलिए अपनी समान भूमिका बननी चाहिए। आप रागी नहीं बन सकते, मैं नीरागी बन सकता हूँ। आप मोहदशा में नहीं आ सकते, मुझे निर्बंधन होना पड़ेगा। यानी आपकी भूमिका मुझे प्राप्त करनी होगी, आप मेरी भूमिका पर नहीं आ सकते।

रागी और मोहांध लोग, सामने [मुख आगले] परम निधान पड़ा हो, फिर भी उसको देखते नहीं हैं.... और वैसे ही आगे चलते रहते हैं। न आत्मा में गुणों का निधान दिखता है, न परमात्मा की महिमा दिखती है।

परमनिधान प्रगट मुख आगले, जगत उल्लंघी हो जाय....

दुनिया की रफ्तार ही ऐसी है। आत्मा ही नहीं दिखती, तो फिर आत्मा के गुण कैसे दिखेंगे? भौतिक संपत्ति ही जिसको निधान लगता है, उसको आध्यात्मिक संपत्ति निधानरूप कैसे लगेगी? राग और मोह की प्रबलता, आध्यात्मिक संपत्ति को देखने ही नहीं देती। रागदृष्टि और मोहदृष्टि से आत्मा के गुण नहीं दिखायी देते। वे गुण देखने के लिए चाहिए जगदीश की ज्योति!

ज्योति विना जुओ जगदीशनी, अंधो अंध पलाय....

जगदीश की ज्योति का अर्थ है, सम्यग्दर्शन। राग-द्वेष की प्रबलता कम हुए बिना 'सम्यग्दर्शन' प्राप्त नहीं होता है। सम्यग्दर्शन के अभाव में दुनिया के लोग वैसे दौड़ रहे हैं, जैसे एक अंधे के पीछे दूसरा अंधा दौड़ता है! 'पलाय' यानी अनुसरण करना। एक अंधे का अनुसरण दूसरा अंधा करता है।

जगदीश की ज्योति के बिना, अंधकार में भटकते हुए लोग 'धर्म.... धर्म' की चिल्लाहट तो बहुत करते हैं, परंतु धर्म का मर्म नहीं समझ पाते हैं। अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म मानते हुए अनेक विडंबनायें पाते हैं।

प्रमादरहित और पापरहित जीवन जीनेवाले महामुनिओं की प्रशंसा करते हुए योगीराज गाते हैं-

निर्मल गुणमणि-रोहण भूधरा मुनिवर मानसहंस....

रोहणाचल पर्वत कथाग्रन्थों में प्रसिद्ध है! उस पर्वत पर रत्न मिलते हैं, यानी उस पहाड़ पर खुदाई करने से रत्न निकलते हैं! [रोहण = रोहणाचल, भूधरा = पहाड़] अप्रमत्त मुनिवरों को कवि ने रोहणाचल पर्वत की उपमा दी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। ऐसे मुनिवर निर्मल गुणरत्नों से भरे हुए होते हैं। [यहाँ 'मणि' शब्द का प्रयोग 'रत्न' के अर्थ में किया गया है]

गुणों के रत्न चाहिए तो अप्रमत्त आत्मदशा में रहे हुए मुनिवरों के पास जाइये! सेवारूप, भक्तिरूप खुदाई कीजिए! रत्न मिलेंगे ही।

दूसरी उपमा दी है, मान सरोवर के हंस की। अप्रमत्त भाव में रहे हुए मुनिवर, मान सरोवर के हंस जैसे होते हैं। संयमधर्म मान सरोवर है और मुनिवर हंस हैं। ये हंस कभी कीचड़ से भरे हुए तालाब में नहीं जाते। ये हंस मोती के अलावा दूसरा भोजन नहीं करते। वैसे मुनिराज, असंयम की कोई प्रवृत्ति नहीं करते और ज्ञान-ध्यान के अलावा दूसरा भोजन नहीं करते!

ऐसे मुनिवर परमात्मा से प्रीति बाँध लेते हैं, अथवा ऐसे महात्माओं की परमात्मा से प्रीति बंध जाती है। श्री आनन्दघनजी, ऐसे परमात्मप्रेमी महात्माओं को, उनकी जन्मभूमि को, उस काल [समय] को, उनके माता-पिता को और कुल-वंश को लाख-लाख धन्यवाद देते हुए कहते हैं-

धन्य ते नगरी, धन्य वेला-घडी, माता-पित-कुल-वंश....

उस नगरी को धन्यवाद है कि जहाँ ऐसे महामुनियों ने जन्म लिया, उस समय को, उस घड़ी [पल] को धन्य है कि जिसमें उनका जन्म हुआ। उनके माता-पिता को धन्यवाद है कि ऐसे पुत्ररत्न को जन्म दिया.... और उनके कुल-वंश को धन्यवाद है कि ऐसी विभूति उस कुल-वंश में पैदा हुई।

कवि यह बात बताते हैं कि सच्चे अर्थ में धर्म को पानेवाले ऐसे महामुनि ही होते हैं, धर्म को जीवन में जीनेवाले ऐसे महात्मा ही होते हैं। दूसरे लोग तो केवल धर्म की बातें ही करनेवाले होते हैं।

परमात्मा से सच्चा संबंध भी ऐसे महात्माओं का ही होता है। अतः ऐसे महात्माओं की हार्दिक प्रशंसा करते हैं और धन्यवाद देते हैं। अपनी खुद की ऐसी आत्मस्थिति नहीं है, इसलिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं-

मन-मधुकर वर कर जोड़ी कहे, पदकज-निकट निवास
घननामी आनन्दघन! सांभलो, ए सेवक अरदास....

[जो कभी उत्पन्न नहीं होता है और कभी नष्ट नहीं होता है, वैसे अनादि-अनन्त आत्मा [नित्य] को 'घननामी' कहा गया है]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'हे घननामी आनन्दघन! हे परमात्मन्! सेवक की [कवि की] यह विनती [अरदास] सुनिए।

मेरा सुन्दर मन-भंवरा हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है कि आपके चरण-कमल के पास मुझे रहने का स्थान दें।'

कवि ने अपना नाम परमात्मा को दे दिया! आनन्दघन प्रभो, 'मैं कहाँ हूँ आनन्दघन? आनन्द के घन.... नित्य आनन्दी तो आप ही हो।

और, परमात्मा से प्रीति बाँधने की अपनी अयोग्यता स्वीकार कर, उन्होंने कहा-'आपके हृदय में बसने की तो मेरी पात्रता है नहीं, आपके चरणों के पास बैठने की थोड़ी सी जगह दे दोगे, तो भी महती कृपा होगी सेवक पर....।'

कवि ने अपने मन को मात्र मधुकर नहीं कहा, 'वर' मधुकर कहा! परमात्मा के चरणकमल के पास सामान्य-असुन्दर मधुकर निवास नहीं कर सकता है। मधुकर सुन्दर चाहिए। आनन्दघनजी कहते हैं 'मेरा मन-मधुकर सुन्दर है!'

यह सुन्दरता थी प्रेम की और भक्ति की। श्रद्धा की और शरणागति की। प्रेम और भक्ति से भरा हुआ मन, श्रद्धा और शरणागति के भावों से भरा हुआ मन.... सुन्दर मन है और ऐसा मन ही परमात्मा के चरण-कमल के पास रह सकता है। तू और मैं, और अपना मन ऐसे सुंदर भ्रमर बन कर परमात्मा के चरणों में स्थान प्राप्त करें, वैसी मनोकामना।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री शान्तिनाथ भगवंत

स्तुति

सुधा-मोदर-वाग्-ज्योत्स्ना-निर्मलीकृत-दिङ्मुखः।
मृग-लक्ष्मा तमःशान्त्यै, शान्तिनाथ जिनोऽस्तु वः ।।

प्रार्थना

शांतिनाथ प्रभु के दर्शन से, शांति के फूल खिले
अचिरानंदन के पूजन से, सुख-संपत्ति आन मिले।
गजपुर नगर के चक्रवर्ती हो, धर्म तीर्थ के रखवाले
विश्वसेनसुत विश्वविजेता, तोड़ो कर्मों के जाले ।।

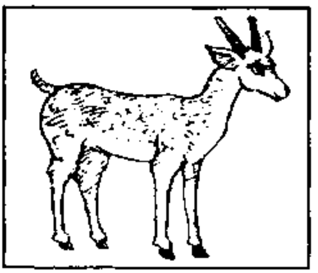

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री शांतिनाथ भगवन्त

१	**माता का नाम**	*अचिरा रानी*
२	**पिता का नाम**	*विश्वसेन राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*भाद्रपद कृष्णा ७/ हस्तिनापुर*
४	**जन्म कल्याणक**	*ज्येष्ठ कृष्णा १३/ हस्तिनापुर*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*ज्येष्ठ कृष्णा १४/ हस्तिनापुर*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*पौष शुक्ला ९/ हस्तिनापुर*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*ज्येष्ठ कृष्णा १३/ सम्मेतशिखर*
८	**गणधर**	*संख्या ६२ प्रमुख चक्रयुध*
९	**साधु**	*संख्या ६२ हजार*
१०	**साध्वी**	*संख्या ८९ हजार प्रमुख शुचि*
११	**श्रावक**	*संख्या २ लाख ९० हजार*
१२	**श्राविका**	*संख्या ३ लाख ९३ हजार*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*नंदी*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*गरुड़*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*निर्वाणी*
१६	**आयुष्य**	*१ लाख वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न-Mark]**	*हिरन*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*सर्वार्थसिद्ध [अनुत्तर]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*मेघरथ के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*१२*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*१ वर्ष*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*एक लाख वर्ष में पौन पाद कम*
२३	**शरीर-वर्ण (आभा)**	*सुवर्ण*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*सर्वार्था*
२५	**नाम-अर्थ**	*पूरे देश में शांति स्थापित हो गई। उपद्रव शांत हो गये।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **इच्छापूर्ति को शान्ति माननेवाला अनन्त इच्छाओं के उज्जड़ जंगल में भटकता रहता है। कभी अंत नहीं आता है, इच्छाओं का।**
- **आत्मतत्त्व की श्रद्धा, शान्ति की प्राप्ति का प्रारंभ है।**
- **काषायिक भाव [वैभाविक] मंद होने से शान्ति प्रगट होती है।**
- **सद्‌गुरु मिलने पर, उनके दर्शनमात्र से हृदय आनन्दित हो जाय, दर्शनमात्र से शुभ विचार जाग्रत हो जाय, दर्शनमात्र से उनके प्रति प्रीति पैदा हो जाय, तो समझना कि 'योगावंचक' की प्राप्ति हुई है।**
- **मात्र निश्चयनय से नहीं सोचना है, मात्र व्यवहार नय से फल का विचार नहीं करना है।**
- **तामसी प्रकृति के लोग अशान्त ही बने रहते हैं।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १७ श्री शांतिनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरे पत्र नियमित मिल रहे हैं।

श्री धर्मनाथ भगवंत की स्तवना ने तुझे अति प्रसन्न कर दिया है-जानकर आनन्द हुआ।

बात-बात में उपास्य.... आराध्य परमात्मतत्त्व को बदलनेवालों के लिए 'बीजो मनमंदिर आणु नहीं, ए अम कुलवट रीत....' कितनी प्रेरणादायी बात कही है!

और, 'धरम जिनेश्वर-चरण ग्रह्या पछी कोई न बांधे कर्म,' कह कर साधक को कितना स्पष्ट मार्गदर्शन दे दिया है!

श्री शांतिनाथ भगवंत की स्तवना के माध्यम से योगीराज ने आत्मा की उच्चतम अवस्था का स्वरूप बताया है। परम शान्ति.... अपूर्व समता.... कब प्राप्त होती है और कैसे प्राप्त होती है, यह बात हृदयंगम शैली में बतायी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शान्तिजिन! एक मुज विनती, सुणो त्रिभुवन-राय रे....
शान्ति स्वरूप किम जाणिये? कहो मन किम परखाय रे....शान्ति० १
धन्य तूं आतमा, जेहने, एहवो प्रश्न अवकाश रे....
धीरज मन धरी सांभलो, कहुं शान्ति-प्रतिभास रे.... शान्ति० २
भाव अविशुद्ध सुविशुद्ध, जे कह्या, जिनवर-देव रे....
'ते तिम' अवितथ सद्दहे, प्रथम ए शान्तिपद सेव रे.... शान्ति० ३
आगमधर गुरु समकिती, किरिया संवरसार रे....
संप्रदायी अवंचक सदा, शुचि अनुभवाधार रे.... शान्ति० ४
शुद्ध आलंबन आदरे, तजी अवर जंजाल रे....
तामसी-वृत्ति सवि परिहरे, भजे सात्त्विक शाल रे.... शान्ति० ५
फल-विसंवाद जेहमां नहीं, शब्द ते अर्थ संबंधी रे....
सकल नयवाद व्यापी रह्यो, ते शिवसाधन-संधि रे.... शान्ति० ६
विधि-प्रतिषेध करी आतमा, पदारथ अविरोध रे....
ग्रहणविधि महाजने परिग्रह्यो, इस्यो आगमे बोध रे.... शान्ति० ७
दुष्टजन-संगति परिहरी, भजे सुगुरु-संतान रे....
जोग सामर्थ्य चित्त भाव जे, धरे मुगति-निदान रे.... शान्ति० ८
मान-अपमान चित्त सम गणे, सम गणे कनक-पाषाण रे....
वन्दक-निन्दक सम गणे, इश्यो होय तू जाण रे.... शान्ति० ९
सर्व जगजंतु ने सम गणे, सम गणे तृण-मणि भाव रे....
मुक्ति-संसार बिहु सम गणे, मुणे भव-जलनिधि-नाव रे....शान्ति० १०
आपणो आतमभाव जे एक चेतनाऽऽधार रे....
अवर सवि साथ-संयोगथी, एह निज-परिकर सार रे.... शान्ति० ११
प्रभु-मुखथी एम सांभली, कहे आतमराम रे....
ताहरे दरिशने निस्तर्यो, मुज सीधां सवि काम रे.... शान्ति० १२
अहो अहो हुं मुज ने कहुं-'नमो मुज, नमो मुज रे'....
अमित फलदान दातारनी, जेहने भेट थई तुज रे.... शान्ति० १३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शान्ति-सरूप संक्षेपथी, कह्यो निज-पर रूप रे....
आगम मांहे विस्तर घणो, कह्यो शान्तिजिन भूप रे.... शान्ति० १४
शान्ति-सरुप एम भावशे, धरी शुद्ध प्रणिधान रे....
आनन्दघन-पद पामशे, ते लहेशे बहुमान रे.... शान्ति० १५

चेतन, इस स्तवना का प्रारंभ प्रश्न से हुआ है। आत्मा परमात्मा को प्रश्न करती है। शान्तिनाथ भगवान को प्रश्न भी शान्ति के विषय में ही पूछा गया है!

'हे शान्ति जिनेश्वर! हे तीन भुवन के राजा! मेरी एक विनती सुनने की कृपा करें। मेरे मन के प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।' प्रश्न यह है-

'शान्ति-स्वरूप किम जाणिए, कहो मन किम परखाय रे?'

'प्रभो, शान्ति का स्वरूप क्या है और 'मन में शान्ति प्राप्त हुई है,' उसकी परीक्षा अपने मन से किस प्रकार की जाय?'

मन की शान्ति पाने के लिए मनुष्य दुनिया में यत्र-तत्र-सर्वत्र भटकता है, परंतु शान्ति का स्वरूप ही कहाँ समझता है? कोई इच्छा पूर्ण होती है, तो मानता है-'अब शान्ति मिली!' इच्छापूर्ति को शान्ति माननेवाला, अनन्त इच्छाओं के उज्जड़ जंगल में भटकता रहता है। कभी अंत नहीं आता है, इच्छाओं का। इसलिए 'शान्ति' का वास्तविक स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है।

आत्मा का प्रश्न परमात्मा सुनते हैं और आत्मा को कहते हैं-

धन्य तूं आतमा! जेहने एहवो प्रश्न अवकाश रे....

'हे आत्मन्! धन्य है तुझे कि तेरे मन में ऐसा प्रश्न उठा! ऐसा प्रश्न पूछने का समय [अवकाश] मिला!'

'शान्ति क्यों नहीं है? शान्ति कैसे मिलेगी? शान्ति कहाँ मिलेगी?' वगैरह प्रश्न पूछनेवाले तो दुनिया में बहुत लोग मिलते हैं, परन्तु 'शान्ति' किसको कहते हैं? शान्ति का स्वरूप क्या है? ऐसा प्रश्न पूछनेवाला नहीं मिलता है। आनन्दघनजी ने यह मूलभूत प्रश्न पूछा और भगवान ने उनको धन्यवाद दिया। भगवान शान्तिनाथ कहते हैं-

धीरज मन धरी सांभलो, कहुं शान्ति-प्रतिभास रे....

'हे आत्मन्, तेरे प्रश्न का उत्तर विस्तृत है, इसलिए मन में धैर्य रखते हुए सुनना। मैं तुझे शान्ति का प्रतिभास [स्वरूप] बताता हूँ।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वज्ञ वीतराग ने प्रत्येक जीवात्मा के दो प्रकार के भाव बताये हैं, यानी 'प्रत्येक जीव में दो प्रकार के भाव होते हैं-१. अविशुद्ध और २. सुविशुद्ध।'

भाव अविशुद्ध सुविशुद्ध जे, कह्या जिनवर देव रे....

अविशुद्ध यानी **वैभाविक** और सुविशुद्ध यानी **स्वाभाविक**।

चेतन, वैभाविक और स्वाभाविक-ये दो शब्द तेरे लिए अपरिचित हैं। परंतु समझने जैसे हैं, ये दो शब्द। आत्मा और कर्मों के संयोग से जो भाव पैदा होते हैं, वे वैभाविक भाव कहलाते हैं, और आत्मा के स्वयं के [कर्मों के क्षय से या क्षयोपशम से] जो भाव होते हैं, वे स्वाभाविक भाव कहलाते हैं। तीर्थंकरों ने जीवों को वैभाविक भावों से मुक्त होने का उपदेश दिया है।

औदयिक भावों को वैभाविक और क्षायिक-क्षायोपशमिक भावों को स्वाभाविक भाव कह सकते हैं। इन दोनों प्रकार के भावों पर श्रद्धा करनी चाहिए।

'ते तेम' अवितत्थ सद्दहे, प्रथम ए शान्तिपद सेव रे....

'ये दोनों प्रकार के भाव [ते] उसी प्रकार [तेम] हैं,' इस तरह सत्यता [अवितत्थ] को स्वीकार [सद्दहे] करना शान्ति की प्राप्ति का प्रथम चरण है।

इन भावों के स्वीकार के साथ 'आत्मतत्त्व' के अस्तित्व का स्वीकार हो जाता है। आत्मतत्त्व की श्रद्धा शान्ति की प्राप्ति का प्रारंभ है। तात्पर्य यह है कि वास्तविक शान्ति पाना है, तो आत्मतत्त्व की श्रद्धा हृदय में स्थापित करनी होगी। तात्त्विक श्रद्धा, मनुष्य के काषायिक भावों को मंद करती है। काषायिक भाव [वैभाविक] मंद होने से शान्ति प्रगट होती है।

चेतन, वैभाविक भावों की लंबी 'सूची' है! स्वाभाविक भावों की भी एक सूचि है! **'प्रशमरति'** विवेचन में तू पढ़ना उन दोनों सूचियों को।

अब शान्तियात्रा का प्रारंभ होता है। इस यात्रा में ऐसे सद्‌गुरु का संयोग मिलना चाहिए कि अपनी शान्तियात्रा आगे बढ़ती रहे। वे सद्‌गुरु कैसे होने चाहिए, यह बताते हुए योगीराज कहते हैं-

आगमधर गुरु समकिती, किरिया संवर सार रे....
संप्रदायी अवंचक सदा, शुचि अनुभवाधार रे....

ऐसे गुरु की प्राप्ति में मनुष्य के पुण्यकर्म का उदय होना चाहिए। ऐसे गुरु की खोज करने का पुरुषार्थ आवश्यक है, परंतु यह पुरुषार्थ गौण होता है, भाग्य प्रधान होता है। सद्‌गुरु कैसे होते हैं, यह बताया है-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- आगम-ग्रन्थों के ज्ञाता होते हैं,
- सम्यग्दृष्टि होते हैं, यानी श्रद्धावान् होते हैं,
- धर्मक्रियाशील होते हैं, यानी पापकर्मों को आत्मा में आने से रोकनेवाली [संवर] धर्मक्रियायें करनेवाले होते हैं।
- शुद्ध गुरुपरंपरा जिनको प्राप्त हुई हो [संप्रदायी]।
- निर्दंभ.... सरलहृदयी होते हैं [अवंचक]
- पवित्र आत्मानुभव करनेवाले होते हैं [शुचि = पवित्र]

चेतन, ऐसे सद्गुरु का योग-संयोग प्राप्त होने पर मनुष्य की शान्तियात्रा आगे बढ़ती है। इस योग-संयोग को 'योगावंचक' कहा गया है। अवंचक गुरु का मिलना-'योगावंचक' कहलाता है। अथवा सद्गुरु का अवंचक योग होना **'योगावंचक'** है।

ऐसे सद्गुरु मिलने पर, उनके दर्शन मात्र से हृदय आनन्दित हो जाय, दर्शनमात्र से शुभ विचार जागृत हो जाय, दर्शनमात्र से उनके प्रति प्रीति पैदा हो जाय, तो समझना कि 'योगावंचक' की प्राप्ति हुई है।

ऐसे सद्गुरु मिलने पर, उनका साथ छोड़ना नहीं चाहिए। उनका आलंबन लेकर, वैभाविक भावों से मुक्ति पाने का और स्वाभाविक भावों को जाग्रत करने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

शुद्ध आलंबन आदरे तजी अवर जंजाल रे....

'आदरे' यानी ग्रहण करना। सद्गुरु शुद्ध आलंबन हैं। उनको प्रतिदिन त्रिकाल वंदन करना, उनकी सेवा करना, वे जो मार्गदर्शन दें, तदनुसार प्रवृत्ति करना.... इसको 'क्रियाअवंचक' योग कहते हैं। शुभ भाव से गुरु का आलंबन लेना और व्रत-नियमरूप क्रिया करना, नमस्कार-सेवाभक्ति वगैरह क्रिया करना, 'क्रियावंचक' योग है।

कवि कहते हैं 'तजी अवर जंजाल,' यानी संसार के पाप बंधानेवाले क्रियाकलापों का त्याग कर, मन को चिन्ताओं से मुक्त कर, सद्गुरु का आलंबन ग्रहण करना चाहिए।

तामसी वृत्ति सवि परिहरि, भजे सात्त्विक साल रे....

सद्गुरु का आलंबन लेकर, कलुषित विचारों [तामसी वृत्ति] का त्याग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करना चाहिए। उग्र क्रोध-मान-माया-लोभ का त्याग कर, क्षमा-नम्रता-सरलता और निर्लोभतारूप सात्त्विक भावों के किले [साल] में सुरक्षित रहना चाहिए।

चेतन, मन के तीन प्रकार के विचार बताये गये हैं-तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। प्रस्तुत में कवि ने राजसिक विचारों का समावेश तामसी विचारों में किया हुआ है। हालाँकि राजसिक प्रकृति के लोग ज्यादा पापविचारोंवाले नहीं होते हैं, फिर भी शान्तियात्रा में वे विचार भी बाधक बनते हैं। राजसिक विचार प्रवृत्त्यात्मक होते हैं, सात्त्विक विचार निवृत्त्यात्मक होते हैं। बाह्य प्रवृत्तियों में अशान्ति रहेगी ही। ज्ञान-ध्यान की प्रवृत्ति आन्तरिक होती है, इसलिए उसका समावेश निवृत्ति में किया गया है।

तामसिक प्रकृति के लोग अशान्त ही बने रहते हैं, इसलिए कवि ने तामसिक वृत्ति को मिटाने का उपदेश दिया है। इस प्रकार सद्‌गुरु का आलंबन लेना 'क्रियावंचक योग' होता है।

'योगदृष्टि समुच्चय' ग्रन्थ में आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने कहा है- **क्रियावंचकयोगः स्यान्महापापक्षयोदयः'** घोर पापों का [कर्मों का] नाश होने पर ही क्रियावंचक योग प्राप्त होता है। क्रियावंचक योग का फल है 'फलावंचक योग'।

फलविसंवाद जेहमां नहीं, शब्द ते अर्थसंबंधी रे....

सद्‌गुरु का आलंबन लेकर, तामसी वृत्ति का त्याग कर, सात्त्विक भावों को आत्मसात् कर, विविध धर्मक्रियायें करनेवालों को, क्रिया के अनुरूप फल मिलता ही है। जैसे शब्द का अर्थ के साथ संबंध होता ही है, वैसे क्रिया का फल होता ही है। फल नहीं मिलने की शंका [फल विसंवाद] करने की ही नहीं है।

शब्दों के अर्थ करने में सकल नयवाद व्यापक होता है। यानी नयवाद का सहारा लेकर ही शब्दों का अर्थ किया जाता है। वैसे नयदृष्टि से हर क्रिया का फल सोचना चाहिए। कोई क्रिया का प्रत्यक्ष फल भौतिक हो सकता है, परोक्ष फल मोक्ष होता है।

सकल नयवाद व्यापी रह्यो, ते शिवसाधन संधि रे....

नयदृष्टि से हर शुद्ध क्रिया का फल सोचने के लिए योगीराज कह रहे हैं। मात्र निश्चयनय से नहीं सोचना है, मात्र व्यवहारनय से फल का विचार नहीं करना है। दूसरे नयों से सापेक्ष रहते हुए फल का विचार किया जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुद्ध क्रिया करने से उसका फल मिलेगा, उसी के आधार पर आगे शुद्ध क्रिया होगी और उसका फल मिलेगा.... निश्चित फल मिलेगा, यों करते-करते अंतिम मोक्षफल मिलेगा ही।

'शिवसाधन संधि' का अर्थ है, मोक्ष प्राप्त करने के उपायों के संबंध। नयदृष्टि से सोचने पर ही ये संबंध ज्ञात होंगे।

क्रियावंचक के बाद 'फलावंचक' बताया गया है। यदि मनुष्य विशुद्ध भाव से क्रिया करता है, तो अनन्तर या परंपर फल [मोक्ष] मिलता ही है, यह तात्पर्य है।

कुछ वर्षों से दिखायी देता है कि अपने जैनसंघ में स्याद्वाद और नयवाद का अध्ययन नहींवत् हो रहा है। उपदेशकों के पास भी स्याद्वाद और नयवाद का ज्ञान नहीं हो अथवा स्पष्ट ज्ञान नहीं हो, तो संघ-समाज को बहुत बड़ा नुकसान होता है और हो रहा है। उपदेशकों के पास तो स्याद्वाद और नयवाद का विशद बोध होना ही चाहिए।

शान्तिनाथ भगवंत की स्तवना के माध्यम से श्री आनन्दघनजी ने योगावंचक, क्रियावंचक और फलावंचक-इन तीन योगों का स्वरूप समझाया है। यह समझाने के बाद वे पुनः आत्मतत्त्व की प्रतीति 'विधि-प्रतिषेध' के माध्यम से करने को कहते हैं-

विधि-प्रतिषेध करी आतमा पदारथ अविरोध रे....

ग्रहण-विधि महाजने परिग्रह्यो, इस्यो आगमे बोध रे....

चेतन, छद्मस्थ जीवों के लिए आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष नहीं है। किसी भी इन्द्रिय के माध्यम से आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष नहीं जाना जा सकता है। अर्थात् आत्मतत्त्व परोक्ष तत्त्व है। परोक्ष तत्त्वों का निर्णय 'अनुमान' प्रमाण से किया जाता है।

जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण से तत्त्वनिर्णय होता हो, वहाँ अनुमान प्रमाण की जरूरत नहीं रहती है। आत्मा, प्रत्यक्ष प्रमाण से दूसरों के सामने सिद्ध नहीं की जा सकती है, इसलिए अनुमान-प्रमाण से सिद्ध करनी चाहिए। अनुमानप्रमाण यानी तर्क। तर्क सही है या गलत है, उसका निर्णय 'अन्वय-व्यतिरेक' से किया जाता है।

चेतन, एक उदाहरण देकर तुझे यह अन्वय-व्यतिरेक [विधि-प्रतिषेध] समझाता हूँ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तेरे घर की खिड़की से पहाड़ दिखाई देता है न? मान ले कि तूने पहाड़ के ऊपर धुआँ निकलता देखा। तू सोचेगा कि 'पहाड़ पर आग लगी होनी चाहिए, अन्यथा इतना धुआँ कहाँ से आयेगा?' तूने धुआँ देखकर आग का अनुमान किया। धुएँ के आधार पर अग्नि को सिद्ध किया। संस्कृत में कहते हैं- यत्र यत्र धूमः तत्र तत्राग्निः। जहाँ-जहाँ धुआँ, वहाँ-वहाँ अग्नि। इसको 'अन्वय' कहते हैं, विधि कहते हैं।

'जहाँ अग्नि नहीं, वहाँ धुआँ नहीं!' धुएँ के बिना आग हो सकती है, परन्तु आग के बिना धुआँ नहीं हो सकता! इस प्रकार के चिन्तन को 'व्यतिरेक' कहते हैं, प्रतिषेध कहते हैं।

योगीराज कहते हैं-आत्मतत्त्व का निर्णय विधि-प्रतिषेध से कर लो। यों तो महाजनों ने-विशिष्ट ज्ञानीपुरुषों ने आत्मतत्त्व का स्वीकार [ग्रहणविधि] `विधि-प्रतिषेध' के माध्यम से ही किया है। आगम-ग्रन्थों में आत्मतत्त्व के निर्णय की यही प्रक्रिया बतायी गई है।

आत्मा का लक्षण 'चेतना' है। जहाँ-जहाँ चेतना, वहाँ-वहाँ आत्मा। यह है, विधि-अन्वय। जहाँ चेतना नहीं, वहाँ आत्मा नहीं। यह है, प्रतिषेध-व्यतिरेक।

इस प्रकार अपने आत्मा की प्रतीति करना, आत्मस्वरूप का निर्णय करना, बहुत ही आवश्यक है। इसलिए शास्त्रज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अप्रमत्त होकर शास्त्रबोध प्राप्त करना चाहिए। श्रद्धावान् होकर शास्त्र-अवगाहन करना चाहिए। इसको 'शास्त्रयोग' कहते हैं।

चेतन, आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी ने 'योगदृष्टि-समुच्चय' ग्रन्थ में जैसे १. योगावंचक, २. क्रियावंचक और ३. फलावंचक-ये तीन योग बताये हैं, वैसे १. इच्छायोग, २. शास्त्रयोग और ३. सामर्थ्ययोग-ये तीन योग भी बताये हैं। प्रस्तुत स्तवन में योगीराज ने 'शास्त्रयोग' की बात की है और आगे 'सामर्थ्ययोग' की बात करनेवाले हैं-इसलिए इन तीन योगों का स्वरुप समझ लेना चाहिए।

१. शास्त्रानुसार सभी धर्म क्रियायें करने की इच्छा होने पर भी प्रमाद से जो [ज्ञानीपुरुष भी] नहीं करता है, करता है तो दोषयुक्त क्रियाये करता है, इसको 'इच्छायोगी' कहते हैं।

२. श्रद्धावान् अप्रमत्त ज्ञानीपुरुष सभी क्रियायें शास्त्रानुसार करता है, इस को 'शास्त्रयोगी' कहते हैं।

३. आठवें गुणस्थानक पर, जिन भावों का वर्णन शास्त्र भी नहीं कर सकता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है, वैसे उत्कृष्ट शुद्ध भावों की धारा बहती है.... इसको 'सामर्थ्ययोग' कहते हैं। विशेष बात कवि कहते हैं-

दुष्टजन-संगति परिहरी, भजे सुगुरु-संतान रे....
जोग सामर्थ्य चित्त भाव जे, धरे मुगति-निदान रे....

चेतन, उझलना मत। योगीराज ने पहली ६ गाथाओं में शान्तियात्रा जो बतायी है, वह तीन 'अवंचकयोग' के माध्यम से बतायी है। सातवीं गाथा से जो शान्तियात्रा बता रहे हैं, वह इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग के माध्यम से बता रहे हैं। दोनों शान्तियात्रा का प्रारंभ उन्होंने आत्मतत्त्व की प्रतीति से ही बताया है। दोनों शान्तियात्रा में आलंबन सद्‌गुरु का ही लेने का कहा है। दोनों शान्तियात्रा में रागी-द्वेषी लोगों से दूर रहने की सावधानी दी है।

रागी-द्वेषी लोगों का संग-सहवास, मानसिक अशान्ति में बड़ा कारण है। इसलिए ऐसे लोगों का सहवास नहीं करना चाहिए।

दूसरी बात है सद्‌गुरु की उपासना की। जैसी-तैसी गुरुपरंपरा के साधुओं की सेवा [भजना] नहीं करनी चाहिए, उत्तम गुरुपरंपरा [सुगुरु-संतान] के साधुओं की सेवा करनी चाहिए। आलंबन लेना चाहिए। शास्त्रानुसारी क्रियायें करने के लिए प्रतिपल जागृत रहना चाहिए। इसलिए श्रमणजीवन ही जीना अनिवार्य होता है। गुरु के मार्गदर्शन में, अप्रमत्तभाव से शास्त्रानुसारी जीवन जीने से 'सामर्थ्ययोग' प्राप्त होता है, कि जो योगमुक्ति [मोक्ष] का प्रमुख कारण है।

शान्तियात्रा यहाँ पूर्ण होती है। इस अवस्था में मनुष्य स्थिर शान्ति पा लेता है। दुनिया का कोई भी निमित्त उसको अशान्त नहीं कर सकता है।

मान-अपमान चित्त सम गणे, सम गणे कनक-पाषाण रे....
वंदक-निंदक सम गणे इस्यो होय, तू जाण रे....
सर्व जग-जंतु ने सम गण, गणे तृण-मणि भाव रे....
मुक्ति-संसार बेहु सम गणे, मुणे भवजलनिधि नाव रे....

सामर्थ्ययोगी महात्मा के आत्मभाव इतने शान्त-प्रशान्त हो जाते हैं कि कोई भी बाह्य निमित्त या आंतरिक निमित्त, उनके मन में अशान्ति पैदा नहीं कर सकता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- न मान-सम्मान उनके मन में रागजन्य चंचलता पैदा कर सकते हैं, न अपमान-तिरस्कार द्वेषजन्य चंचलता पैदा कर सकते हैं। मान-अपमान को समान रूप में वे जानते हैं।
- चाहे उनके सामने सोना [कनक] आ जाय, या पत्थरों का [पाषाण] ढेर पड़ा हो-उस योगी की ज्ञानदृष्टि में दोनों समान होते हैं। पाषाण और सुवर्ण में वे कोई अन्तर नहीं देखते।
- कोई भक्त उन महर्षि के चरणों में वंदन करे या कोई व्यक्ति उनकी निन्दा करे, वंदक और निन्दक-दोनों को वे समान समझते हैं। वंदक के प्रति राग नहीं, निन्दक के प्रति द्वेष नहीं। ऐसे [इस्यो] होते हैं, सामर्थ्ययोगी! भगवान शान्तिनाथ आतमराम को कहते हैं कि 'तू जान ले, समझ ले शान्ति का स्वरूप।'
- सकल विश्व के सभी जीवों को [जंतुने] वे योगीपुरुष समान जानते हैं। न श्रीमन्त-गरीब का भेद, न राजा-प्रजा का भेद। भेदरहित समानरूप में वे जीवसृष्टि को देखते हैं। सभी जीवों का विशुद्ध स्वरूप समान ही है।
- चाहे घास हो या मणि-माणक हो, सामर्थ्ययोगी के मन में कोई अन्तर नहीं होता। न घास के प्रति तुच्छता का भाव, न मणि-माणक के प्रति उत्तमता का भाव।
- अरे, संसार और मोक्ष में भी कोई भेदभाव उनके मन में नहीं रहता है। दोनों समान समझते हैं, वे योगी।
- सामर्थ्ययोगी, इस समत्वभाव को संसारसागर [भवजलनिधि] में नैया समझते हैं। यानी जिस मनुष्य को संसारसागर को पार करना है, उसको समत्व की नैया में बैठना ही होगा। समत्व के अलावा दूसरी कोई नैया नहीं है कि जो संसारसागर से जीव को पार लगा दे।

चेतन, भगवान शान्तिनाथ आतमराम को कहते हैं-

आपणो आतम-भाव जे, एक चेतनाधार रे....
अवर सवि साथ-संयोगथी एह निज-परिकर सार रे....

अपनी आत्मा चेतना की आधार है। यानी चैतन्यस्वरूप है, आत्मस्वभाव। इसके अलावा जो कुछ भी है, वह कर्मों के साथ-संयोग से पैदा हुआ है। सारभूत जो है, वह चेतना [निज-परिकर] ही है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतना का अर्थ है, पूर्णज्ञान और पूर्णदर्शन यानी केवलज्ञान और केवलदर्शन। ज्ञान-दर्शन गुण हैं, गुणों का आधार आत्मा है। हम आत्मा हैं, हमारा परिकर [परिवार] ये ज्ञान-दर्शनादि गुण हैं। ज्ञानदर्शन की रमणता ही शान्ति का स्वरूप है। वह रमणता आ जाय मन में, तो समझना कि शान्ति की प्राप्ति हो गई।

भगवान् शान्तिनाथ ने आत्मा के प्रश्न का उत्तर दे दिया। उत्तर सुनकर आत्मा खुशी से झूमती है और परमात्मा को नतमस्तक होकर कहती है-

ताहरे दरिशणे निस्तर्यो, मुज सिध्यां सवि काम रे....

हे भगवंत! आपके दर्शन मुझे मिल गये.... सचमुच मुझे लगता है कि मैं भवसागर तैर गया [निस्तर्या]! मेरे सभी कार्य सिद्ध हो गये! अब मेरी दूसरी कोई इच्छा शेष नहीं रही है, न मेरा कोई कार्य शेष रहा है! आपने मुझे जो शान्ति का स्वरूप बताया.... और शान्ति की प्रतीति करवा दी.... इससे मैं अत्यंत आनन्दित हूँ। आपकी वाणी सुनते-सुनते मैंने ऐसा अनुभव किया कि मेरी आत्मा जैसे सामर्थ्ययोगी बन गई!

अहो! अहो! हुं मुजने कहुं 'नमो मुज.... नमो मुज' रे....

मैं बार-बार मेरी आत्मा को [मुजने] कहता हूँ.... यानी अपने आपको कहता हूँ : 'मुझे नमस्कार हो!' चूँकि मैं, प्रभो, धन्य बन गया हूँ आपके दर्शन पाकर। आपसे मेरा मिलन होने से.... मैं भी नमस्करणीय बन गया हूँ मेरे लिए! आपने मुझे अपरिमित [अमित] फल का दान दिया है। आप महान् दाता हैं।

कृतज्ञता अभिव्यक्त करने की कितनी अद्भुत शैली है कविराज की! और आत्मभाव की निर्मलता को प्रगट करने के लिये कितनी भव्य शब्दरचना की है योगीराज ने! 'मैं मुझे नमस्कार करता हूँ!' जैसे कि स्वयं परमात्मस्वरूप बन गये! परमात्मा से अभेद भाव से मिल गये! और 'ऐसी उत्तम आत्मस्थिति के दाता आप हैं शान्तिनाथ भगवंत!' कह कर, नम्रता का सिन्धु बहा दिया!

श्री आनन्दघनजी स्तवना का उपसंहार करते हुए कहते हैं-

शान्तिस्वरूप संक्षेपथी कह्यो निज-पर रुप रे....
आगम मांहे विस्तार घणो कह्यो शान्तिजिन भूप रे....

'मैंने संक्षेप में शान्ति का स्वरूप कहा है। स्व-रूप से शान्ति का स्वरूप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बताया और पर-रूप से भी शान्ति का स्वरूप बताया। यानी 'स्व' और 'पर' की पहचान कराकर मैंने संक्षेप में शान्ति का स्वरूप कहा है। श्री शान्ति जिनराज [जिनभूप] ने आगमों में विस्तार से शान्ति का स्वरूप कहा हैं।'

सभी तीर्थंकरों के आगम अर्थदृष्टि से समान होते हैं, इस अपेक्षा से भगवान महावीरस्वामी के आगम, शान्तिनाथ भगवान के आगम कहे जा सकते हैं। शब्दरचना आगमों की, प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में भिन्न होती है, भाव समान होते हैं। इस अपेक्षा से आनन्दघनजी ने यह बात कही है।

शान्तिस्वरूप एम भावशे, धरी शुद्ध प्रणिधान रे....
आनन्दघन-पद पामशे, ते लहेश बहु मान रे....

'मन को एकाग्र कर, वाणी का मौन धारण कर और इन्द्रियों पर संयम रख कर [शुद्ध प्रणिधान] इस प्रकार [जैसे स्तवना में बताया गया] शान्ति के स्वरूप का मनन करेगा, वह श्रेष्ठ कोटि का सम्मान पायेगा [लहेशे] और मोक्षदशा [आनन्दघन-पद] प्राप्त करेगा।'

'चेतन, यहाँ योगीराज ने 'शुद्ध प्रणिधान' शब्द का प्रयोग कर, साधक को कड़ी सावधानी दे दी है। मन-वचन-काया की शुद्धि का आग्रह किया है। शान्तिनाथ भगवंत के मुँह से योगीराज ने शान्ति का स्वरूप कहलाया है। इस से इस स्तवना की गंभीरता बढ़ गई है।

शुद्ध प्रणिधान का दूसरा अर्थ 'शुद्ध संकल्प' भी हो सकता है। 'मुझे शान्ति का सही स्वरूप जानना है और उस शान्ति को पाने का पुरुषार्थ करना है।' ऐसे संकल्प [निर्णय-निश्चय] के साथ शान्ति का स्वरूप जानना चाहिए-ऐसा कवि का तात्पर्य है।

चेतन, मन को एकाग्र करके इस स्तवना पर मनन करना। जैसे आनन्दघनजी ने कहा कि 'शान्तिस्वरूप संक्षेपथी कह्यो,' वैसे मैंने भी स्तवना कि विवेचना संक्षेप से ही की है। चूँकि पत्र में विस्तार अनुचित माना गया है! विस्तार से समझना हो तब थोड़े दिन मेरे पास आ जाना!

-प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री कुंथुनाथ भगवंत

स्तुति

श्री कुन्थुनाथो भगवान्, सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः।
सुरासुर-नृ-नाथानामेकनाथोऽस्तु वःश्रिये ।।

प्रार्थना

शूर राजा और श्रीदेवी के लाड़ले कुन्थुनाथजी है
चक्रवर्ती की आज्ञा सारी दुनिया झुक के मानती है।
धर्मतीर्थ के सारथि जिनवर! भवसागर में नैया से!
जीवननैया पार लगेगी, प्रभुजी है खेवैया-से ।।

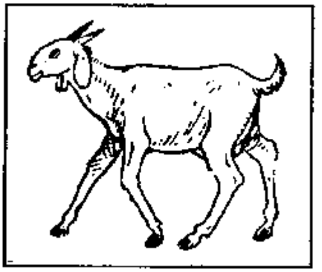

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री कुंथुनाथ भगवंत

१	**माता का नाम**	*श्रीरानी*
२	**पिता का नाम**	*शूर राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*श्रावण कृष्णा ९/हस्तिनापुर*
४	**जन्म कल्याणक**	*वैशाख कृष्णा १४/हस्तिनापुर*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*वैशाख कृष्णा ५/हस्तिनापुर*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*चैत्र शुक्ला ३/हस्तिनापुर*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*वैशाख कृष्णा १/सम्मेतशिखर*
८	**गणधर**	*संख्या ३५ प्रमुख सांब*
९	**साधु**	*संख्या ६० हजार प्रमुख सांब*
१०	**साध्वी**	*संख्या ६० हजार ६ सौ प्रमुख दामिनी*
११	**श्रावक**	*संख्या १ लाख ७९ हजार*
१२	**श्राविका**	*संख्या ३ लाख ८१ हजार*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*तिलक*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*गंधर्व*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*अच्युता*
१६	**आयुष्य**	*९५ हजार वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न]**	*बकरा*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*सर्वार्थसिद्ध [अनुत्तर]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*सिंहावह के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*३*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*१६ वर्ष*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*७१ हजार २५० वर्ष*
२३	**शरीरवर्ण (आभा)**	*सुवर्ण*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*विजया*
२५	**नाम-अर्थ**	*स्वप्न में माँ ने जमीन में रहे हुए रत्न स्तूप को देखा।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **जिस मनुष्य में राग-द्वेष की प्रबलता होती है, उसका मन तो चंचल होता ही है, परन्तु जिन मनुष्यों में राग-द्वेष की प्रबलता नहीं होती है, उनका मन भी चंचल बन जाता है कभी-कभी!**
- **मन का दमन करने से, मन पर बलात्कार करने से मन वश में नहीं आता है। वह ज्यादा उधम मचाता है, ज्यादा मनस्वी बन जाता है।**
- **मन का वशीकरण कोरे शास्त्रज्ञान से नहीं हो सकता, कोरे देहदमन से नहीं हो सकता और घंटे-दो-घंटे के ध्यान से भी नहीं हो सकता।**
- **बलवान पुरुष युद्ध के मैदान में शत्रुओं को मार सकता है, परन्तु अपने मन पर विजय नहीं पा सकता है।**
- **हे प्रभो! मेरे मन को मैं वश कर सकूँ, मैं मनोजय कर सकूँ-वैसी कृपा आप मेरे ऊपर करें तो मैं मान लूँगा कि आपने मनोजय किया है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १८ श्री कुन्थुनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, आनन्द!

शान्ति पाने का मार्ग सरल तो नहीं है। निःसत्व कायर मनुष्यों के लिए यह मार्ग नहीं है। तेरी बात सही है.... फिर भी, शान्ति का स्वरूप पढ़कर, यदि पसन्द आ जाता है और उस मार्ग पर धीरे-धीरे भी चलने की कोशिश करेगा.... लड़खड़ाता भी चलता रहेगा, तो 'इच्छा-योगी' अवश्य बन जायेगा।

शान्ति के उच्चतर शिखर पर पहुँचने में एक बड़ा विघ्न आता है.... वह विघ्न है, मन की चंचलता.... मन की अस्थिरता। हाँ, बड़े-बड़े ज्ञानी और परम शान्ति के अभिलाषी महात्माओं को भी यह विघ्न सताता है। आत्मा की सत्ता में पड़े हुए मिथ्यात्व.... अविरति.... कषाय वगैरह मलिन तत्त्व ही मन को चंचल बनाते हैं। चंचल मन, साधक को ग्यारहवें गुणस्थानक से भी नीचे गिरा देता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री आनन्दघनजी, भगवान कुन्थुनाथजी के सामने यही विनम्र निवेदन करते हैं।

मनडुं किम ही न बाजे हो कुन्थुजिन! मनडुं किम ही न बाजे,
जिम जिम जतन करीने राखुं, तिम तिम अलगुं भांजे... हो कुन्थु. १
रजनी-वासर वसती उजड़, गयण पायाले जाय...
'साप खाय ने मुखडुं थोथुं' एह उखाणो न्याय... हो कुन्थु. २
मुगति तणा अभिलाषी तपिया, ज्ञान ने ध्यान अभ्यासे...
वयरीडुं कांई एहवुं चिंते, नांखे अवले पासे... हो कुन्थु. ३
आगम आगमधर ने हाथे, नावे किणविध आंकु...
किहां कणे जो हठ करी हठकुं, तो व्यालतणी परे वांकुं...हो कुन्थु. ४
जो ठग कहुं तो ठगतो न देखुं शाहुकार पण नाही...
सर्वमांहे ने सहुथी अलगुं, ए अचरिज मनमांही... हो कुन्थु. ५
जे जे कहु ते कान न धारे, आप मते रहे कालो...
सुर-नर-पंडित जन समजावे, समजे न माहरो सालो... हो कुन्थु. ६
में जाण्युं ए लिंग नपुंसक, सकल मरद ने ठेले...
बीजी बाते समरथ छे नर, एहने कोई न झेले... हो कुन्थु. ७
'मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं, एह बात नहीं खोटी...
एम कहे साध्युं ते नवि मानुं, एक ही बात छे मोटी... हो कुन्थु. ८
मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं, ते आगमथी मति आणुं...
आनन्दघन प्रभ! माहरुं आणो, तो साचुं करी जाणुं... हो कुन्थु. ९

'हे कुन्थुनाथ जिनेश्वर! मेरा तुच्छ मन [मनडुं] किसी भी प्रकार [किमही] वश [बाजे] में नहीं आता है। ज्यों-ज्यों प्रयत्न [जतन] करता हूँ उस मन को वश करने का, त्यों-त्यों वह दूर-दूर [अलगुं] भागता [भांजे] है।'

चेतन, मन आत्मा से भिन्न है। मन और आत्मा एक नहीं है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, मन पौद्गलिक है। 'मनोवर्गणा' के पुद्गलों से मन बनता है। आत्मा के राग, द्वेष, मोह, ज्ञान, वैराग्य.... अच्छे-बुरे सभी विचार मन के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यहाँ श्री आनन्दघनजी जो कहते हैं.... 'कैसे भी मेरा मन वश नहीं होता है,' यह वास्तव में 'मेरा मोहग्रस्त मन वश नहीं होता है'-ऐसा समझने का है।

चंचल मन कहाँ-कहाँ चला जाता है.... कितना दूर-दूर भागता है, यह बताते हुए कवि कहते हैं-

रजनी-वासर वसति-उजड़ गयण-पायाले जाय....

[रजनी = रात्रि, वासर = दिवस, वसति = गाँव, नगर, उज्जड़ = निर्जन प्रदेश, गयण = आकाश, पायाले = पाताल में]

रात और दिन देखे बिना, हे प्रभो! मेरा चंचल मन किसी भी समय चला जाता है। गाँव-नगर में भटकने जाता है.... निर्जन प्रदेशों में भी चला जाता है.... पहाड़ों में और बीहड़ जंगलों में भी जाता है। ऊपर आकाश में भी उड़ता है और नीचे पाताल में भी पहुँच जाता है।

प्रिय-अप्रिय वस्तुओं के पास जाता है और प्रिय-अप्रिय व्यक्तिओं के पास जाता है। क्या पाता है वह-यह बताते हुए कवि कहते हैं-

'साप खाये ने मुखडुं थोथुं' एह उखाणो न्याय....

साँप अपने भक्ष्य को निगल जाता है, उसके मुँह में कोई स्वाद नहीं आता है, उसका मुँह तो फिक्का ही रहता है-वैसी ही बात मन की है। मन कितने ही विचार करे.... कहीं पर भी जाय, उसे कोई संतोष नहीं मिलता है।

'थोथुं' यानी फिक्का। 'उखाणो' यानी कहावत। **'साप खाये ने मुखडुं थोथुं,'** यह गुजराती कहावत है। मन के लिये भी यह कहावत चरितार्थ होती है। मन आकाश से पाताल तक भटकता है, परंतु उसको मिलता कुछ नहीं है।

जिस मनुष्य में राग-द्वेष की प्रबलता होती है, उसका मन तो चंचल होता ही है, परंतु जिन मनुष्यों में राग-द्वेष की प्रबलता नहीं होती है, राग-द्वेष मंद होते हैं, उनका मन भी चंचल बन जाता है, कभी-कभी। यह बात योगीराज बता रहे हैं-

मुगति तणा अभिलाषी तपिया, ज्ञान-ध्यान अभ्यासे,
वयरीडुं कांई एहवुं चिंते नांखे अवले पासे....

जो साधक मुक्ति के अभिलाषी होते हैं और मोक्षमार्ग की आराधना करते हैं, यानी तपश्चर्या करते हैं, ज्ञान-ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनके मन भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कभी शत्रु बन जाते हैं और ऐसे राग-द्वेष के विचार करते हैं.... कि उन मोक्षाभिलाषी साधकों को मोक्ष से विरुद्ध दिशा में ले जाते हैं। [वयरीडुं = शत्रु, एहवुं = ऐसा, चिंते = सोचता है, अवले पासे = विरुद्ध दिशा में]

दुनिया के इतिहास में ऐसे कई उदाहरण पढ़ने में आते हैं कि उच्च कोटि के विद्वान्, उच्च कोटि के तपस्वी और उच्च कोटि के योगी भी, मन के कारण ही साधनामार्ग से भ्रष्ट हुए।

आगम आगमधर ने हाथे, नावे किणविध आंकुं....

आनन्दघनजी कहते हैं : सामान्य कोटि के ज्ञानी की बात ही छोड़े, जो आगमों के ज्ञानी हैं, यानी विशिष्ट ज्ञानी हैं, वे भी आगमज्ञान के माध्यम से मन को वश करने गये, परंतु निराश हुए। उनके हाथ निराशा ही लगी। किसी भी प्रकार [किणविध] वह अंकुश में नहीं आता है। 'आंकु' यानी अंकुश में।

किहां कणे जो हठकरी हटकुं, तो व्याल तणी परे वांकु....

'किसी जगह [किहां कणे] मैं जिद्द कर [हठ करी] रोकता हूँ [हटकुं] तो साँप [व्याल] की तरह [तणीपरे] टेढ़ा चलता है। कभी तो साँप की तरह ज्यादा भयानक बन जाता है।'

तीव्र राग-द्वेष से ग्रसित मन, अथवा कभी-कभी रागी-द्वेषी हो जानेवाला मन, मात्र शास्त्रों के अध्ययन से अंकुश में नहीं आ सकता है। और दूसरी बात बड़ी महत्वपूर्ण कह दी है योगीराज ने। मन का दमन करने से.... मन पर बलात्कार करने से मन वश में नहीं आता है, वह ज्यादा उधम मचाता है, वह ज्यादा मनस्वी बन जाता है। मन का वशीकरण कोरे शास्त्रज्ञान से नहीं हो सकता, कोरे देहदमन से नहीं हो सकता और घंटे-दो-घंटे के ध्यान से भी नहीं हो सकता है।

कैसा विचित्र है मन! कभी लगता है कि मन बड़ा ठग है, तो कभी लगता है, बड़ा साहुकार है।

जो ठग कहुं तो ठगतो न देखुं, शाहुकार पण नाही,
सर्वमांहे ने सहुथी अलगुं ए अचरिज मनमांही....

यदि मैं मेरे मन को ठग कहता हूँ.... और वह कहाँ एवं कैसे ठगाई करता है-वह देखने जाता हूँ तो वह ठगाई करता हुआ नहीं दिखाई देता है। फिर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सोचता हूँ-'क्या वह सज्जन है?' नहीं, सज्जन भी नहीं लगता! चूँकि उसने मुझे बहुत नुकसान पहुँचाया है। मैं उसको सज्जन तो कह ही नहीं सकता। हर बात में वह अपनी टाँग अड़ाता है.... और वहाँ से खिसक जाता है! मन के विषय में मेरा यह बड़ा आश्चर्य [अचरिज] है।

श्री आनन्दघनजी का मन के प्रति यह घोर आक्रोश है। मन ठगता रहता है आत्मा को, परंतु आत्मा को खयाल नहीं आता है कि 'मेरा मन मेरे साथ ठगाई कर रहा है।' यानी आत्मा को कभी-कभी Missguide कर देता है।

वैसे कभी सज्जन भी बन जाता है। सज्जन वास्तव में नहीं है, परंतु सज्जनता का स्वांग रचता है। थोड़े समय के लिए आत्मा को भ्रमणा हो जाती है-'मेरा मन मुझे कितनी अच्छी राय देता है।'

गलत रास्ते पर आत्मा को भटका देता है.... और खुद वहाँ से दूर चला जाता है। कष्ट आत्मा को सहने पड़ते हैं। कभी-कभी मन को उपालंभ देता हूँ, परंतु वह सुननेवाला कहाँ है?

जे जे कहुं ते कान न धारे, आप मते रहे कालो....

सुर-नर-पंडितजन समजावे, समजे न मारो सालो....

जैसे कि मन को कान है.... फिर भी वह सुनता नहीं है.... ऐसी कल्पना कर, योगीराज कहते हैं-मेरा मन उद्धत [मारो सालो] है। जो-जो बात मैं उसको कहता हूँ वह सुनता हीं नहीं [कान न धारे] वह तो अपनी इच्छा [आप मते] के अनुसार ही रहता है। गंवार [कालो] है वह।

देव [सुर] भी मन को समझा सकते नहीं। देवों को भी वह नचाता है। मनुष्य [नर] को तो वह धारता ही नहीं। विद्वानों की बात को भी ठुकरा देता है। अब क्या किया जाय? मैंने भी उसको समझाना सरल समझा था.... परंतु नहीं समझा सका उसको।

में जाण्युं ए लिंग नपुंसक सकल मरद ने ठेले

बीजी वाते सथरथ छे नर, एहने कोई न झेले....

मैंने शब्दकोश में पढ़ा कि मन का लिंग 'नपुंसक' है [गुजराती भाषा में]। पुरुष के सामने वह कमजोर होगा। चूँकि पुरुष 'पुंलिंग' है। पुंलिंग से नपुंसक लिंग कमजोर होता है, ऐसा समझकर उसको समझाने चला.... परंतु उसने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तो मुझे [पुरुष को] पटक दिया। वह तो सभी पुरुषों को धक्का [ठेले] देकर गिरा सकता है!

दूसरी-दूसरी बातों में पुरुष [नर] शक्तिमान [समरथ] होगा.... परंतु इस मन को [एहने] कोई जीत [झेले] नहीं सकता है?

बलवान पुरुष युद्ध के मैदान में शत्रुओं को मार सकता है, परंतु अपने मन पर विजय नहीं पा सकता है।

बुद्धिमान पुरुष अपनी तर्कशक्ति से दूसरों की जबान बंद कर सकता है, परंतु अपने मन की जबान को बंद नहीं कर सकता है।

कलाकार अपनी कला दिखाकर दुनिया को मंत्रमुग्ध कर सकता है, परंतु अपने मन का वशीकरण नहीं कर सकता है।

नपुंसक-लिंग होने पर भी मन ऐसी शक्ति रखता है कि सभी पुरुषों को पल भर में धराशायी कर सकता है।

इसलिए, यदि कोई महत्वपूर्ण कार्य करना है, कोई विशिष्ट सिद्धि प्राप्त करनी हो, तो मनोजय की सिद्धि प्राप्त करनी है।

'मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं एह वात नहीं खोटी
एम कहे 'साध्युं' ते नवी मानुं, एक ही वात छे मोटी....

दुनिया के लोग कहते हैं-जिसने मन को साध लिया-वश कर लिया, उसने सब कुछ [सघलुं] सिद्ध कर लिया, सब कुछ पा लिया,' यह बात गलत नहीं है। यह बात शत-प्रतिशत सही है। यदि कोई मनुष्य या देव कह दे कि 'मैंने मन वश कर लिया है,' तो मैं मानने को तैयार नहीं हूँ। चूँकि संसार में यह ही एक बात-मन को वश करने की, बड़ी बात है। यानी दुष्कर-अति दुष्कर बात है।

आजकल कुछ मायावी लोग दुनिया के लोगों को कहते फिरते हैं-महीना-दो महीना हमारा 'ध्यान' करो, तुम्हारा मन स्थिर हो जायेगा! दो-चार महीना हमारी योग साधना करो, तुम्हारा मन स्थिर हो जायेगा। एक-दो साल हमारे अध्यात्म प्रवचन सुनते रहो, तुम्हार मन स्थिर हो जायेगा....!' ध्यान-योग और अध्यात्म का व्यापार करनेवालों पर मुग्ध-भोले लोग विश्वास कर लेते हैं.... और जाल में फँस जाते हैं। आनन्दघनजी कहते हैं कि मन को वश करने के दावेदारों को मैं नहीं मानता!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राग-द्वेष से भरा हुआ मन कभी भी स्थिर.... निश्चल और विशुद्ध नहीं हो सकता है। अल्प समय के लिए, कोई विशेष प्रक्रिया के द्वारा मन को विचारशून्य कर देना, वह मन का वशीकरण नहीं है। जब उस प्रक्रिया का प्रभाव नष्ट होगा, पुनः मन चंचल-अस्थिर बन जायेगा।

आनन्दघनजी भगवान कुंथुनाथजी को कहते हैं-

मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं तें आगमथी मति आणुं,
आनन्दघन प्रभु! माहरुं आणो, तो साचुं करी जाणु....

हे आनन्दघन भगवंत! 'जिस मन को दुनिया का कोई भी मनुष्य या देव वश नहीं कर सकता है, वैसे दुराराध्य मन को आपने वश किया था, मनोजय प्राप्त किया था,' ऐसा मैंने आगम-ग्रन्थों में पढ़ा है। आगम ग्रन्थों के माध्यम से मैंने जाना [मति आणुं] है। परंतु.... मैं इस बात पर [आप ने मन पर विजय पायी है वह] विश्वास कैसे कर लूँ?

मेरे मन को मैं वश कर सकूँ, मैं मनोजय कर सकूँ-वैसी कृपा आप मेरे ऊपर करें, तो मैं मान लूँगा कि आपने मनोजय किया है। आप मनोजयी बने हैं तो मुझे भी मनोजयी बना सकते हैं भगवंत! आप 'जिणाणं जावयाणं' हो प्रभु! आप विजेता है, दूसरों को विजेता बनानेवाले हो। मुझे विजेता बनायेंगे तो ही मैं आपको विजेता मानूँगा!

चेतन, यहाँ जिसको आनन्दघनजी ने 'मन' कहा है, वह रागी-द्वेषी मन समझना। मन को वश करना यानी राग-द्वेष पर विजय पाना। परमात्मा की प्रीति-भक्ति से एवं उनकी आज्ञाओं के पालन से अवश्य ही मनुष्य मनोजयी बन सकता है, राग-द्वेष का विजेता बन सकता है।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अरनाथ भगवंत

स्तुति

अरनाथस्तु भगवान् चतुर्थार-नभो-रविः।
चतुर्थ-पुरुषार्थ-श्री-विलासं वितनोतु वः ।।

प्रार्थना

ओ अरनाथ अनंत सुखदाता, देवी रानी के जाए हो
राजा सुदर्शन के सुत प्यारे, प्राणी मात्र को भाए हो।
शरण तुम्हारी जो भी आए, चित्त प्रसन्नता को पाये
तुम चरणों की सेवा करके, आत्मा उज्ज्वल हो जाए ।।

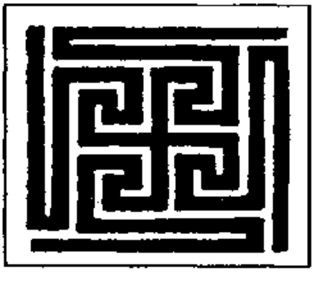

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अरनाथ भगवन्त

१	माता का नाम	देवी रानी
२	पिता का नाम	सुदर्शन राजा
३	च्यवन कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला २/हस्तिनापुर
४	जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष शक्ला १०/हस्तिनापुर
५	दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/हस्तिनापुर
६	केवलज्ञान कल्याणक	कार्तिक शुक्ला १२/हस्तिनापुर
७	निर्वाण कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला १०/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या ३३ प्रमुख कुंभ
९	साधु	संख्या ५० हजार प्रमुख कुंभ
१०	साध्वी	संख्या ६० हजार प्रमुख रक्षिका
११	श्रावक	संख्या १ लाख ८४ हजार
१२	श्राविका	संख्या ३ लाख ७२ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	आम्र
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	यक्षराज
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	धारिणी
१६	आयुष्य	८४ हजार वर्ष
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	नंदावर्त
१८	च्यवन किस देवलोक से?	सर्वार्थसिद्ध [अनुत्तर]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	धनपति के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	३ वर्ष
२२	गृहस्थ अवस्था	६३ हजार वर्ष
२३	शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	वैजयन्ती
२५	नाम-अर्थ	स्वप्न में माँ ने महारत्न देखा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **शास्त्र-ज्ञान और तपश्चर्या को व्यर्थ नहीं मानना है, छोड़ देना नहीं है, परन्तु इससे भी आगे की आराधना करनी है।**
- **श्री आनन्दघनजी, आत्मानुभव की निरन्तरता को धर्म कहते हैं, परमधर्म कहते हैं, श्रेष्ठ धर्म कहते हैं।**
- **आत्मा के अलावा दूसरा कोई तत्त्व नहीं चाहिए अनुभव में। मात्र शुद्ध आत्मा! आत्मा के अनादि पर्यायों का भी चिन्तन नहीं करने का है।**
- **कोई विकल्प नहीं, कोई विचार नहीं! शुभ विचार नहीं और शुद्ध विचार भी नहीं। विचारों से सर्वथा मुक्ति पा लेनी है, निर्विकल्प-दशा का आनन्द अनुपम होता है।**
- **व्यवहार-धर्म के सहारे निर्विकल्प समाधि तक नहीं पहुँचा जा सकता है।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : १९ श्री अरनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। आनन्द,

भगवान कुंथुनाथजी की स्तवना में 'मन को वश करना मुश्किल है', यह बात कही गई। इस स्तवना में मन को स्थिर कर आत्मा की पूर्णता पायी जा सकती है-यह बात बता रहे हैं। केवल ज्ञान-ध्यान और तपश्चर्या से मन स्थिर नहीं हो पाता है, यह बात सही है, परंतु मन को स्थिर करने के प्रारंभिक उपाय वे ही हैं। शास्त्रज्ञान में और तपश्चर्या में रुक नहीं जाना है। इससे भी आगे बढ़ना है। शास्त्रज्ञान को और तपश्चर्या को व्यर्थ नहीं मानना है, छोड़ देना नहीं है, परन्तु इससे भी आगे की आराधना करनी है।

चेतन, कुछ लोग कुन्थुनाथ भगवंत की स्तवना को लेकर, मन को स्थिर करने का प्रयत्न छोड़ देते हैं! अरनाथ भगवान की स्तवना पढ़ते नहीं है.... और निराश हो जाते हैं। बड़ी गलती हो रही है यह।

अरनाथजी की स्तवना में योगीराज, मुमुक्षु को आत्मा के पास ले जाते हैं.... खूब निकट ले जाते हैं.... आत्मभूमि पर रमण करवाते हैं!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धरम परम अरनाथनो किम जाणुं भगवंत रे
स्वपर-समय समजावीए महिमावंत महंत रे.... धरम. १
शुद्धातम-अनुभव सदा स्व-समय एह विलास रे,
पर-पडिछांयडी जे पड़े ते पर-समय निवास रे.... धरम. २
तारा नक्षत्र ग्रह चंदनी ज्योति दिनेश मोझार रे,
दर्शन-ज्ञान-चरण थकी शक्ति निजातम धार रे.... धरम. ३
भारी पीलो चीकणो कनक अनेक तरंग रे,
पर्यायदृष्टि न दीजिये एकज कनक अभंग रे.... धरम. ४
दरशन ज्ञान चरण थकी अलख सरुप अनेक रे,
निर्विकल्प-रस पीजिए शुद्ध निरंजन एक रे.... धरम. ५
परमारथ-पंथ जे कहे, ते रंजे एक तंत रे,
व्यवहारे लख जे रहे, तेहना भेद अनंत रे.... धरम. ६
व्यवहारे लख दोहिलो काँई न आवे हाथ रे,
शुद्ध नय-थापना सेवतां नवि रहे दुविधा साथ.... धरम. ७
एक पखी लख प्रीतनी तुम साथे जगनाथ रे,
कृपा करीने राखजो, चरणतले ग्रही हाथ रे.... धरम. ८
चक्री धरम-तीरथ तणो तीरथ-फल तत्तसार रे,
तीरथ सेवे ते लहे आनन्दघन निरधार रे.... धरम. ९

'हे महिमाशाली महान् भगवंत! आपका [अरनाथ का] श्रेष्ठ [परम] धर्म किस प्रकार मैं जान सकता हूँ? आपका वह श्रेष्ठ धर्म कि जो स्व-समयरूप और पर-समयरूप है, वह मुझे समझाने की कृपा करें।'

चेतन, यहाँ श्री आनन्दघनजी क्रियात्मक धर्म की बात नहीं कर रहे हैं। भावनात्मक धर्म की बात भी नहीं कर रहै हैं। तूने कभी नहीं सुना होगा.... वैसे 'निश्चय-धर्म' की बात बता रहे हैं। आत्मधर्म की बात कर रहे हैं। इस धर्म में प्रवेश होने पर मन शान्त-प्रशान्त हो जाता है। 'स्वसमय' और 'परसमय' की परिभाषा करते हुए योगीराज गाते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुद्धतम-अनुभव सदा, स्वसमय एह विलास....

सदैव शुद्ध आत्मा का अनुभव होना, स्व-रूप का [स्वसमय का] यही विस्तार है। विलास यानी विस्तार।

कर्मों से मुक्त आत्मा, शुद्ध आत्मा कहलाती है। शुद्ध आत्मा का अनुभव होना चाहिए और उस अनुभव में आत्मस्वरूप विस्तार से अनुभूत होना चाहिए। आत्मा का जो ज्ञानमय, दर्शनमय, चारित्रमय स्वरूप है, उसका अनुभव होना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा समय उस अनुभव की अवस्था बनी रहनी चाहिए।

श्री आनन्दघनजी, आत्मानुभव की निरंतरता को धर्म कहते हैं, परम धर्म कहते हैं, श्रेष्ठ धर्म कहते हैं।

पर-पडिछांयडी जे पडे, ते परसमय-निवास रे,

आत्मा से जो भिन्न है-वह पर है। आत्मा से भिन्न हैं जड़ द्रव्य, आत्मा से पर है, वैभाविक भाव और आत्मा से पर है, दूसरी आत्मायें। शुद्ध आत्मा पर इन परद्रव्यों की प्रतिच्छाया [पडिछांयड़ी] पड़ती है, तब वह शुद्ध आत्मा परस्वरूप का निवास बन जाती है।

जैसे स्वच्छ दर्पण में जैसी छाया पड़ती है, वैसा दर्पण दिखता है, वैसे शुद्ध आत्मा में परद्रव्यों की छाया पड़ने पर परद्रव्य-स्वरूप आत्मा बन जाती है। उस समय आत्मानुभव नहीं रहता है, इसलिए वह अवस्था धर्ममय नहीं रहती है। शुद्ध आत्मानुभव ही श्रेष्ठ धर्म है।

आत्मा के अलावा दूसरा कोई तत्त्व नहीं चाहिए अनुभव में। मात्र शुद्ध आत्मा! आत्मा के पर्यायों का भी चिन्तन नहीं करने का है। शुद्ध ज्ञानादि पर्यायों का भी चिन्तन नहीं करना है।

एक उदाहरण बताकर यह बात समझाते हैं-

तारा नक्षत्र ग्रह चंदनी ज्योति दिनेश मोझार,
दर्शन-ज्ञान-चरण थकी शक्ति निजातम धार....

जब आकाश में सूर्य [दिनेश] जगमगाता है, उस समय ताराओं की, नक्षत्रों की, ग्रहों की और चन्द्र की ज्योति सूर्य में ही समा जाती है, वैसे दर्शन, ज्ञान और चारित्र के पर्याय [शक्ति] अपनी आत्मा [निजातम] में ही रहे हुए हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थात् आत्मा के गुणपर्यायों का चिंतन नहीं करना हैं, मात्र शुद्ध आत्मा का ही अनुभव होना चाहिए, वही श्रेष्ठ धर्म है।

एक दूसरा दृष्टांत देकर यह बात समझाते हैं-

भारी पीलो चीकणो कनक अनेक तरंग....
पर्यायदृष्टि न दीजिये एक ज कनक अभंग....

कनक यानी सोना। सोने के अनेक पर्याय [तरंग] हैं, जैसे कि वह भारी होता है, पीला होता है, चिकना होता हैं। यदि इन पर्यायों को न देखें, यानी सोने को पर्यायदृष्टि से नहीं देखें तो अभेद रूप से एक सोना ही दिखता है। 'यह सोना है,' इतना ही दिखेगा। भारीपना, पीलापन और चिकनापन.... सोने में समाया हुआ ही है। उसका अलग-अलग बोध नहीं करें, और 'यह सोना है' इतना ही अनुभव करें, तो हो सकता है।

वैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अगुरुलघुता, अक्षयता वगैरह अनंत आत्मगुण आत्मा से अलग नहीं हैं, वे सभी गुण आत्मरूप ही हैं। 'मैं शुद्ध आत्मा हूँ' इतना ही अनुभव करना है। इस अनुभव को श्री आनन्दघनजी ने 'स्वसमय' कहा है।

दर्शन ज्ञान चरण थकी अलख स्वरूप अनेक
निर्विकल्प रस पीजिये शुद्ध निरंजन एक....

आत्मा जैसे दर्शन-स्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, चारित्रस्वरूप है, वैसे तो उस के अनेक स्वरूप हैं कि जो हम नहीं जानते हैं, [अलख] आत्मा के अनंत गुण हैं.... उन सभी गुणों को, स्वपर्यायों को भूलते चलो.... [पर द्रव्य और परपर्यायों को तो पहले ही भूल जाने के हैं] सर्वथा भूल जायें और निर्विकल्प दशा का आनन्द रस पीते रहें। कोई विकल्प नहीं.... कोई विचार नहीं! शुभ विचार नहीं और शुद्ध विचार भी नहीं। विचारों से सर्वथा मुक्ति पा लेनी है। निर्विकल्प दशा का अनुपम आनन्द होता है।

एक शुद्ध और निरंजन आत्मा की अनुभूति ही निर्विकल्प समाधि है। इसे 'निरालंबन योग' भी कहा गया है।

'शुद्ध निश्चय नय' की अपेक्षा से श्रेष्ठ धर्म का यह स्वरूप बताया गया है। यही सारभूत तत्त्व है, यही परमार्थ है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'स्वसमय' और 'परसमय' की कितनी गहन गंभीर और सूक्ष्म परिभाषा की है योगीराज ने! अद्‌भुत है यह परम धर्म!

इस पारमार्थिक तत्त्व के गुण गाते हुए योगीराज कहते हैं-

परमारथ पंथ जे कहे ते रंजे एक तंत,
व्यवहारे लख जे रहे, तेहना भेद अनंत....

जो मुमुक्षु इस पारमार्थिक पंथ की बात जानते हैं [कहे] वे निर्विकल्प [एक तंत] दशा में आनंदित [रंजे] होते हैं। जो मुमुक्षु व्यवहारमार्ग का लक्ष्य [लख] रखते हैं, वे आत्मा के अनन्त पर्यायों [भेद] में उलझते हैं। चूँकि पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से आत्मा के अनन्त पर्याय हैं।

आत्मानुभव के लिए द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि चाहिए। आत्मस्वरूप की व्यापक जानकारी के लिए पर्यायार्थिक नय की दृष्टि चाहिए। दोनों नयों के माध्यम से आत्मा को जानना आवश्यक है, परंतु परम शान्ति पाने के लिए, परम धर्म की आराधना करने के लिए द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से एक आत्मा में ही लीनता प्राप्त करनी चाहिए। पर्यायरहित एक मात्र आत्मद्रव्य में अभेदभाव से लीन होना चाहिए।

चर्मचक्षु से मात्र द्रव्य के पर्याय ही दिखते हैं। पर्यायों के दर्शन से राग-द्वेष पैदा होते हैं। मूलभूत शुद्ध द्रव्य का दर्शन ज्ञानदृष्टि से होता है। उस दर्शन में राग-द्वेष पैदा नहीं होते हैं।

निश्चय नय और द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि समान है। व्यवहारनय और पर्यायार्थिक नय की दृष्टि समान है। व्यवहार नय से आत्मा को लक्ष्य बनाकर चलने से क्या होता है-यह बात बताते हैं-

व्यवहारे लख दोहिलो कांई न आवे हाथ,
शुद्ध नय-थापना सेवतां, नवि रहे दुविधा-साथ....

मात्र व्यवहार नय से ही आत्मा का लक्ष्य [लख] बनाया जाय यानी आत्मकल्याण का, आत्मशुद्धि का प्रयत्न किया जाय तो मुश्किल [दोहिलो] है आत्मशुद्धि। नहीं होगी आत्मशुद्धि। कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। आत्मशुद्धिरूप फल प्राप्त नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि व्यवहार धर्म के सहारे निर्विकल्प समाधि तक नहीं पहुँचा जा सकता। निर्विकल्प समाधि पाने के लिए तो शुद्ध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नय [निश्चयनय-द्रव्यार्थिक नय] की दृष्टि से [थापना] आत्मा को देखना होगा। हृदय में शुद्ध नय की स्थापना करनी होगी। शुद्ध नयदृष्टि से आत्मशुद्धि के मार्ग पर चलने पर कोई दुविधा साथ नहीं रहेगी। शुद्ध नयदृष्टि से 'अद्वैत' की प्राप्ति होती है। कोई द्वैत नहीं टिक सकता वहाँ। एक-अद्वितीय आत्मा ही बचती है वहाँ। वह है अरनाथ भगवंत का परम धर्म यानी स्व-समय!

परम धर्म की, स्व-समय की निर्विकल्प समाधि की.... अद्वैत की बात करने के पश्चात् श्री आनन्दघनजी अपनी वर्तमान आत्मस्थिति का निवेदन करते हैं-

एक पखी लख प्रीतनी तुम साथे जगनाथ,
कृपा करीने राखजो, चरणतले ग्रही हाथ....

हे जगनाथ, अभी तो मैं द्वैतभाव में हूँ, 'पर-समय' की परछाई मेरी आत्मा पर छायी हुई है.... चूँकि मैं आपके साथ प्रेम में हूँ! आपके साथ एकपक्षीय प्रीति, मेरा लक्ष्य है। आपकी मेरे प्रति प्रीति नहीं है, मैं जानता हूँ, चूँकि आपकी प्रीति को वहन करने की मेरी पात्रता नहीं है।

भले, आप मेरे साथ प्रेम न करें, परंतु दया तो कर सकते हो न? प्रेम नहीं तो दया-कृपा सही! मेरा हाथ पकड़ना [ग्रही] और आपके चरणों में [चरणतले] मुझे रखना। ताकि मैं अनात्मभावों में चला न जाऊँ।

आनन्दघनजी परमात्मा से कहते हैं-भले आप मुझ से प्रेम नहीं करें, मैं तो आपके प्रेम में हूँ ही। मेरा प्रेम तो बना ही रहेगा। आप दयासिन्धु कहलाते हैं, तो मेरे ऊपर दया तो बरसा सकते हो! बस, आपके चरणों में रहूँगा और प्रेम के गीत गाता रहूँगा!

श्री अरनाथ भगवंत गृहस्थजीवन में चक्रवर्ती थे। छ खंड की ठकुराई छोड़कर उन्होंने चारित्रधर्म अंगीकार किया था और वे तीर्थंकर बने थे। इस चक्रवर्तीत्व को ध्यान में रखते हुए वे कहते हैं-

चक्री धरम-तीरथ तणो तीरथ-फल तत्तसार,
तीरथ सेवे ते लहे आनन्दघन निरधार....

हे भगवंत! आप धर्मतीर्थ के चक्रवर्ती हैं।

आप गृहस्थावस्था में चक्रवर्ती थे, तीर्थंकर की अवस्था में भी चक्रवर्ती हैं। आप सर्वज्ञ-वीतराग बने, आपने धर्मतीर्थ की-जिनशासन की स्थापना की। यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मतीर्थ की स्थापना एक प्रकार का शुद्ध व्यवहार है। आपने निश्चयनय के माध्यम से पूर्णता पायी और पूर्णता प्राप्त कर लोकहित के लिये धर्मतीर्थ की प्रवर्तना की! यानी व्यवहार-धर्म की पालना की।

जो कोई जीव, धर्मतीर्थ की आराधना करता है [तीरथ सेवे] वह अवश्य [निरधार] आनन्दघन [मोक्ष] पाता है, [लहे] परंतु यह फल तो चेतन, पारम्परिक फल है। अनन्तर फल है, तत्त्वसार। तीर्थ की [धर्मशासन की] आराधना के ये दो प्रकार के फल हैं।

निश्चय नय से अद्वैत-दशा तो बता दी, निर्विकल्प समाधि भी बता दी, परंतु श्री आनन्दघनजी ने तो द्वैतदशा ही चाही! परमात्मा के चरण चाहे, परमात्मा से प्रेम किया और परमात्मा के धर्मतीर्थ की सेवा चाही! यानी उन्होंने व्यवहार नय से ही आत्मशुद्धि का मार्ग पसंद किया।

'तो फिर उन्होंने निश्चय नय से शुद्ध अद्वैत की बात क्यों की?' ऐसा प्रश्न तेरे मन में जरुर पैदा होगा। उन महापुरुष ने बहुत सोच कर शुद्ध अद्वैत की, निर्विकल्प समाधि की बात की है। चूँकि हर मुमुक्षु को अपने हृदय में निश्चय नय से आत्मा को लक्ष्य बनाना है। बाह्य आचरण में व्यवहार नय को प्रधानता देने की है।

चेतन, कभी-कभी हृदय में निश्चय नय से शुद्ध आत्मा में लीन होने का प्रयत्न तो करना! मजा आयेगा तुझे। और, धर्मतीर्थ के प्रति तेरी श्रद्धा अविचल रहनी चाहिए, यानी जिनवचनों के प्रति प्रतिबद्धता रहनी चाहिए।

जिनवचनों से निरपेक्ष होकर, निश्चयनय से मनमानी आत्मविषयक बातें करनेवालों के फंदे में मत फँसना! सावधान रहना....

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री मल्लिनाथ भगवंत

स्तुति

सुरासुर-नराधीश-मयूर-नव-वारिदम्।
कर्म्मद्रून्मूलने हस्ति-मल्लं मल्लिमभिष्टुमः ।।

प्रार्थना

राजा कुंभ व प्रभावती रानी के कुल को कीर्ति दी
मल्लिजिनेश्वर स्त्री तीर्थंकर बनकर सबको विरति दी।
उन्नीसवें तीर्थंकर का आराधन भव से पार करे
भोयणीमंडन मल्लि प्रभु का, सुमरिन सब संसार करे ।।

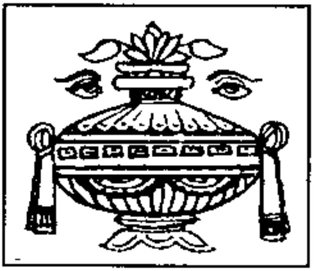

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री मल्लिनाथ भगवन्त

१	माता का नाम	प्रभावती रानी
२	पिता का नाम	कुंभ राजा
३	च्यवन कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला ४/मिथिला
४	जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
५	दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
६	केवलज्ञान कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
७	निर्वाण कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला १२/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या २८ प्रमुख अभीक्षक
९	साधु	संख्या ४० हजार प्रमुख अभीक्षक
१०	साध्वी	संख्या ५५ हजार प्रमुख बंधुमती
११	श्रावक	संख्या १ लाख ८४ हजार
१२	श्राविका	संख्या २ लाख ६५ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	अशोक
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	कुबेर
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	वैरोट्या
१६	आयुष्य	५५ हजार वर्ष
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	कलश-कुंभ
१८	च्यवन किस देवलोक से?	जयंत [अनुत्तर]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	वैश्रमण के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ अवस्था	१ प्रहर
२२	गृहस्थ अवस्था	१०० वर्ष
२३	शरीर-वर्ण (आभा)	नील
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	जयन्ती
२५	नाम-अर्थ	माँ की इच्छा पुष्प मालाओं की शय्या पर सोने की हुई।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- **सर्वप्रथम आपका अज्ञानदोष दूर हुआ। प्रभो! आप सर्वज्ञ हो गये। वह बेचारी अज्ञानता चली गई, अनादिकाल से जो आपके संग रही थी!**
- **जो सर्वज्ञ-वीतराग होते हैं, उनको चौथी उजागर-दशा होती है।**
- **हे भगवंत! आपने चार प्रकार के 'अनंत' पा लिये। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य।**
- **'परमात्मा' अट्ठारह दोषों से रहित होते हैं 'और' जो आत्मा अट्ठारह दोषों से मुक्त हो, वही परमात्मा है, इस बात को स्पष्ट किया है।**
- **इस प्रकार देवत्व की परीक्षा कर, मन के विश्रामरूप जिनेश्वर भगवंत के जो मनुष्य गुण गाता है, उस पर दीनबंधु परमात्मा की महर नजर पड़ती है। परमात्मा की कृपादृष्टि से मनुष्य मोक्ष पा लेता है।**

पत्र : २० श्री मल्लिनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, अहोभाव से आप्लावित है तेरा पत्र।

श्रीमद् आनन्दघनजी के प्रति तेरे हृदय में अहोभाव प्रगट हुआ.... उनके प्रति श्रद्धेयता पैदा हुई.... पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई।

परमात्मा से परम धर्म के विषय में प्रश्न किया और परमात्मा के मुँह से उत्तर दिलवाया! निश्चय नय और व्यवहार नय-दोनों नय बताये हैं, तीर्थंकर देवों ने। भीतर में निश्चयनय की धारणा बनाये रखने की है, बाहर में व्यवहार नय का पालन करने का है।

दोनों नयों के बतानेवाले सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा, दोषरहित होते हैं, उन में एक भी दोष नहीं होता है, यह बात इस स्तवना में योगीराज बतायेंगे।

अट्ठारह दोषों में से एक भी दोष तीर्थंकर परमात्मा में नहीं होंता है। क्रमशः वे किस प्रकार दोषमुक्त होते जाते हैं.... और पूर्णता पाते हैं.... यह बात, श्री मल्लिनाथ भगवंत की स्तवना के माध्यम से बतायी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेवक किम अवगणिये हो मल्लि जिन! ए अब शोभा सारी?
अवर जेहने आदर अति दिये, तेहने मूल निवारी.... हो मल्लि. १
ज्ञानस्वरूप अनादि तमारुं, लीधुं तमे ताणी,
जुओ अज्ञानदशा रीसावी, जातां कोण न आणी.... हो मल्लि. २
निद्रा सुपन जागर उजागरता तुरीय अवस्था आवी
निद्रा सुपन दशा रीसाणी, जाणी न नाथ मनावी.... हो मल्लि. ३
समकित साथे सगाई कीधी सपरिवार शुं गाढ़ी,
मिथ्या-मति अपराधण जाणी घरथी बाहिर काढी.... हो मल्लि. ४
हास्य अरति शोक दुगंछा भय पामर करसाली,
नो-कषाय गज श्रेणि चढतां श्वान तणी गति झाली.... हो मल्लि. ५
राग-द्वेष अविरतिनी परिणति ए चरणमोहना योद्धा,
वीतराग परिणति परिणमतां उठी नाठा बोघा.... हो मल्लि. ६
वेदोदय कामा परिणामा काम्य करम सहु त्यागी,
निःकामी करुणारस सागर, अनंत चतुष्क पद पागी.... हो मल्लि. ७
दान-विघन वारी सहु जनने, अभय दानपद दाता,
लाभ-विघन जगविघन निवारक, परम लाभ रस माता....हो मल्लि. ८
वीर्य-विघन पंडित वीर्यें हणी पूरव पदवी योगी,
भोगोपभोग दोय विघन निवारी पूरण भोग सुभोगी.... हो मल्लि. ९
ए अढार दूषण वर्जित तनु मुनिजन वृन्दे गाया,
अविरति-रूपक दोष-निरुपण, निर्दूषण, मन भाया.... हो मल्लि. १०
इणविध परखी मन-विशरामी जिनवर गुण जे गावे,
दीनबंधुनी म्हेरनजरथी आनन्दघन-पद पावे.... हो मल्लि. ११

हे मल्लिनाथ जिनेन्द्र! आपके जो सेवक पहले आपकी शोभारूप थे, उन पुराने सेवकों का अब क्यों अपमान [अवगणिये] कर निकाल दिये? इससे क्या आपकी शोभा बढ़ी है? दूसरे देव [अवर] जिनको बहुत आदर देते हैं, अपने पास रखते हैं, उनको सर्वथा [मूल] निकाल दिये!

प्रेम-कटाक्ष की यह भाषा है! 'मल्लिनाथ' में से 'मल्ल' शब्द लेकर 'आप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तो मल्ल जैसे बलवान् हो!' ऐसा भाव मन में लेकर कवि ने कहा 'क्यों आपने पुराने सेवक काम-क्रोध-लोभ आदि को धक्का देकर खदेड़ दिये? उन सेवकों का नामोनिशान मिटा दिया!'

सेवक पुराना हो तो क्या हो गया? यदि वह नुकसान करनेवाला सिद्ध होता है, तो उसको निकाल देना चाहिए। अज्ञानता, मोह, राग-द्वेष.... इत्यादि का सहारा लेकर जीवात्मा अनादिकाल से संसार में रहा हुआ है। हास्य, रति-अरति, भय, शोक.... जुगुप्सा.... इत्यादि का सहारा तो प्रतिदिन.... प्रतिपल लेता रहता है। मोहमूढ़ जीवात्मा को वे हास्य वगैरह अच्छे लगते हैं। परन्तु जब ज्ञानदृष्टि खुलती है, तब ये सब दोषरूप लगते हैं, नुकसान करनेवाले लगते हैं। नुकसान होता है आत्मा को।

एक-एक दोष को कैसे निकाला मल्लिनाथ ने, बहुत रसपूर्ण भाषा में बताते हैं-

ज्ञान स्वरूप अनादि तमारुं ते लीधुं तमे ताणी,
जुओ, अज्ञानदशा रीसावी, जातां काण न आणी!

हे नाथ, आपका अनादिकालीन ज्ञानस्वरूप, जो कि अनंत कर्मों के नीचे दबा हुआ पड़ा था, उसको आप ने खींच निकाला [लीधुं तमे ताणी] बाहर! और उधर देखिये, ज्ञानदशा को देखकर अज्ञानदशा को रीस आ गयी! वह चली गई.... फिर भी आप ने शोक नहीं किया [काण न आणी]

सर्वप्रथम आपका अज्ञान-दोष दूर हुआ। प्रभो, आप सर्वज्ञ हो गये। वह बेचारी अज्ञानता चली गई....

अनादिकाल से जो आपके संग रही थी, आपकी आँखों में आँसू भी नहीं आये, आप ने शोक भी नहीं किया! जब कि वह अज्ञानता अब कभी भी आपके पास आनेवाली नहीं है।

निद्रा सुपन जागर उजागरता तुरिय अवस्था आवी,
निद्रा-सुपनदशा रीसाणी जाणी न नाथ! मनावी....

हे नाथ, अवस्थायें-निद्रा, स्वप्न, जागर और उजागर में से चौथी [तुरिय] अवस्था आपको प्राप्त हुई, इससे निद्रा, स्वप्न और जागरदशा रुठ गई। आपने चार सेविकाओं में से एक को ही रखी, इससे तीन को रीस आ गई, फिर भी उनको मनाने का आपने प्रयत्न नहीं किया, जाने दी उन तीनों को।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतन, इन चार अवस्थाओं को समझ ले पहले।

१. निद्रा : भव्य जीव हो या अभव्य जीव हो, उन सभी जीवों की मिथ्यात्वयुक्त अनादिकालीन अज्ञान-दशा।

२. स्वप्न : जब तक मोक्ष के अनुकूल भाव नहीं जगे।

३. जागर : मोक्ष-पुरुषार्थ में सतत जागृति।

४. उजागरता : आत्मा की आत्मभाव में सदैव संपूर्ण जागृति।

जो सर्वज्ञ-वीतराग होते हैं, उनको चौथी उजागर-दशा होती है। यह अवस्था प्राप्त होने पर, पूर्व की तीन अवस्थायें नहीं रहती हैं। अनादिकाल से निद्रा और स्वप्न अवस्था तो आत्मा के साथ लगी हुई हैं। जब 'जागरदशा' आती हैं, तब निद्रा और स्वप्न-दशा चली जाती हैं। 'उजागरदशा' आने पर 'जागर' दशा भी चली जाती है।

समकित साथे सगाई कीधी सपरिवारशुं गाढी,
मिथ्यामति अपराधण जाणी घरथी बाहिर काढी....

हे भगवंत! आपने मिथ्यात्व [मिथ्यामति] को अपराधी समझा और उसको आत्मघर से बाहर निकाल [काढी] दिया। आपने समकित [सम्यग्दर्शन] के साथ नाता [सगाई] जोड़ा [कीधी], संबंध बाँध लिया। वह भी अकेले समकित के साथ नहीं, समकित के पूरे परिवार के साथ नाता जोड़ लिया।

समकित के परिवार को भी पहचान ले! पहला है आस्तिक्य, दूसरा है संवेग, तीसरा है निर्वेद, चौथी है अनुकंपा और पाँचवा है, उपशम। यह मुख्य परिवार है।

कहने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा को क्षायिक समकित प्राप्त हुआ तब मिथ्यात्व का समूल उच्छेद हो गया।

हास्य अरति रति शोक दुगंछा, भय पामर करसाली,
नोकषाय, श्रेणिजग चढ़ता श्वान तणी गति झाली....

हे जिनेश्वर, बेचारे नोकषाय! आपने हास्य, रति, अरति, शोक, जुगुप्सा और भय.... इनको पहले ही कमजोर [करसाली] कर दिये थे, जब आपने क्षपकश्रेणिरूप हाथी पर आरोहण कर दिया, तब वे पामर नोकषाय कुत्ते [श्वान] की तरह दूम दबा कर भागने लगे [गति झाली]!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यहाँ योगीराज ने नौ नोकषाय में से ६ नोकषाय का नाश बताया है। उन छः नोकषायों का परिचय दे दूँ।

१. हास्य = हँसना, २. रति = खुश होना, ३. अरति = नाखुश होना, ४. शोक = चिन्ता करना, रोना, ५. दुगंछा = घृणा करना, ६. भय

क्षपकश्रेणि में चढ़ने से पूर्व ही परमात्मा ने इन नोकषायों को निर्बल कर दिये होते हैं। जब वे क्षपकश्रेणि शुरु करते हैं, तब ये नोकषाय नष्ट हो जाते हैं।

पुराने सेवकों पर भगवान को जरा भी दया नहीं आयी! खदेड़ दिये उनको!

इन नो-कषायों को कुत्ते की उपमा दी है, श्री आनन्दघनजी ने! बहुत अच्छी उपमा दी है! वास्तव में ये नो-कषाय कुत्ते जैसे ही हैं!

राग-द्वेष अविरतिनी परिणति ए चरणमोहना योधा,
वीतराग-परिणति परिणमतां, उठी नाठा बोधा....

हे भगवंत, आप में ज्यों वीतरागपरिणति आयी, आपकी आत्मा वीतराग-अवस्था में रूपान्तरित हुई त्यों ही 'चारित्र मोहनीय' कर्म के सैनिक [योधा] राग, द्वेष और अविरति की परिणति.... स्वयं ही भाग गये! चूँकि वे सावधान [बोधा] हो गये थे! 'अब यहाँ अपनी कुछ चलनेवाली नहीं है,' समझ गये थे वे।

सभी कषाय [क्रोध-मान-माया-लोभ] नष्ट हो गये, यानी 'चारित्र-मोहनीय कर्म' का दोष दूर हो गया और भगवान वीतराग बन गये।

वेदोदय कामपरिणामा काम्यकर्म सहु त्यागी,
निःकामा करुणारससागर, अनंत चतुष्क पद पागी....

हे जिनेन्द्र! वेदोदय से जो कामवासना की इच्छा पैदा होती हैं, उनका और मनःकामना से जो कार्य किये जाते हैं [काम्य कर्म], उनका आपने त्याग कर दिया! आप निष्कामी बन गये, करुणा के सागर बन गये और चार अनंत आपके चरणों में आकर गिरे! [पदपागीउचरणों में आकर पड़नेवाला]

चेतन, यहाँ 'वेद' शब्द का अर्थ ऋग्वेद वगैरह नहीं करने का है। वेद यानी वासना। तीन प्रकार के वेद बताये गये हैं, शास्त्रों में। पुरुष वेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद!

- पुरुषवेद के उदय से स्त्री-संभोग की इच्छा होती है, पुरुष को।
- स्त्रीवेद के उदय से पुरुष-संभोग की इच्छा होती है, स्त्री को।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- नपुंसक के उदय से स्त्री संभोग और पुरुष संभोग-दोनों प्रकार की इच्छा पैदा होती है।

'कामा-परिणामा' यानी कामेच्छायें। परमात्मा की सभी कामेच्छायें छूट गई। वासनाजन्य सभी कार्य भी छूट गये। अब कोई कामना नहीं रहीं परमात्मा में। वे निष्कामी बन गये। करुणाभाव-करुणा के महासागर बन गये।

चार प्रकार के 'अनन्त' उन्होंने पा लिये-

- अनन्त ज्ञान,
- अनन्त दर्शन,
- अनन्त चारित्र,
- अनन्त वीर्य,

दान-विघन बारी सहु जनने अभयदान-पददाता,
लाभ-विघन जगविघन निवारक! परम लाभ-रसमाता

[दानविघन = दानान्तराय कर्म, लाभविघन = लाभान्तराय कर्म]

हे नाथ! आपने 'दानान्तराय' कर्म को दूर [वारी] किया। आपने सभी जीवों को अभयदान दिया। आप अभयदान-पद के दाता बने। वैसे ही आपने लाभान्तराय कर्म को नष्ट किया। आपने जगत के अन्तरायों का भी निवारण किया। आप विश्व विघ्ननिवारक बने? आपको परम लाभ [मोक्ष] प्राप्त हुआ, आप मोक्षसुख में मस्त हैं।

वीर्यविघन पंडितवीर्ये हणी पूरण पदवी-योगी,
भोगपभोग दोय विघन निवारी पूरण भोग-सुभोगी....

हे जिनेश्वर, आपने अपूर्व वीर्योल्लास से [पंडित वीर्ये] वीर्यान्तराय [वीर्यविघन] कर्म का नाश किया [हणी] और पूर्ण पदवी [मोक्ष की] के योगी बने। भोगान्तराय कर्म और उपभोगान्तराय कर्म दोनों अन्तरायों को दूर कर आप पूर्ण भोग [मोक्षसुख] के भोगी बने।

इस प्रकार योगीराज ने परमात्मा, कौन-कौन से अट्ठारह दोषों से मुक्त होते हैं-यह लाक्षणिक शैली में बता दिया है। 'परमात्मा अट्ठारह दोषों से रहित होते हैं-' और 'जो आत्मा अट्ठारह दोषो से मुक्त हो, वही परमात्मा है,' इस बात को स्पष्ट किया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ए अढार दूषण वरजित तनु, मुनिजन-वृन्दे गाया,
अविरति रूपक दोष-निरुपण, निर्दूषण मन भाया....

'हे नाथ, इस प्रकार अट्ठारह दोषों [दूषण] से रहित [वरजित] शरीरवाले [तनु=शरीर] आपके, मुनिवरों के समूह [वृन्द] ने गुण गाये हैं। 'रूपक' अलंकार से, अविरति आदि दोषों का वर्णन [निरुपण] करके, दोषरहित आप मेरे मन को भा गये हो, मुझे प्रिय लगे हो।'

चेतन, अब तुझे क्रमशः ये अट्ठारह दोष बताता हूँ-

१. अज्ञान, २. निद्रा, ३. स्वप्न, ४. जागरदशा, ५. मिथ्यात्व, ६. हास्य, ७. रति, ८. अरति, ९. शोक, १०. भय, ११. दुगंछा, १२. स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, १३. राग-द्वेष-अविरति, १४. दानान्तराय, १५. लाभान्तराय, १६. लोभान्तराय, १७. उपभोगान्तराय, और १८. वीर्यान्तराय.

इन १८ दोषों से मुक्त परमात्मा सभी के मन में भा जायें-यह स्वाभाविक है।

इणविध परखी मन विसरामी जिनवर गुण जे गावे.
दीनबंधुनी महेर नजरथी आनंदघन-पद पावे....

इस प्रकार [इणविध] देवतत्त्व की परीक्षा कर [परखी] मन के विश्रामरूप जिनेश्वर भगवंत के जो मनुष्य गुण गाता है, उस पर दीनबन्धु परमात्मा की महेर नजर [कृपादृष्टि] पड़ती है। परमात्मा की कृपादृष्टि से मनुष्य आनन्दघन-पद [मोक्ष] पा लेता है।

चेतन, परमात्मतत्त्व की परीक्षा करने की पद्धति बतायी आनन्दघनजी ने। १८ दोषों से मुक्त ही हमारे परमात्मा हैं। जिन में ये दोष कम-ज्यादा होते हैं, वे हमारे परमात्मा नहीं हो सकते। तीर्थंकर परमात्मा वैसे दोषरहित.... निर्दोष होते हैं। उनकी भक्तिभाव से आराधना कर लेनी चाहिए।

- **प्रियदर्शन**

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री मुनिसुव्रतस्वामी

स्तुति

जगन्महामोह-निद्रा-प्रत्यूष-समयोपमम्।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशना-वचनं स्तुमः ।।

प्रार्थना

बीसवें मुनिसुव्रत स्वामी प्रभुवर हैं सब के उपकारी
पद्मानंदन प्रसन्नता दे जाप जपे जो नरनारी।
इक अश्व को प्रतिबोध के कारण रात में कितना विहार किया
जो ध्यायें मनवांछित पाये, शरणागत को तार दिया ।।

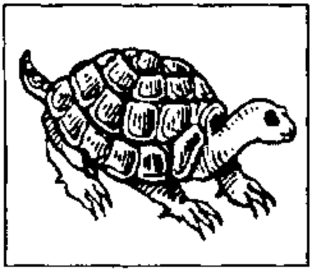

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री मुनिसुव्रतस्वामी

१	माता का नाम	*पद्मावती रानी*
२	पिता का नाम	*सुमित्र राजा*
३	च्यवन कल्याणक	*श्रावण शुक्ला १५/राजगृही*
४	जन्म कल्याणक	*ज्येष्ठ कृष्णा ८/राजगृही*
५	दीक्षा कल्याणक	*फाल्गुन शुक्ला १२/राजगृही*
६	केवलज्ञान कल्याणक	*फाल्गुन कृष्णा १२/राजगृही*
७	निर्वाण कल्याणक	*ज्येष्ठ कृष्णा ९/सम्मेतशिखर*
८	गणधर	*संख्या १८ प्रमुख मल्लि*
९	साधु	*संख्या ३० हजार प्रमुख मल्लि*
१०	साध्वी	*संख्या ५० हजार प्रमुख पुष्पवती*
११	श्रावक	*संख्या १ लाख ७२ हजार*
१२	श्राविका	*संख्या ३ लाख ५० हजार*
१३	ज्ञानवृक्ष	*चंपक*
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	*वरुण*
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	*नरदत्ता*
१६	आयुष्य	*३० हजार वर्ष*
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	*कछुआ*
१८	च्यवन किस देवलोक से?	*अपराजित [अनुत्तर]*
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	*श्रीवर्मा के भव में*
२०	पूर्वभव कितने?	*९*
२१	छद्मस्थ अवस्था	*११ महीना*
२२	गृहस्थ अवस्था	*२२ हजार ५०० वर्ष*
२३	शरीर-वर्ण (आभा)	*श्याम*
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	*अपराजिता*
२५	नाम-अर्थ	*गर्भ में आने पर माँ को मुनि की तरह सुव्रत पालन की इच्छा जगी।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **सांख्यदर्शन मानता है-'विगुण आत्मा न बंधती है, न मुक्त होती है। आत्मा कमलपत्रवत् निर्लेप है।'**
- **वेदान्तदर्शन मानता है-'आत्मा नित्य है।'**
- **बौद्धदर्शन मानता है-'आत्मा क्षणिक है।'**
- **चार्वाकदर्शन मानता है-'आत्मा, चार भूतों से अतिरिक्त है ही नहीं।'**
- **जिसको आत्मा का शुद्ध स्वरूप पाना है, जिसको चित्तसमाधि पाना है, उनको भिन्न-भिन्न मतों की बातों में उलझना नहीं है। दुनिया को भूलना है, आत्मध्यान में डूबना है।**
- **'द्रव्यदृष्टि से आत्मा नित्य है, पर्यायदृष्टि में आत्मा अनित्य है', यह विवेक धारण कर, मुमुक्षु को आत्मध्यान में लीनता प्राप्त करनी चाहिए।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : २१ श्री मुनिसुव्रतस्वामी स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, आनन्द!

जिनको अपने हृदयमंदिर में बिराजित करते हैं और जिनकी आराधना-उपासना करनी है, जिनका सहारा लेकर आत्मा का विशुद्धीकरण करना है, उन परमात्मा का वास्तविक स्वरूप तो हमें ज्ञात होना ही चाहिये। श्री मल्लिनाथ भगवंत की स्तवना में कवि ने कितना अच्छा स्वरूपदर्शन करवाया!

आस्तिकदर्शन सभी परमात्मा का अस्तित्व तो मानते ही हैं, परंतु स्वरूपदर्शन में भिन्नता है। वैसे, आत्मा का अस्तित्व तो चार्वाकदर्शन के अलावा सभी भारतीयदर्शन मानते हैं, परंतु आत्मस्वरूप की मान्यता में भिन्नता है। भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी की स्तवना के माध्यम से कवि ने भारतीयदर्शनों के आत्मविषयक मन्तव्य प्रामाणिक ढंग से बताई है और उन मान्यताओं की अपूर्णता भी बता दी है। अंत में, इन मतभेदों से परे रह कर आत्मध्यान करने की प्रेरणा दी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुनिसुव्रत जिनराय! एक मुझ विनति निसुणो....
आतम-तत्त्व कयुं जाणु जगद्गुरु! एह विचार मुझ कहियो,
आतम-तत्त्व जाण्या विण चित्त-समाधि नवि लहियो.... मुनि. १
कोई अबंध आतमतत्त माने, किरिया करतो दीसे,
किरियातणु फल कहो कुण भोगवे, इम पूछ्युं चित्त रीसे....मुनि. २
जड़-चेतन ए आतम एक ज स्थावर जंगम सरिखो,
सुख-दुःख संकर दूषण आवे, धित्त विचारी जो परीखो.... मुनि. ३
एक कहे, 'नित्य ज आतमतत्त, आतम दरिसण लीनो,
कृतविनाश अकृतागम-दूषण नवि देखे मतिहीणो.... मुनि. ४
सौगतमत-रागी कहे वादीः 'क्षणिक ए आतम जाणो,
बंध-मोक्ष-सुख दुःख नवि घटे, एह विचार मन आणो.... मुनि. ५
भूत चतुष्क-वर्जित आतमतत्त, सत्ता अलगी न घटे,
अंध शकट जो नजरे न देखे, तो शु कीजे शकटे?.... मुनि. ६
एम कनेक वादिमतविभ्रम संकट पडियो न लहे,
चित्तसमाधि ते माटे पूछुं, तुम विण तत्त कोई न कहे.... मुनि. ७
वलतु जगगुरु इणीपरे भाखे पक्षपात सब छंडी,
राग-द्वेष-मोह-पख वर्जित आतमशुं रढ़ मंडी.... मुनि. ८
आतमध्यान करे जो कोउ, सो फिर इण में नावे,
वागजाल बीजुं सहु जाणे एह तत्त्व चित्त चावे.... मुनि. ९
जिणे विवेक धरी ए पख ग्रहियो, ते तत्त्वज्ञानी कहिये,
श्री मुनिसुव्रत कृपा करो तो आनंदघन-पद लहिये.... मुनि. १०

'हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र, मेरी एक विनंती ध्यान से सुनें-

हे जगद्गुरु, आत्मतत्त्व को मैं कैसा मानूँ? शुद्ध आत्मा तत्त्वरूप से कैसी है, यह [एह] विचार मुझे बताने की कृपा करें। चूँकि आत्मतत्त्व को जाने बिना [विण] चित्त को निर्मल समाधि नहीं मिलती [नवि लहियो] है।'

दुनिया में आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय में अलग-अलग मान्यतायें देखने में आती हैं। इसलिए आत्मसाधक मनुष्य उलझ जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोई अबंध आतमतत्त्व माने, किरिया करतो दीसे....

सांख्यदर्शन मानता है-**'विगुणो न बध्यते, न मुच्यते।** विगुण आत्मा न बंधती है, न मुक्त होती है। आत्मा कमलपत्रवत् निर्लेप है।' फिर भी इस बात को माननेवाले अपने संप्रदाय के अनुसार क्रिया करते हुए दिखते हैं। इनको पूछा कि-

किरिया तणु फल कहो कुण भोगवे? हम पूछ्युं, चित्त रीसे

'आप जो क्रिया करते हो, उसका [तणु] फल कौन भोगेगा? जब आत्मा बंधती नहीं है और मुक्त ही है, तो फिर क्रिया क्यों करनी चाहिये, और क्रिया करते हो, तो उसका फल कौन भोगेगा? क्रिया से कर्म तो बंधते ही हैं! आप कहते हो कि आत्मा को कर्म बंधते नहीं! तो फिर क्रियाजन्य कर्म कहाँ जायेगा? कौन उस कर्मफल को भोगेगा?'

ऐसा प्रश्न पूछने पर उनको रीस आ गई! दुनिया में सही बात पूछने पर भी कुछ लोग नाराज हो जाते हैं।

यदि सांख्यदर्शन वाले इस बात को अनेकान्त दृष्टि से कहते तो मान्य हो सकती थी। सत्त्व-रजस्-तमस् भावों से आत्मायें मुक्त हो जाती हैं, उनको कर्मबंध नहीं होता है। परंतु जो सत्त्व-रजस्-तमस् भावों से भरे हुए हैं, वे तो कर्मबंध करते ही हैं। जीवों की अपेक्षा से उन्होंने सिद्धांत नहीं बनाया, इसलिए उनका सिद्धांत मान्य नहीं हो सकता है।

एक दूसरा मत-

जड़-चेतन ए आतम एक ज, स्थावर-जंगम सरिखो....!

'जड़ भी आत्मा है, चेतन भी आत्मा है.... सब एक ही आत्मा है! स्थिर और गतिशील.... सभी जीव समान है!'

वेदान्तदर्शन की यह मान्यता है। **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** एक आत्मा ही सत्य है, बाकी सब मिथ्या है। इसका अर्थ-दुनिया में एक मात्र आत्मा ही है.... जो कुछ भी है, वह आत्मा है! और सभी आत्मायें समान हैं।'

इस मान्यता को दोषित बताते हुए कहते हैं-

सुख-दुःख 'संकर'-दूषण आवे, चित्त विचारी जो परीखो....

इस मान्यता पर मन में विचार करोगे और तर्क के कसौटी-पाषाण पर परीक्षा करोगे तो **'संकर'** दोष दिखायी देगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'संकर-दोष' किसे कहते हैं, यह बताता हूँ-

सुख का कारण है, आत्मा के चेतना वगैरह गुण और दुःख का कारण है, जड़ कर्मों का संयोग। यदि जड़ और चेतन को भिन्न नहीं मानें तो सुख-दुःख के सही कारण कैसे ज्ञात होंगे? सुखी होने की इच्छावाला क्या करेगा? उसको कोई स्पष्ट उपाय नहीं मिलेगा! पूरा घोटाला हो जायेगा। इस घोटाले को 'संकर-दोष' कहते हैं।

अनेकान्तदृष्टि से यदि यह प्रतिपादन होता तो संकरदोष नहीं आता। पूर्ण आत्माओं की अपेक्षा से यह कथन सही है।

'सच्चिदानन्दपूर्णेन पूर्णं जगदवेक्ष्यते।'

पूर्ण आत्मा सारे जगत को पूर्ण देखती है। अपूर्ण-पूर्ण का, जड़-चेतन का.... छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं रहता उनके लिये। उन पूर्णात्मा के लिये सुख-दुःख का कोई प्रश्न नहीं रहता है, चूँकि वे स्वयं सुखपूर्ण.... आनन्दपूर्ण होते हैं।

यही वेदान्तदर्शन की दूसरी मान्यता बताते हैं-

एक कहे नित्य ज आतम तत्त, आतम-दरिसण लीनो....

आत्मदर्शन में लीन होने की इच्छावाला वेदान्ती [एक] कहता है-'आत्मा नित्य है।' आत्मदर्शन में लीन होने की इच्छा सराहनीय है, परंतु आत्मा को 'नित्य' मानने की बात, जो कि आग्रह से करते हैं, वह गलत है। आत्मा को सर्वथा नित्य मानने से दो दोष आते हैं। यानी यह मान्यता दोषयुक्त है, निर्दोष नहीं है। यह बता रहे हैं-

कृतविनाश अकृतागभ दूषण, नवि देखे मतिहीणो....

दार्शनिकों ने 'नित्य' की परिभाषा 'अपरिवर्तनशील' की है। जो नित्य होता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। जिसमें परिवर्तन होता है, वह नित्य पदार्थ नहीं होता।

एक मनुष्य ने बहुत धर्माराधना की। उसने अच्छे पुण्यकर्म उपार्जन किये, वह मरकर देवगति में जाना चाहिए। यदि 'आत्मा' को नित्य मानें तो मनुष्य मरकर देव नहीं बन सकता। नित्य आत्मा में परिवर्तन संभव नहीं होता! तो फिर उसने जो धर्माराधना की वह व्यर्थ चली जायेगी! यह है **'कृतविनाश'** नाम का दोष। जो धर्म किया उसका विनाश हो जायेगा। यानी उस का फल नहीं मिलेगा।

और यहाँ पर एक मनुष्य बहुत दुःखी है। पापों से दुःख आते हैं। उस मनुष्य को दुःख कैसे मिले? पूर्वजीवन में उसने पाप किये थे, इसलिए इस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवन में दुःख मिले।' ऐसा मानने पर तो आत्मा में परिवर्तन मानना पड़ेगा! यदि परिवर्तन [अनित्यता] नहीं मानते हैं, तो मानना पड़ेगा कि पाप नहीं किये फिर भी दुःख आये! इसको **'अकृतागम'** दोष कहते हैं।

'आत्मा नित्य ही है'-ऐसा एकान्तवादी प्रतिपादन गलत है। यदि अनेकान्त दृष्टि से-'आत्मा नित्य भी है, अनित्य भी है,' ऐसा प्रतिपादन करते तो उपर्युक्त दोष नहीं आते। चूँकि द्रव्यार्थिक नय से आत्मा अनित्य है। परन्तु अल्प बुद्धिवाले [मतिहीणो] कैसे समझें?

अब बौद्धदर्शन की मान्यता बताते हैं-

सौगत मतरागी कहे वादी 'क्षणिक ए आतम जाणो....'

सौगत मत [बौद्धदर्शन] बाला बुद्धिमान [वादी] पुरुष कहता है, 'आत्मा क्षणिक ही है।'

बौद्धदर्शन कहता है-'यत् सत् तत् क्षणिकम्' जो सत् है, वह क्षणिक है! आत्मा सत् है, इसलिए क्षणिक है! श्री आनन्दघनजी बौद्धवादी को कहते हैं-

बंध-मोक्ष सुख-दुःख नवि घटे एह विचार मन आणो....

यदि आत्मा को अनित्य-क्षणिक मानते हो, तो कर्म का बंध और कर्मों से मोक्ष कैसे होगा? चूँकि पहली क्षण जिसने पाप किया, दूसरी क्षण वह नहीं है, वह पाप करनेवाला तो मर गया! हत्या करनेवाला मर जाता है, सजा भोगनेवाला दूसरा होता है! धर्म करनेवाला मर जाता है, सुख भोगने वाला दूसरा होता है!

आत्मा को क्षणिक ही मानने पर ये सारे विसंवाद पैदा होते हैं! अनेकान्तदृष्टि से यानी पर्यायार्थिक नय से आत्मा को क्षणिक मानने पर बंध-मोक्ष के एवं सुख-दुख के विसंवाद पैदा नहीं होते हैं। परन्तु बौद्धदर्शन एकान्तवादी दर्शन है, वह अनेकान्तवाद को नहीं मानता है।

अब **'चार्वाक'** मत की मान्यता बताते हैं-

भूत, चतुष्क-वर्जित आतम-तत्त सत्ता अलगी न घटे,

पृथ्वी, पानी, वायु और अग्नि, ये चार 'भूत' कहे जाते हैं। चार्वाकदर्शन कहता है-इन चार भूत के अलावा स्वतंत्र [अलगी] कोई आत्मतत्त्व नहीं है।' चार्वाक तो आत्मा के अस्तित्व को ही नहीं मानता है। श्री आनन्दघनजी उनको कहते हैं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंध शकट जो नजरे न देखे, तो शुं कीजे शकटे?

अन्ध मनुष्य के सामने बैलगाड़ी [शकट] खड़ी है, फिर भी वह नहीं देख सकता है-तो क्या बैलगाड़ी नहीं हैं? अन्धा देखता नहीं है, इतने मात्र से बैलगाड़ी के अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता है।

चार्वाक, आत्मा को नहीं देख सकता है। दुराग्रह-कदाग्रह का अन्धापन है उसको।

श्री आनन्दघनजी परमात्मा को कहते हैं-

एक अनेक वादीमत-विभ्रम संकट पड़ियो न लहे,
चित्त-समाधि, ते माटे पूछुं तुम विण तत्त्व कोई न कहे....

हे भगवंत, इस प्रकार [एम] अनेक एकान्तवादियों के मतों से उत्पन्न मतिभ्रमणारूप संकट में फँसा हुआ मुमुक्षु चित्तसमाधि नहीं पाता है। इसलिए आप से पूछता हूँ। आप के बिना सही आत्मस्वरूप कोई नहीं कहता है।

यहाँ श्री चिदानन्दजी याद आते हैं। उन्होंने कहा है-

मारग साचा कौन बतावे?
जाकुं जाय के पूछिये वे तो अपनी अपनी गावे!

इस दुनिया में मोक्ष का सच्चा मार्ग कौन बताता है? जिस-जिस को रास्ता पूछते हैं, वे सभी अपनी-अपनी बात बताते हैं। इससे मुमुक्षु आत्मा उलझन में फँस जाती है। उसके मन में समता-समाधि नहीं रहती है।

मुमुक्षु की प्रार्थना सुनकर भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी कहते हैं-

वलतु जगगुरु एणी परे भाखे, पक्षपात सब छंडी,
राग-द्वेष-मोहपख वर्जित आतमशु रढ़ मंडी....
आतमध्यान करे जे कोऊ सो फिर इण में नावे....

सभी प्रकार का पक्षपात जिन्होंने छोड़ दिये [छंडी] हैं और जो राग-द्वेष एवं मोह के पक्ष से मुक्त [वर्जित] हैं-वैसे जगद्गुरु मुनिसुव्रतस्वामी ने इस प्रकार [एणी परे] कहा :

रागरहित, द्वेषरहित मोहरहित और पक्षरहित बनकर, एक मात्र आत्मा में दृढ़तापूर्वक [रढ़] लीन बनो! जो कोई साधक मनुष्य आत्मध्यान करेगा, वह पुनः मतिभ्रमणा में [इण में] फँसेगा नहीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतन, कितनी अच्छी बात कही है, योगीराज ने! जिसको आत्मा का शुद्ध स्वरूप पाना है, जिसको चित्तसमाधि पाना है, उनको भिन्न-भिन्न मतों की बातों में उलझना नहीं है, उनको तो आत्मध्यान में ही डूबना है। दुनिया को भूलना है' आत्मध्यान में डूबना है। मुमुक्षु को वादविवादों से दूर रहना चाहिए।

वाग्जाल बीजुं सहु जाणे, एह तत्त्व चित्त चावे....

सभी वाद-विवादों को [बीजुं सहु] मुमुक्षु वाणी विलास [वाग्जाल] जानता है। एक मात्र आत्मतत्त्व का ही मन में चिन्तन करता [चावे] है।

अनेकान्तदृष्टि से आत्मा का 'नित्यानित्य' स्वरूप जान कर विशुद्ध आत्मस्वरूपमें निमग्न होना चाहिए। चर्चा करने से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्राप्त नहीं होता है। आत्मध्यान करने से आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। यह विवेक है।

जेणे विवेक धरी ए पख ग्रहियो ते तत्त्वज्ञानी कहिये,
श्री मुनिसुव्रत कृपा करो तो आनन्दघन-पद लहिये....

वही तत्त्वज्ञानी है कि जो विवादों से पर होकर, आत्मध्यान करने का पक्ष [बात] ग्रहण करता है।

'द्रव्यदृष्टि से आत्मा नित्य है, पर्यायदृष्टि से आत्मा अनित्य है,' यह विवेक धारण कर, मुमुक्षु को आत्मध्यान में लीनता प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा मुमुक्षु ही सही रूप में तत्त्वज्ञानी है।

हे मुनिसुव्रतस्वामी! यदि आप कृपा करें और मुझे ऐसा तत्त्वज्ञानी बना दें.... तो आनन्दघन-पद [मोक्ष] मैं भी पा लूँ!

चेतन, इतनी बातें समझ लेना कि १. आत्मा है, २. आत्मा नित्य है, ३. आत्मा कर्म बाँधती है, ४. आत्मा कर्म के बंधन तोड़ सकती है, ५. आत्मा कर्म भोगती है और ६. कर्म के बंधन तोड़ने के उपाय भी है।

आत्मा लोकव्यापी भी है और शरीरव्यापी भी है। आत्मा एक है और अनेक भी है। यह सब जान कर आत्मविशुद्धि का प्रयत्न करना चाहिए! जीवन चर्चाओं में, वाद-विवादों में ही पूरा नहीं हो जाना चाहिए।

तू आत्मस्वरुप की रमणता करने का संकल्प करें-यही मंगलकामना।

- प्रियदर्शन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री नमिनाथ भगवंत

स्तुति

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि, निर्मलीकार-कारणम्।
वारिप्लवा इव नमेः पान्तु पाद-नखांशवः ।।

प्रार्थना

विजयराजा-वप्रा रानी के कुलदीपक नमिनाथ प्रभु
मिथिला के राजा तीर्थंकर सर पर रख दो हाथ प्रभु!
जब तक कर्म छूटे ना सारे कमल पत्र सा जीवन जीऊँ
प्रभुकृपा की सुधा के प्याले भक्ति में हो मगन पीऊँ ।।

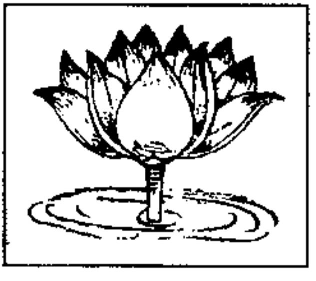

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री नमिनाथ भगवंत

१	माता का नाम	वप्रा रानी
२	पिता का नाम	विजय राजा
३	च्यवन कल्याणक	आश्विन शुक्ला १५/मिथिला
४	जन्म कल्याणक	श्रावण कृष्णा ८/मिथिला
५	दीक्षा कल्याणक	आषाढ़ कृष्णा ९/मिथिला
६	केवलज्ञान कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
७	निर्वाण कल्याणक	वैशाख कृष्णा १०/सम्मेतशिखर
८	गणधर	संख्या १७ प्रमुख शुभ
९	साधु	संख्या २० हजार प्रमुख शुभ
१०	साध्वी	संख्या ४१ हजार प्रमुख अनीला
११	श्रावक	संख्या १ लाख ७० हजार
१२	श्राविका	संख्या ३ लाख ४८ हजार
१३	ज्ञानवृक्ष	बकुल
१४	यक्ष [अधिष्ठायक देव]	भ्रुकुटि
१५	यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]	गांधारी
१६	आयुष्य	१० हजार वर्ष
१७	लंछन [चिह्न-Mark]	नीलकमल
१८	च्यवन किस देवलोक से?	प्राणत [१० वाँ]
१९	तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	सिद्धार्थ के भव में
२०	पूर्वभव कितने?	३
२१	छद्मस्थ	अवस्था ९ महीना
२२	गृहस्थ अवस्था	७ हजार ५०० वर्ष
२३	शरीर-वर्ण [आभा]	सुवर्ण
२४	दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	देवकुरू
२५	नाम-अर्थ	गर्भ में आने पर विरोधियों के भी झुक जाने से।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **शास्त्रसम्मत शैली में, अनेकान्तदृष्टि से योगीराज ने छह दर्शनों का सामंजस्य-संवादिता स्थापित की है।**
- **यहाँ इस स्तवना में वैदिकदर्शन और बौद्धदर्शन को तो पूर्णपुरुष में समाविष्ट किये ही हैं, चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन को भी योगीराज ने पूर्णपुरुष में समावेश किया है।**
- **दो पैरों में सांख्य और योग का, दो हाथों में बौद्ध और मीमांसक का, पेट पर चार्वाक का और मस्तक पर जैनदर्शन का न्यास [स्थापन] करना चाहिए।**
- **श्री जिनेश्वरदेव में सभी दर्शनों का समावेश हो सकता है, चूँकि वे सागर के समान विशाल हैं।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : २२ श्री नमिनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, आनन्द!

- आत्मा 'नित्य' है, या 'अनित्य'?
- आत्मा 'एक' है, या 'अनेक'?
- आत्मा 'विश्वव्यापी' है, या 'शरीरव्यापी'?
- आत्मा जड़ है, या चेतन?
- आत्मा है, या नहीं?

इन बातों को लेकर, जैन और वैदिकों के बीच, जैन और बौद्धों के बीच, जैन और चार्वाकों के बीच, वैदिक और बौद्धों के बीच, वैदिक और चार्वाकों के बीच.... अनेक शताब्दियों तक वाद-विवाद होते रहे! 'आत्मा' को वाद-विवादों में उलझा दी गई।

ऐसी उलझी हुई आत्मा को, वाद-विवादों से मुक्त करने के लिये ही इस स्तवना की रचना की गई हो-ऐसा लगता है। कोई भी दर्शन झूठा नहीं है-यह बात समझाने का संनिष्ठ प्रयास किया गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

षड् दरिसण जिनअंग भणीजे, न्यास षड़ग जो साधे,
नमि जिनवरना चरण-उपासक षड्दरिसन आराधे रे.... १
जिन सुरपादपपाय वखाणुं सांख्य जोग दोय भेदे रे,
आतमसत्ता विवरण करतां लहो दुग अंग अखेदे रे.... २
भेद-अभेद सौगत मीमांसक जिनवर दोय करी भारी रे,
लोकालोक अवलंबन भजीये गुरुगमथी अवधारी रे.... ३
लोकायतिक कुख जिनवरनी अंश विचारी जो कीजे रे,
तत्त्वविचार सुधारसधारा गुरुगम विण किम पीजे रे.... ४
जैन जिनेश्वर उत्तम अंग अंतरंग बहिरंगे रे,
अक्षरन्यासधरा आराधक आराधे धरी संगे रे.... ५
जिनवरमां सघलां दरिसण छे, दरिसणमां जिनवर-भजना रे,
सागरमां सघली तटिनी सही, तटिनीमां सागर भजना रे.... ६
जिनस्वरूप थई जिन आराधे ते सही जिनवर होवे रे,
भृंगी इलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे.... ७
चूर्णी भाष्य सूत्र निर्युक्ति वृत्ति परंपर-अनुभव रे,
समय पुरुषनां अंग कह्यां ए, जे छेदे ते दुर्भव रे.... ८
मुद्रा बीज धारणा अक्षर न्यास अरथ विनियोग रे,
जे ध्यावे ते नवि वंचिजे, क्रिया-अवंचक भोगे रे.... ९
श्रुत-अनुसार विचारी बोलुं सुगुरु तथाविध न मिले रे,
किरिया करी नवि साधी शकिये, ए विषवाद चित्त सवले रे....१०
ते माटे उभो कर जोडी जिनवर आगल कहीये रे,
समय चरण सेवा शुद्ध देखो जेम आनन्दघन लहीये रे.... ११

चेतन, प्राचीन भारत में आत्मा और मोक्ष के विषय में भिन्न-भिन्न विचारधारायें प्रचलित थी। उन सभी विचारधाराओं को ६ विभागों में विभाजित की गई, और 'षड्-दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। ये ६ विभाग दो प्रकार से किये गये हैं।

पहला प्रकार १. सांख्य, २. योग, ३. नैयायिक, ४. वैशेषिक, ५. पूर्व मीमांसा, ६. उत्तर मीमांसा। इन छह दर्शनों का मूल है वेद। वेदों को लेकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो भिन्न-भिन्न मान्यतायें चली, उन मान्यताओं के ये छह विभाग हैं।

दूसरा प्रकार : १. सांख्य, २. योग, ३. मीमांसा, ४. बौद्ध, ५. चार्वाक और ६. जैन। श्री आनंदघनजी ने जिस षड्दर्शन की बात इस स्तवना में की है, वह दूसरा प्रकार है। वेदजन्य छह दर्शनों का समावेश उन्होंने सांख्य, योग और मीमांसा में कर दिया और चार्वाक, बौद्ध एवं जैनदर्शन का समावेश किया। जैसे आस्तिक दर्शनों का परस्पर का कलह शान्त करना था, वैसे आस्तिक-नास्तिक का भी झगडा मिटाना था। चार्वाकदर्शन नास्तिक दर्शन है। छह दर्शनों में इसलिए नास्तिक दर्शन [चार्वाक] का भी समावेश किया है।

शास्त्रसम्मत शैली में, अनेकान्तदृष्टि से योगीराज ने छह दर्शनों का सामंजस्य-संवादिता स्थापित की है। मोक्षमार्ग के साधक पुरुष के लिये यह संवादिता.... महान् तत्त्व है।

श्री जिनेश्वर देव के शरीर के साथ षड्दर्शनों को जोड़कर, सभी दर्शनों की उपयोगिता बतायी है।

षड् दरिसण जिन-अंग भणीजे, न्यास षडंग जो साधे रे
नमिजिनवरना चरण-उपासक षड्दर्शन आराधे रे....

'छह दर्शनों को जिनेश्वर के अंग कह सकते हैं। नमिनाथ जिनेन्द्र के चरणोपासक कि जो, जिनेश्वर के छह अंगों में छह दर्शनों का न्यास [स्थापना] कर सकते हैं, वे छह दर्शनों की आराधना कर सकते हैं।'

जिनेश्वर पूर्ण पुरुष हैं। उनका धर्मोपदेश पूर्ण होता है। उनका विश्वदर्शन भी पूर्ण होता है। यहाँ इस स्तवना में वैदिकदर्शन और बौद्धदर्शन को तो पूर्णपुरुष में समाविष्ट किये हैं, चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन का भी योगीराज ने पूर्णपुरुष में समावेश किया है! मात्र मनः कल्पना से नहीं, जैनशासन की शास्त्रदृष्टि से समावेश किया है।

जिन-सुरपादप-पाय वखाणुं सांख्य जोग दोय भेदे रे....

जिनेश्वर भगवंत कल्पवृक्ष [सुरपादप] समान हैं। उसके दो पैर हैं-सांख्यदर्शन और योगदर्शन।

आतम-सत्ता विवरण करतां लहो दुग अंग अखेदे रे....

वे दो पैर [अंग], जिनेश्वर को खड़े रहने के मजबूत अंग हैं, यह बात किसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भी झिझक [अखेदे] के बिना मान लो [कहो]। आत्मसत्ता का चिन्तन [विवरण] करते समय, सांख्य और योगदर्शन का कथन भी ध्यान में लेना चाहिए।

'ये तो मिथ्यादर्शन हैं, हम उन दर्शनों के माध्यम से आत्मसत्ता के विषय में कैसे सोचे?' ऐसा भय रखने की जरूरत नहीं है। ये दोनों दर्शन जिनेश्वर देव के दो पैर हैं!

जैनदर्शन जिस तत्त्व को आत्मा कहता है, सांख्यदर्शन उसको 'पुरुष' कहता है। जैनदर्शन जिस तत्त्व को 'कर्म' कहता है, सांख्यदर्शन उसको 'प्रकृति' कहता है। मात्र नाम का भेद है। नामभेद से तत्त्वभेद नहीं होता है।

योगदर्शन ने आत्मा को शुद्ध करने के लिये योग के आठ अंग बताये हैं। अशुद्ध आत्मा को शुद्ध करने की अच्छी प्रक्रिया बतायी गई है।

भेद-अभेद सुगत मीमांसक, जिनवर दोय कर भारी रे...
लोकालोक अवलंबन भजिये, गुरुगमथी अवधारी रे...

सुगत [बौद्ध] भेदवादी है, मीमांसक [वेदान्ती] अभेदवादी है। ये दो [बौद्ध और वेदान्ती] जिनेश्वर के बड़े हाथ [कर] हैं। लोकालोक के लिये ये दो हाथ आलंबन हैं। किस प्रकार ये आलंबन हैं - यह ज्ञानी गुरुजनों से जानना चाहिए।

बौद्धदर्शन हर पदार्थ को विशेष मानता है और 'क्षणिक' मानता है। वेदान्तदर्शन हर पदार्थ को एक-सामान्य मानता है और 'नित्य' मानता है। ये दोनों दर्शन परस्पर विरोधी हैं, परंतु जब ये जिनेश्वर के अंग [हाथ] बन जाते हैं, तब विरोध दूर हो जाता है और समन्वय स्थापित होता है।

प्रत्येक द्रव्य में स्थिर अंश होता है और अस्थिर अंश होता है। लोकालोक में जो भी द्रव्य हैं, उन सभी द्रव्यों में उत्पत्ति, स्थिति और नाश-ये तीन तत्त्व होते ही हैं। द्रव्य में स्थिति है, पर्याय में उत्पत्ति और नाश हैं। द्रव्य से आत्मा नित्य है, पर्याय से आत्मा अनित्य है। जैनदर्शन की दृष्टि में बौद्ध और मीमांसक के मत प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। जैनदर्शन संवादिता स्थापित करता है।

लोकायतिक कुख जिनवरनी, अंश विचारी जो कीजे रे
तत्त्वविचार सुधारसधारा, गुरुगम विण किम पीजे रे...?

'लोकायतिक' का अर्थ है, चार्वाकदर्शन। 'अंश विचारी' यानी नय दृष्टि से सोचा जाय तो चार्वाकदर्शन जिनेश्वर का पेट है! तत्त्वविचार रूप सुधारस की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धारा, ज्ञानी गुरु के समागम के बिना कैसे पी जाय? यानी 'चार्वाकदर्शन भी जिनेश्वर का पेट है-' यह तत्त्वविचार ज्ञानी गुरुदेव के अलावा कौन समझा सकता है? नास्तिक दर्शन भी एक अपेक्षा से जिनेश्वरों को मान्य है! यह बात जब गुरुदेवों से मुमुक्षु समझता है, तब उसको अमृतपान करने जैसा मधुर संवेदन होता है।

चेतन, चार्वाक दर्शन मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानता है। अनुमान प्रमाण, शास्त्रप्रमाण वगैरह प्रमाणों को नहीं मानता है। 'पेट' भी वैसा ही है न! पेट भी प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानता है। मात्र बातों से पेट नहीं भरता है! पेट को तो प्रत्यक्ष भोजन चाहिये। तृप्ति का अनुभव चाहिए!

'आत्मानुभव के बिना सब झूठा है...' एक अपेक्षा से ऐसा कहा जा सकता है। आत्मा की बातें करने से, चर्चा करने से कोई फायदा नहीं है। आत्मानुभव होना चाहिये। अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण है। आत्मानुभव से ही आत्मा को सच्ची तृप्ति होती है।

जैन जिनेश्वर वर उत्तम अंग, अंतरंग बहिरंगे रे...
अक्षरन्यास-धरा आराधक, आराधे धरी संगे रे...

जैनदर्शन, जिनेश्वरदेवों का अति उत्तम अंग है, यानी मस्तक है। अंतरंग यानी आध्यात्मिक, बहिरंग यानी शारीरिक। जैनदर्शन जिनेश्वर का शारीरिक दृष्टि से भी उत्तम अंग है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी उत्तम अंग है।

मस्तक की जगह जैनदर्शन को स्थापित करना चाहिए। और इस प्रकार, दो पैरों में सांख्य और योग का, दो हाथों में बौद्ध और मीमांसक का, पेट पर चार्वाक का और मस्तक पर जैनदर्शन का न्यास [स्थापना] करना चाहिए। उस-उस दर्शन के अक्षरों का न्यास करके पूर्ण पुरुष की आराधना करनी चाहिए।

चेतन, गाथा में 'आराधे धरी संगे रे...' ऐसा प्राचीन पुस्तक में छपा है, परन्तु मुझे यह ठीक नहीं लगता है 'आराधे धरी उमंगे रे...' ऐसा ठीक लगता है। प्राचीन हस्तप्रत से स्तवन लिखते समय भूल हो सकती है। पूर्ण पुरुष के शरीर में, दर्शन का अक्षरन्यास करनेवाला आराधक उमंग धारण करता हुआ, पूर्ण पुरुष की आराधना करता है।' अर्थ भी इस प्रकार ठीक लगता है।

जिनेश्वर जैसे पूर्ण पुरुष में सभी दर्शनों का न्यास करने से 'यह मिथ्यादर्शन और यह सम्यग्दर्शन', ऐसा भेद नहीं रहता है आराधक मनुष्य के मन में। राग-द्वेष की परिणति मंद-मंदतर होती जाती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिनवरमां सघलां दरिसण छे, दरिसणमां जिनवर भजना रे...
सागरमां सघली तटिनी सही, तटिनीमां सागर भजना रे....

तटिनी यानी नदी। जो-जो नदियाँ समुद्र [सागर] में मिलती हैं, वे सभी नदियाँ समुद्र में हैं-ऐसा माना जा सकता है। परन्तु हर नदी में सागर है- ऐसा निश्चित रूप से नहीं कह सकते। कभी सागर का पानी नदी में चला जाता है...कभी नहीं भी जाता है।

श्री जिनेश्वरदेव में सभी [सघलां] दर्शनों का समावेश हो सकता है...चूँकि जिनेश्वरदेव सागर के समान विशाल हैं। परंतु भिन्न-भिन्न दर्शनों में जिनेश्वर के दर्शन कभी होते हैं, कभी नहीं होते हैं।

चेतन, योगदर्शन का अध्ययन करते समय मुझे भी ऐसा लगता था कि 'क्या मैं जैनदर्शन का ही अध्ययन कर रहा हूँ?' महर्षि पतंजलि कि जिन्होंने 'योगदर्शन' की रचना की है, वे जैनदर्शन के अति निकट के स्नेही मालूम हुए! वैसे, सांख्य, बौद्ध, वेदान्त वगैरह के अध्ययन में भी जैनदर्शन की छाया प्रतीत होती थी। यदि ये सारे दर्शन एकांत आग्रह को छोड़ दें, तो वे जैनदर्शन के ही पैर और हाथ हैं।

चेतन, अब श्री आनन्दघनजी बड़ी गंभीर बात कह रहे हैं-

जिनस्वरूप थई जिन आराधे, ते सही जिनवर होवे रे...
भृंगी इलिकाने चटकावे ते भृंगी जग जोवे रे...

संस्कृत भाषा में 'भ्रमर-इलिकान्याय' बताया गया है। इलिका=ढोला, [एक छोटा जन्तु] भौंरी का ध्यान करती-करती खुद भौंरी बन जाती है, इसी बात को यहाँ श्री आनन्दघनजी ने थोड़े फेरफार के साथ कही है। भौंरी ढोला को डंक मारती है [चटकावे] और धीरे धीरे ढोला भौंरी बन जाती है।

योगीराज यह बताना चाहते हैं कि जिनस्वरूप बनकर जो जिनेश्वर का ध्यान करते हैं, वे अवश्य [सही] जिन बन जाते हैं।

प्रस्तुत में जो भौंरी और ढोला की उपमा दी है, वह ठीक नहीं लगती है। प्रस्तुत में 'जिनेश्वर के ध्यान से मनुष्य जिन बनता है-' यह बात सिद्ध करनी है। जिनेश्वरदेव आराधक को कहाँ डंक मारते हैं?

हस्तप्रत में [इस स्तवन की] ऐसा होना चाहिए-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इलिका भृंगी मन ध्यावे ते भृंगी जग जोवे...

तो उपमा बराबर जंचती है। ढोला भौंरी का ध्यान करती-करती भौंरी बन जाती है, वैसे मुमुक्षु आत्मा जिनेश्वर का ध्यान करते-करते जिन बन जाती है।

ध्यान करनेवाला ध्याता कैसा होना चाहिए-यह बताते हुए योगीराज ने कहा - 'जिन स्वरूप थई...' ध्यानकाल में ध्याता को 'मैं राग-द्वेषरहित हूँ,' ऐसी अवस्था प्राप्त करनी चाहिए। यानी ध्यान के समय मन में सूक्ष्म भी राग-द्वेष नहीं रहने चाहिए।

जिन [रागद्वेष विजेता] बनने के लिए जिनेश्वर का ध्यान करना है। वह ध्यान तभी सफल बनता है, जब ध्यान करनेवाला मनुष्य, ध्यान करते समय जिन जैसा बन जायें!

भिन्न-भिन्न दर्शनों को लेकर राग-द्वेष का परिहार करने की सुन्दर प्रक्रिया बताकर, 'जिन' बनने का दिग्दर्शन कराया है, श्री आनन्दघनजी ने। आत्मावादियों को दर्शनों के वाद-विवाद में उलझने की जरूरत नहीं है। जिनेश्वरदेव में सभी दर्शनों की संवादिता सिद्ध कर दी!

षड्‌दर्शनों का सामान्य भी अध्ययन होगा तो ही इस स्तवना में आनन्द मिलेगा। सभी दर्शनों की सामान्य रूपरेखा समझ लेनी चाहिए। हालाँकि तेरे मन में आत्मस्वरूप के विषय में भिन्न-भिन्न मान्यताओं कि उलझन है ही नहीं, इसलिए षड्‌दर्शनों के ज्ञान के बिना तेरा आत्मविकास रुकने वाला नहीं है। फिर भी ज्ञान प्राप्त तो करना ही चाहिए।

चेतन, अब आनंदघनजी **'समय-पुरुष'** के छह अंग बता रहे हैं-

चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति वृत्ति परंपर-अनुभव रे
समयपुरुषनां अंग कह्यां ए, जे छेदे ते दुर्भव रे...

चेतन, जब श्रमण भगवान महावीर स्वामीने 'धर्मतीर्थ' की स्थापना की, उन्होंने अपने मुख्य ११ शिष्यों को [गणधरों को] `त्रिपदी' दी-

'उप्पन्नेइ वा धुवेइ वा विगमेइ ता'

'विश्व के प्रत्येक द्रव्य में उत्पत्ति-स्थिति और नाश-ये तीन तत्त्व रहे हुए हैं।' महान् प्रज्ञावंत गणधरों ने इस त्रिपदी के आधार पर तुरत ही सूत्रात्मक शास्त्रों की रचना कर दी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'अत्थं भासइ अरिहा' अरिहंत [तीर्थंकर] अर्थ कहते हैं, सूत्रों की रचना गणधर करते हैं। जीवनपर्यंत तीर्थंकर अर्थ ही कहते रहते हैं।

गणधरों के द्वारा बनाये हुए सूत्र, बारह शास्त्रों में विभक्त हुए। वे बारह शास्त्र 'द्वादशांगी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। द्वादशांगी यानी बारह अंग। अंग यानी शास्त्र। शास्त्र यानी सूत्र।

ये बारह शास्त्र लिखे गये नहीं थे, प्रज्ञावंत गणधरों ने अपने शिष्यों को सुनाये, शिष्यों ने स्मृति में भर लिये। इस प्रकार शास्त्रज्ञान सुनने से मिलता था, इसलिए यह ज्ञान 'श्रुतज्ञान' कहलाया।

गुरु-शिष्य की परंपरा से यह 'श्रुतज्ञान' का प्रवाह, भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद भी चलता रहा। श्रुतज्ञान का अखंड प्रवाह ५०० वर्ष तक बहता रहा। श्री भद्रबाहुस्वामी तक वह प्रवाह आया। भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली थे, यानी समस्त द्वादशांगी का ज्ञान उनको था।

भद्रबाहुस्वामी ने भविष्य को देखा। 'भविष्य में मनुष्यों की स्मृति और बुद्धि का ह्रास होता जायेगा। 'द्वादशांगी' दुर्बोध होती जायेगी।'

उन्होंने 'द्वादशांगी' पर **'निर्युक्ति'** की रचनायें की। 'निर्युक्ति' में उन्होंने सूत्रों के भाव और रहस्य प्रकाशित किये। आज भी ऐसी भद्रबाहुस्वामीजी की १० निर्युक्तियाँ प्राप्त हैं। श्रुतकेवली की रचना गणधरों की रचना के बराबर होती हैं।

कालक्रम से, स्मृति और बुद्धि का ह्रास होने से, 'द्वादशांगी' में से बारहवें अंग **'दृष्टिवाद'** का ज्ञान लुप्त हो गया। बाद में रहे **ग्यारह अंग।** आज ये ग्यारह अंग [सूत्र] प्राप्त हैं, परंतु पूर्णरूप से नहीं है। ग्यारह अंग के कुछ-कुछ अंग ही प्राप्त हुए हैं।

जो सूत्र और निर्युक्तियों का ज्ञान, भद्रबाहुस्वामी के बाद गुरु-शिष्य की परंपरा से मिलता रहा...क्रमशः कम होता गया।

गुरु-शिष्य की परंपरा में जो मेधावी आचार्य-उपाध्यायादि आये, उन्होंने सूत्र एवं निर्युक्तियों को विशद करने वाले **'भाष्य'** लिखे।

उसी सुविहित गुरु-शिष्य की परंपरा में कुछ ऐसे प्रज्ञावंत महापुरुष पैदा हुए कि जिन्होंने सूत्र, निर्युक्ति और भाष्य को संक्षेप में समझाने वाली **'चूर्णि'** की रचनायें की। चूर्णियो की रचना 'प्राकृत भाषा' में हुई है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

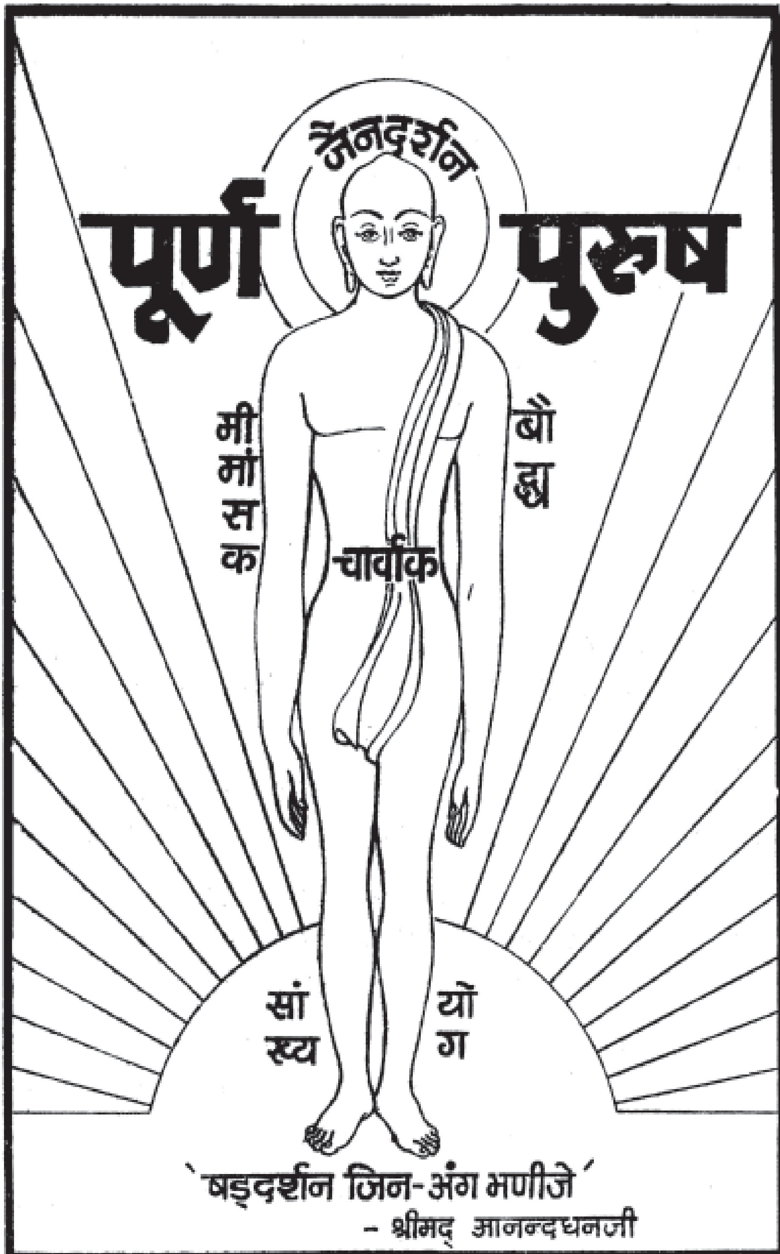

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुछ महामनीषी आचार्यों ने निर्युक्ति, चूर्णि और भाष्य को आधार बनाकर सूत्रों पर विस्तार से टीकायें लिखी हैं। टीका को **'वृत्ति'** भी कहते हैं। टीकायें लिखनेवाले असाधारण विद्वत्ता एवं परंपरागत अनुभवों के धारक महापुरुष थे। वे कोई गच्छ के या संप्रदाय के दुराग्रही नहीं थे। श्री जिनशासन के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा होती थी।

कुछ प्रज्ञावंत महापुरुषो ने सूत्र, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकाओं का अध्ययन कर, चिन्तन-मनन कर, भिन्न-भिन्न विषय पर स्वतंत्र ग्रंथों की रचनाएँ की। अपने ज्ञानानुभव, आत्मानुभव को भी ग्रन्थों में भरा। इतने वे सावधान थे कि मेरा अनुभवज्ञान शास्त्र-निरपेक्ष तो नहीं है न? ऐसी परीक्षा करते थे। शास्त्रनिरपेक्ष अनुभव गलत होता है। सभी अनुभव सच्चे ही हों, ऐसा नियम नहीं है। कुछ अनुभव सही हो सकते है, कुछ अनुभव गलत हो सकते हैं। गलत अनुभवों को छोड़ देने चाहिए।

श्री आनन्दघनजी कहते हैं : 'समयपुरुष' यानी शास्त्र-पुरुष के ये छह अंग हैं। १. सूत्र, २. निर्युक्ति, ३. भाष्य, ४. चूर्णि, ५. टीका और ६. परंपरागत अनुभव। 'समयपुरुष' को माननेवालों को उनके छह अंगों को मानने चाहिए।

- दिगम्बर संप्रदायवाले इस 'समयपुरुष' को नहीं मानते हैं। यानी छह में से एक भी अंग नहीं मानते हैं।
- स्थानकवासी संप्रदायवाले मात्र 'सूत्र' को ही मानते हैं, शेष पांच अंगों को नहीं मानते हैं। सूत्र भी मात्र ३२ ही मानते हैं।
- तेरापंथी संप्रदायवाले भी मात्र 'सूत्र' मानते हैं। वे भी ३२ सूत्र ही मानते हैं।
- श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, जो कि भगवान महावीर स्वामी से लगाकर एक अविच्छिन्न परंपरा का संघ है, वह समयपुरुष को पूर्णरूप से मानता है। सभी छह अंगों को मानता है। ४५ सूत्रों को मानते हैं।

चेतन, तेरे मन में प्रश्न पैदा होगा कि बारह अंग के ग्यारह अंग हुए, और ग्यारह अंग के पैतालीस सूत्र कैसे हो गये! बताता हूँ- श्रमण भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् १८० वर्ष व्यतीत होने पर १२ अंगो का ज्ञान भी भूला जा रहा था। तत्कालीन श्रुतधर आचार्यों ने मिलकर परामर्श किया। मौखिक श्रुतज्ञान को लिखा गया। उस समय विषयों का विभागीकरण किया गया-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

११ अंग
१२ उपांग
६ छेद
१० प्रकीर्णक
४ मूल
१ नंदीसूत्र
१ अनुयोग-द्वार

४५ सूत्र

वर्तमान में इन ४५ सूत्रों को '४५ आगम' कहते हैं। प्राचीन हस्तलिखित प्रतों में ये आगम आज भी उपलब्ध हैं। आज इन आगमों का साधुपुरुष अध्ययन भी करते हैं।

चेतन, यह बात विस्तार से इसलिये बता रहा हूँ, चूँकि श्रीमद् आनन्दघनजी 'समयपुरुष' की आराधना करने का आग्रह करते हैं। जिसकी आराधना करनी है, उसका ज्ञान तो होना ही चाहिए।

जो लोग 'समयपुरुष' को नहीं मानते हैं, अथवा मात्र 'सूत्र' को ही मानते हैं, उनको चेतावनी देते हैं-

जे छेदे ते दुर्भव रे...

जो लोग निर्युक्ति, भाष्य वगैरह नहीं मानते हैं, यानी उन अंगों का छेद उड़ाते हैं, उनको कहते हैं, 'तुम दुर्भवी हो!' यानी 'तुम्हारी आत्मा भारी पापकर्मों से बंधी हुई है। निकट के भविष्य में तुम्हारा मोक्ष होनेवाला नहीं है।' श्री आनन्दघनजी का यह पुण्यप्रकोप है।

चेतन, २५-३० वर्षों से तो, ३२ आगमों की मान्यतावाले लोग जो नये आगम छपवाते हैं, उन में जहाँ मंदिर-मूर्ति की बातें हैं, उनको निकाल दी हैं और जो बात नहीं है आगम में, डोरा डालकर मुँहपत्ति मुँह पर बाँधने की, नये आगमों में घुसेड़ दी है। यह छोटा अपराध नहीं है, बड़ा अपराध है...। परंतु कौन उनको रोकें?

मुद्रा बीज धारणा अक्षर, न्यास अर्थ-विनियोगे रे
जे ध्यावे ते नवि वंचीजे, क्रिया-अवंचक भोगे रे...

चेतन, 'समयपुरुष' बताने के बाद योगीराज अब 'ध्यानपुरुष' बता रहे हैं।

यह एक प्राचीन ध्यानप्रक्रिया है। योगीराज ने मात्र यहाँ ध्यान के छह अंग बताये हैं और गुरुगम से ध्यानप्रक्रिया जानने का निर्देश किया है। मैं यहाँ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राचीन योगग्रन्थों के आधार पर कुछ विस्तार से ध्यानप्रक्रिया बताऊँगा।

सर्वप्रथम, यह ध्यान करनेवाला साधक मनुष्य कैसा होना चाहिए यह बताता हूँ-

१. स्थिर बुद्धिवाला, २. लययोग की साधना में तत्पर, ३. स्वाधीन, ४. वीर्यवान्, ५. विशाल हृदयवाला, ६. दयायुक्त, ७. क्षमाशील, ८. सत्यवादी, ९. वीर, १०. श्रद्धावान्, ११. गुरुचरणपूजक, १२. योगाभ्यास में तत्पर। ऐसा साधक ही उपर्युक्त ध्यान करने के लिए पात्र होता है। छह वर्ष तक निरंतर ध्यान करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

मुद्रा : योगसिद्ध गुरु से साधक को १० प्रकार की मुद्रायें सीखनी चाहिए। ये मुद्रायें निम्न प्रकार हैं-

१. महामुद्रा, २. महावेध, ३. महाबंध, ४. मूलबंध, ५. जालंधरबंध, ६. उड्डीयानबंध, ७. खेचरी, ८. वज्रोली, ९. विपरीत करणी, १०. शक्तिचालिनी.

धारणा : अक्षर : अक्षरन्यास :

साधक को अपने शरीर में छह स्थानों पर छह प्रकार के कमलों की [चक्रों की] धारणा करने की होती हैं। उन छह कमलों के नाम निम्न प्रकार हैं-

१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूरक, ४. अनाहत, ५. विशुद्ध, ६. आज्ञा। इस ध्यान-प्रक्रिया में इन छह कमलों की धारणा ही प्रमुख है।

इन छह कमलों में साधक को पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-इन पंच भूतों की धारणा करने की होती है। यानी एक-एक कमल में पाँच-पाँच घड़ी [२४ मिनट की एक घड़ी] तक वायु धारण करने का होता है। यानी कुंभक कर, पाँच भूतों की धारणा करने की होती है। इस धारणा के लिये 'प्राणायाम' सिद्ध होना चाहिए। यह पंचभूत की धारणा करने से साधक व्यंतरादि के भयों से निर्भयता प्राप्त करता है।

चेतन, अब शरीर में कहाँ-कहाँ पर कौन-कौन से कमल की धारणा [कल्पना] करने की है, यह बताता हूँ। कमलों का स्वरूप भी बताता हूं।

१. मूलाधार-कमल :

गुदा से दो अंगुल ऊपर और लिंग से एक अंगुल नीचे, चार अंगुल प्रमाण का एक कन्द है, वही मूलाधार कमल है। प्रकाशमान कमल के चार दल हैं, यानी यह चतुर्दल कमल है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चार दलों के ऊपर क्रमशः व, श, ष, स - अक्षरों का न्यास [स्थापना] करने का हैं।

इस कमल का ध्यान करने से आकाशगामिनी शक्ति प्राप्त होती है। जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है। जपसिद्धि और इच्छित प्राप्ति होती है। शरीर की कान्ति बढ़ती है और स्वास्थ्यलाभ होता है।

२. स्वाधिष्ठान-कमल :

लिंग के मूल में यह कमल है। यह षड्दल कमल है। क्रमशः दलों के ऊपर ब, भ, म, य, र, ल, - अक्षरों का न्यास करने का होता है।

इस कमल का ध्यान करने से मनुष्य शास्त्रज्ञ, नीरोगी, निर्भय और मृत्युंजयी बनता है। अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

३. मणिपूरक-कमल :

मणिपूरक कमल की धारणा नाभिप्रदेश में करने की है। यह कमल सुनहले रंग का है। दशदल कमल है। दलों पर क्रमशः ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ - अक्षरों का न्यास करने का है।

इस कमल के ध्यान से परकाय प्रवेश की सिद्धि प्राप्त होती है। स्वर्णसिद्धि प्राप्त होती है। जड़ीबूटियों का ज्ञान होता है।

४. अनाहत-कमल :

इस कमल की धारणा हृदय में होती है। लालरंग का कमल है। द्वादशदल कमल है। दलों के ऊपर क्रमशः क, ख, ग, घ, ङ्, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ - अक्षरों का न्यास करने का है।

इस कमल के ध्यान से दूरदर्शन, दूरश्रवण की शक्ति मिलती है।

५. विशुद्ध-कमल :

इस कमल की धारणा कंठ में करने की है। यह कमल स्वर्णवर्ण का है। यह षोडशदल कमल है। इन दलों के ऊपर क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ल्द, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः - इन अक्षरों का न्यास करने का है।

इस कमल के ध्यान से मनुष्य परमज्ञानी और योगीश्वर बनता है। आत्मस्वरूप की रमणता प्राप्त होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६. आज्ञा-कमल :

दोनों भौंहों के मध्य में आज्ञा-कमल की धारणा करने की है। यह श्वेत रंग का कमल है। यह द्विदल-कमल है। दो दलों के ऊपर क्रमशः ह और क्ष - अक्षरों की स्थापना करने की है।

इस कमल का ध्यान करने से मनुष्य को किसी प्रकार का अवसाद नहीं रहता है। महानन्द की प्राप्ति होती है।

इन कमलों में मंत्रबीजों की स्थापना कर जाप किया जाता है। जैसे, मूलाधार में वाग्बीज 'ऐं' का जाप, अनाहत में कामबीज क्लीं का जाप, आज्ञा में शक्तिबीज ह्रीँ का जाप किया जाता है।

चेतन, इन कमलों की अधिष्ठात्री देवियाँ होती हैं -

- मूलाधार की डाकिनी
- स्वाधिष्ठान की राकिनी
- मणिपूरक की लाकिनी
- अनाहत की काकिनी
- विशुद्ध की शाकिनी
- आज्ञा की हाकिनी.

चेतन, यह प्रक्रिया प्राचीन योगग्रन्थों के आधार पर लिखी है। हालाँकि मैंने इस प्रकार ध्यान का प्रयोग नहीं किया है। चूँकि प्रयोग के लिये सिद्धयोगी गुरु का मार्गदर्शन चाहिए। आज वैसा योग मिलता कहाँ है? यदि यह ध्यान किया जाय तो -

जे ध्यावे ते नवि वंचीजे क्रिया अवंचक योगे रे...

साधक कषायों को, संज्ञाओं को और गारवों को परवश नहीं पड़ता है। कषाय उसको ठग नहीं सकते [नवी वंचीजे] संज्ञायें और गारव भी नहीं ठग सकते। सद्‌गुरु का संयोग मिलने पर वह 'क्रियावंचक' योग में [इस ध्यान प्रक्रिया में] प्रवृत्त होता है।

सद्‌गुरु का संयोग मिले बिना, क्रियावंचक योग नहीं मिलता हैं। प्रस्तुत में षट्‌दलकमल की ध्यानप्रक्रियारूप क्रियावंचक योग की साधना, सद्‌गुरु के बिना, नहीं हो सकती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रुत अनुसार विचारी बोलुं, सुगुरु तथाविध न मिले रे,
किरिया करी नवि साधी शकिये, ए विखवाद चित्त सघले रे...

श्रीमद् आनन्दघनजी कहते हैं : 'मैंने जो यह ध्यान-प्रक्रिया का निर्देश किया है, वह मेरी मनः कल्पना नहीं है। शास्त्रानुसार चिंतन कर, मैंने कहा है [बोलुं]. इसलिये यह ध्यानप्रक्रिया श्रद्धेय तो है, परंतु वैसे ध्यानसिद्ध सुगुरु नहीं मिलते हैं।

सभी मुमुक्षु आत्माओं के मन में यह विखवाद [चिंता] है - 'ऐसे ध्यान-सिद्ध सुगुरु नहीं मिल रहे हैं... क्या करें? वैसे ध्यान कर हम उसकी साधना [ध्यानसाधना] नहीं कर सकते हैं।'

श्री आनन्दघनजी के समय सुगुरु का [ध्यानसिद्ध] अभाव था, वैसे आज भी अभाव है। लगता है कि ध्यानसाधना की यह परंपरा ही लुप्तप्रायः हो गई है। क्या करें? सिवाय परमात्मशरण, दूसरा कोई विकल्प दिखता नहीं है।

ते माटे ऊभा कर जोडी, जिनवर आगल कहिये रे...
समय-चरण सेवा शुद्ध देजो, जिम आनन्दघन लहिए रे...

'हे भगवंत! इसलिए [सद्गुरु नहीं मिलते है इसलिए] आपके सामने दो हाथ [कर] जोड़कर खड़े [ऊभा] हैं और विनती करते हैं - 'आपके वचन [समय] की शुद्ध चरणसेवा देना, जिससे हम आनन्दघन [मोक्ष] प्राप्त करें।'

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा सुगुरुयोग देना कि हम आपके प्रवचन को समझें... उसकी आराधना कर सकें और कर्मबंधनों कों तोड़ कर परमपद-मोक्ष पा सके।

परमात्मा के अचिन्त्य अनुग्रह से, मोक्षमार्ग की आराधना में सहायक सामग्री प्राप्त होती है। श्री आनन्दघनजी ने इसलिए परमात्म अनुग्रह की याचना की है।

चेतन, श्री नमिनाथ भगवंत की स्तवना में बहुत सी गंभीर और गहन बातें कही गई है। तू कम से कम तीन बार तो पढ़ना ही।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री नेमिनाथ भगवंत

स्तुति

यदुवंश - समुद्रेन्दुः, कर्म-कक्ष - हुताशनः।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्-वोऽरिष्टनाशनः ।।

प्रार्थना

यदुकुलनंदन नेमिजिनेश्वर, शिवादेवी के सुत हो तुम।
लाखों पशु की जान बचाई, वास्तव में अद्भुत हो तुम ।।
राजुल के संग नौ-नौ भव की, प्रीत प्रभु ने पूरी की।
सच्चा प्रेम है मुक्तिदाता, प्रभुवर ने मंजूरी दी ।।

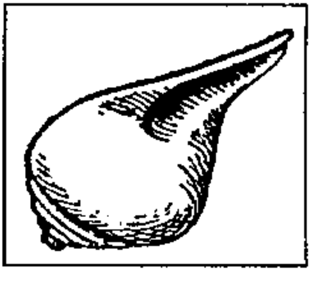

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री नेमिनाथ भगवन्त

१	**माता का नाम**	*शिवा रानी*
२	**पिता का नाम**	*समुद्रविजय राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*कार्तिक कृष्णा १२/शौरीपुर*
४	**जन्म कल्याणक**	*श्रावण शुक्ला ५/शौरीपुर*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*श्रावण शुक्ला ६/शौरीपुर*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*आश्विन कृष्णा ०)) गिरनार (सहस्राम्रवन)*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*आषाढ़ शुक्ला ८/गिरनार*
८	**गणधर**	*संख्या ११ प्रमुख वरदत्त*
९	**साधु**	*संख्या १८ हजार प्रमुख वरदत्त*
१०	**साध्वी**	*संख्या ४० हजार प्रमुख यक्षदत्ता*
११	**श्रावक**	*संख्या १ लाख ६९ हजार प्रमुख नंद*
१२	**श्राविका**	*संख्या ३ लाख ३६ हजार प्रमुख महासुव्रता*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*वेतस*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*गोमेध*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*अंबिका*
१६	**आयुष्य**	*१ हजार वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न-Mark]**	*शंख*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*अपराजित (अनुत्तर)*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*सुप्रतिष्ठ के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*९*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*५४ दिन*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*३०० वर्ष*
२३	**शरीरवर्ण (आभा)**	*श्याम*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*द्वारवती*
२५	**नाम-अर्थ**	*गर्भ के समय माँ ने अरिष्ट-रत्नमय चक्र देखा।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- **राजीमती कहती है : मैं आपको चाहती हूँ। मेरे हृदय में आपके प्रति पूर्ण प्रेम है, फिर मुक्ति-स्त्री से संबंध क्यों बाँधते हो?**
- **पशुओं का चित्कार सुनकर तेरे हृदय में दया का विचार आया, सही बात है, तूने उन पशुओं का विचार किया.... परन्तु तूने मनुष्य की दया नहीं की.... तुझे मेरा विचार नहीं आया....।**
- **हे नाथ! इस जगत में प्रेम तो सभी करते हैं, परन्तु प्रेम को निभानेवाले तो विरल ही होते हैं। आपने आठ-आठ भवों तक प्रेम किया, अब आप इस प्रकार द्वार पर आकर लौट गये, प्रेम को नहीं निभाया.... अच्छा नहीं किया।**
- **मुझे आप से कुछ नहीं चाहिए। मुझे तो आप ही चाहिए। आप मुझे मिल जाय तो ही मेरी इच्छा पूर्ण हो सकती है।**

पत्र : २३ श्री नेमिनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला। आनन्द!

जिनेश्वर भगवंतों की स्तवना में जिनेश्वरों के ही वचनों को, श्रीमद् आनन्दघनजी बता रहे हैं। यह भी एक विशिष्ट कला है। गेय काव्यों में तत्त्वज्ञान देना, सरल बात नहीं है।

ऐसे ही, आनन्दघनजी के समकालीन महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी ने भी अपने गेय काव्यों में भरपूर तत्त्वज्ञान दिया है। श्री देवचन्द्रजी ने भी ऐसी काव्यरचनायें की हैं। पंडित वीरविजयजी ने तो कमाल कर दिया है, चौसठ प्रकारी पूजाओं की रचना करके!

जो संस्कृत-प्राकृत भाषा नहीं जानते हैं, वैसे स्त्री-पुरुषों के लिये ये सारी काव्यरचनाएँ, विस्तृत और गहन तत्त्वज्ञान की गंगाएँ हैं। ज्ञानगंगा में स्नान करते ही रहो!

श्री नेमिनाथ भगवान की यह स्तवना भगवत्प्रेम से भरी हुई है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अष्ट भवांतर वालही रे, तू मुझ आतमराम...मनरा व्हाला!
मुगति-स्त्री शुं आपणे रे, सगपण कोई न काम... मनरा. १
घर आवो हो वालम! घर आवो! मारी आशाना विशरामी,
रथ फेरो हो वालम साजन! रथ फेरो, माहरा मनोरथ साथ...मनरा. २
नारी पखो शो नेहलो रे? साच कहे जगनाथ,
ईश्वर अर्धांगे धरी रे, तू मुझ झाले न हाथ... मनरा. ३
पशुजननी करुणा करी रे, आणी हृदय विचार,
माणसनी करुणा नहीं रे, ए कुण घर आचार... मनरा. ४
प्रेम-कल्पतरु छेदीयो रे, धरीयो जोग धतूर,
चतुराई रो कुण कहो रे, गुरु मिलियो जगशूर... मनरा. ५
मारुं तो एमां कांई नहीं रे, आप विचारो राज,
राजसभामां बेसतां रे, किसडी बधसी लाज... मनरा. ६
प्रेम करे जग जन सहु रे, निर्वाहे ते ओर,
प्रीत करीने छोड़ी दे रे, तेहशुं न चाले जोर... मनरा. ७
जो मनमां एहवुं हतुं रे, निसपत करत न जाण,
निसपत करीने छांडतां रे माणस हुवे नुकसाण... मनरा. ८
देतां दान संवत्सरी रे, सहु लहे वंछित पोष,
एसेवक वंछित नवि लहेरे, ए सेवक नो दोष... मनरा. ९
सखी कहे 'ए शामलो' रे, हुं कहुं 'लक्षणसेत,'
इण लक्षण साची सखी रे, आप विचारो हेत... मनरा. १०
रागी शुं रागी सहु रे, वैरागी श्यो राग?
राग विना किम दाखवो रे, मुगति सुन्दरी माग... मनरा. ११
एक गुह्य घटतुं नथी रे, सघलोय जाणे लोक,
अनेकान्तिक भोगवो रे, ब्रह्मचारी गतरोग... मनरा. १२
जिण जोणे तुमने जोऊं रे, तिण जोणे जुवो राज!
एकवार मुझने जुओ रे, तो सीजे मुज काज... मनरा. १३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोहदशा धरी भावना रे, चित्त लहे तत्त्वविचार,
वीतरागता आदरी रे, प्राणनाथ निरधार... मनरा. १४
सेवक पण ते आदरे रे, तो रहे सेवक माम,
आशय साथे चालिये रे, एही ज रूडुं काम... मनरा. १५
विविध योग धरी आदर्यो रे, नेमिनाथ भरतार,
धारण पोषण तारणो रे, नवरस मुगताहार... मनरा. १६
कारणरूपी प्रभु भज्यो रे, गण्युं न काज-अकाज,
कृपा करी मुझ दीजिये रे, आनन्दघन पदराज... मनरा. १७

चेतन, नेमिनाथ और राजीमती का प्रेम-संबंध, जैन इतिहास में सुवर्णाक्षरों से लिखा गया है। आठ-आठ जन्मों से इन दोनों का प्रेम-संबंध चला आ रहा था।

नेमिकुमार की सगाई राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती के साथ हुई थी। शादी करने के लिये नेमिकुमार की बारात चली। बारात में हजारों यादव थे। यादव मांसाहारी थे! राजा उग्रसेन ने यादवों के भोजन के लिए सैकड़ों पशुओं को गाँव के बहार वाड़े में बाँध रखे थे! पशु करुण चित्कार कर रहे थे। जब बारात नगर के द्वार पर पहुँची, नेमिकुमार ने पशुओं का चित्कार सुना। उन्होंने रथ के सारथि को पूछा कि इतने सारे पशु क्यों इकट्ठे किये गये हैं। सारथि ने कारण बताया। नेमिकुमार का करुणापूर्ण हृदय द्रवित हो गया। 'मेरे निमित्त इतने हजारों जीवों की हिंसा होगी? नहीं, नहीं, मुझे शादी नहीं करनी है।' उन्होंने सारथि को रथ वापस मोड़ने की आज्ञा दी। बारात वापस लौट गई।

यह समाचार राजीमती को मिलते हैं। राजीमती मूर्च्छित हो जाती है, मूर्च्छा दूर होने पर करुण कल्पांत करती है।

श्री आनन्दघनजी ने इस स्तवना को राजीमती की स्तवना बना दी है। यानी राजीमती नेमिकुमार को संबोधित करती हुई कहती है-

अष्ट भवांतर वालही रे, तू मुझ आतमराम...मनरा व्हाला...

'मेरे मन के प्रीतम! आठ-आठ [अष्ट] भवों से मैं आपको प्रिय [वालही] थी और आप मेरे आतमराम थे। मेरे हृदय में बिराजते थे। इस भव में भी मेरे हृदय में आप ही बसे हो... तो फिर...

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुगति-स्त्रीशुं आपणे रे, सगपण कोई न काम...

मुक्तिरूप स्त्री के साथ आपको [आपणे] सगाई [सगपण] करने का कोई प्रयोजन [काम] नहीं है।'

कहने का तात्पर्य यह है कि : 'मैं आपको चाहती हूँ, मेरे हृदय में आपके प्रति पूर्ण प्रेम है, फिर मुक्ति-स्त्री से संबंध क्यों बाँधते हो? मत बाँधो संबंध। संबंध बाँधने के लिये मत चले जाओ। आप वापस लौट आओ...।'

घर आवो हो वालम! घर आवो, मारी आशाना विशराम...
रथ फेरो हो साजन! रथ फेरो, मारा मनोरथ साथ...

'मेरे बालम! आप वापस घर पधारो...घर पधारो...आप ही मेरी आशाओं को पूर्ण करनेवाले हो! आप मिलते ही मेरी सभी आशाएँ पूर्ण हो जायेगी। इसलिए मेरे साजन! आप रथ वापस लौटाओ... मेरे मन के सभी मनोरथ आपके साथ जुड़े हुए हैं।'

[यहाँ पर जो 'मनोरथ साथ' है, उस जगह 'मनोरथ धाम' हो, तो उनुप्रास जमता है। ऊपर 'आज्ञाना विशराम' है, तो नीचे 'मनोरथ धाम' बराबर जमता है। 'राम' और 'धाम' का अनुप्रास होता है।]

राजीमती पूछती है :

नारी पखो श्यो नेहलो रे, साच कहे जगनाथ!

हे जगत् के नाथ! तू सच बोलना! तेरे मन में ऐसा है न कि स्त्री के एक पाक्षिक [पखो] प्रेम [नेहलो] की क्या कीमत? यानी 'राजीमती के हृदय में भले ही प्रेम हो, मेरे हृदय में उसके प्रति प्रेम नहीं है...तो उस स्त्री के प्रेम का क्या मूल्य?'

मेरे बालम! ऐसा मत सोचना, उस महादेव को देख-

ईश्वर अरधांगे धरी रे, तू मुझ झाले न हाथ...

उस महादेव ने तो अपना आधा शरीर स्त्री को दे दिया है! आधे शरीर में स्त्री को स्थान दिया है। तू मेरा हाथ भी नही पकड़ता है...यह क्या उचित है? तू मेरा नाथ नहीं बनना चाहता है, तो जगत् का नाथ कैसे बनेगा?

[महादेव 'अर्धनारीश्वर' कहलाते हैं, इस कल्पना को लेकर राजीमती ने नेमिकुमार को उपालंभ दिया है]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पशुजननी करुणा करी रे, आणी हृदय विचार...

पशुओं का चीत्कार सुनकर तेरे हृदय में दया का विचार आया। सही बात है, पशुओं का दुःख दूर करने की तूने करुणा की...तूने उन पशुओं का विचार किया परंतु-

माणसनी करुणा नहीं रे, ए कुण घर आचार?

तूने मनुष्य [माणस] की दया नहीं की। तुझे मेरा विचार नहीं आया...क्या मैं पशु से भी गई बीती हूँ? 'पशुओं की दया करना, मनुष्य की नहीं...' ऐसा किस घर का आचार है? क्या तेरे घर की यही रीति-नीति है मेरे साजन? तूने जैसे पशुओं की दया की वैसे मेरा विचार भी तुझे करना चाहिए ना?

प्रेम-कल्पतरु छेदियो रे, धरियो जोग धतूर...

मेरे प्राणनाथ! आपने प्रेम के कल्पवृक्ष का विच्छेद कर दिया और धतूरे* जैसे योग को ग्रहण किया [धरियो], यह क्या आपकी बुद्धिमत्ता है?

चतुराई रों कुण कहो रे, गुरु मीलियो जगसूर?

ऐसी बुद्धि [चतुराई] देनेवाला कौन गुरु आपको मिल गया? बड़ा जगसूर [जगत में शूरवीर] लगता है वह गुरु! जिसने आपको प्रेमरूपी कल्पवृक्ष का नाश करने का और जोग जैसे धतूरे को ग्रहण करने का उपदेश दिया!

मारुं तो एमां कांई नहीं रे, आप विचारो राज...

राजसभामां बेसतां रे, किसडी बधसी लाज...

आपने प्रेम तोड़ दिया तो भले तोड़ा, मेरा कुछ बिगड़नेवाला नहीं है। सोचना तो आपको चाहिए कि 'मैं राजसभा में बैठूँगा और मेरे साथ मेरी रानी नहीं होगी तो मेरी इज्जत [लाज] कितनी [किसड़ी] बढ़ेगी, [बधसी] यानी राजसभा में रानी की वजह से राजा की शोभा होती है। रानी के बिना राजा की शोभा नहीं होती है।

प्रेम करे जग जन सहु रे, निरवहे ते ओर...

प्रीत करी ने छोडी दे रे, तेहशुं न चाले जोर...

'हे नाथ, इस जगत में प्रेम तो सभी करते हैं, परंतु प्रेम को निभानेवाले तो

* **'धतूरा'** एक प्रकार की तुच्छ वनस्पति है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विरल [ओर] ही होते हैं। प्रेम करके छोड़ जाने वालों पर [तेहशुं] किसी का जोर नहीं चलता है। किसी से जबरन प्रेम नहीं होता है। आपने आठ-आठ भवों तक प्रेम किया और निभाया, अब आप इस प्रकार द्वार पर आकर लौट गये...प्रेम को नहीं निभाया, खैर, आपसे मैं जबरन तो प्रेम नहीं कर सकती...।

जो मनमां एहवुं हतुं रे, निसपति करत न जाण...
निसपति करीने छांडतां रे, माणस हुवे नुकसाण...

आपके मन में ऐसी ही बात [एहवुं] थी कि 'अब मैं राजीमती से प्रेम तोड़ दूँगा', तो मैं आपसे निस्बत [निसपति]- प्रेम नहीं करती, मेरे मन में तो था कि आप मेरे प्रेम को निभाओगे। इस प्रकार निस्बत-प्रेम करके छोड़ देनेवाले मनुष्य [माणस] को नुकसान होता है। इतनी सरल बात आपके ध्यान में क्यों नहीं आयी? प्रेम किया है तो निभाना चाहिए।

देतां दान संवत्सरी रे, सहु लहे वंछित-पोष,
सेवक वंछित नवि लहे रे, ते सेवकनो दोष...

हे नाथ! दुनिया के लोगों का दुःख दूर करने के लिये आपने संवत्सर-दान दिया। सब लोगों ने दान पाकर अपने इच्छित की पुष्टि [पोष] पायी। अपना-अपना इच्छित पाकर सब संतुष्ट हुए। हे प्राणाधार, यह सेविका अपना इच्छित नहीं पा रही है...तो क्या मैं मेरा [सेवकनो] ही दोष समझूँ? जैसे दूसरे लोगों को संतुष्ट किये, वैसे मुझे-आपकी चरण सेविका को भी संतुष्ट करनी चाहिए। मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए, मुझे तो आप ही चाहिए। आप मुझे मिल जायें...तो ही मेरी इच्छा पूर्ण हो सकती है।

सखी कहे 'ए शामलो' रे, हुं कहुं लक्षण सेत,
इण लक्षण साची सखी रे, आप विचारो हेत...

हे नाथ, जब आप बरात लेकर यहाँ पधारे थे, उस समय मेरी सखी ने कहा था - 'राजीमती, यह तेरा वर तो काला है! लक्षण अच्छे नहीं दिखते...! मैंने उसको कहा था - 'नहीं, नहीं, मेरे पति श्याम हैं, इसलिए ही सुलक्षणवाले हैं।'

परंतु जब आप नगर के द्वार से ही वापस लौट गये...तब मेरी सखी की बात सही सिद्ध हो गई। मेरे बालम! आप हेतुपूर्वक सोचना, आपको मेरी सखी की बात सही लगेगी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदि आप शादी करके मुझे साथ ले जाते तो मेरी बात सही सिद्ध होती और सखी हार जाती।

'रागीशुं रागी सहु रे, वैरागीश्यो राग?'
राग विना किम दाखवो रे, मुगति सुंदरी माग?

मेरे प्राणाधार, आप कहोगे कि 'दुनिया में रागी से ही सभी राग करते हैं, मैं तो वैरागी हूँ, तो मेरे से तू कैसे राग करेगी!' ओहो! क्या मुझे भोली समझ कर पटा रहे हो, मेरे साजन? यदि आप में राग नहीं होता तो मुक्तिसुंदरी-मोक्ष के पास जाने का मार्ग [माग] आप कैसे बता रहे हो दुनिया को?

आपको मुक्तिसुंदरी से राग नहीं था, तो फिर आपने मेरा त्याग क्यों कर दिया? ऐसा कह दो, 'राजीमती, अब तेरे से राग नहीं करना है...।' बस, वैरागी होने का बहना मत बनाओ।

एक गुह्य घटतुं नथी रे, सघलोय जाणे लोक,
अनेकांतिक भोगवो रे, ब्रह्मचारी गतरोग...

'हे नाथ! समग्र [सघलोय] दुनिया आपको नीरोगी [गतरोग] और ब्रह्मचारी जानती है। और आप 'अनेकांतिकता' के साथ भोग भोगते हो! व्यभिचार सेवन करते हो...यह गुह्य-गुप्त बात मेरे मन में जमती नहीं है!'

[राजीमती का यह मीठा उपालंभ है। परमात्मा 'अनेकांतवाद का सिद्धान्त बताते हैं, यानी अनेकान्तवाद तीर्थंकर का अभिन्न अंग है...मुख्य उपदेश है- इस बात को लेकर कहा कि आप अनेकांतिकता के साथ भोग भोगते हो।]

राजीमती यहाँ पर भगवान नेमनाथ की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की तरफ इशारा करके, उपालंभमय-उलाहनेभरे स्वर में स्तवना कर रही है। उलाहने के शब्दों के भीतर तो प्रेम का पारावार हिलोरे ले रहा है...समर्पण भाव का सागर उफन रहा है...

जिण जोणे तुमने जोऊ रे, तिण जोणे जुओ राज!
एक वार मुजने जुओ रे, तो सीजे मुज काज!

[जिण-जिस, जोणे-दृष्टि से, तिण-उस, सीजे-सिद्ध होना]

मेरे राजा, जिस दृष्टि से मैं आपको देखती हूँ, उस दृष्टि से आप मुझे देखें। नाथ, बस, एक बार मुझे देख लो...मेरा कार्य सिद्ध हो जायेगा। एक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बार मुझे देखने पर आप मेरा त्याग नहीं करेंगे। मेरी यही अभिलाषा है कि आप मुझे अपने पास रखें।

मोहदशा धरी भावना रे, चित्त लहे तत्वविचार
वीतरागता आदरी रे, प्राणनाथ! निरधार...

प्रभो! क्षमा करना, मोहदशा में मैंने आपको क्या-क्या कह दिया...? मेरा मन जब तात्त्विक विचार करता है, तब स्पष्ट हो गया कि आप वीतराग बन गये हैं...मेरे प्राणनाथ! निश्चित ही आप वीतराग बने हैं। आप में राग का अंश भी नहीं रहा है।

आपका वापस लौटना और मेरा स्वीकार करना अब संभव नहीं है। अब तो मुझे ही आपके चरणों में आना होगा।

सेवक पण ते आदरे रे, तो रहे सेवक-माम...
आशय माथे चालिये रे, एही ज रूडुं काम...

'हे नाथ! मैं आपकी सेविका हूँ। मुझे भी आपका ही मार्ग लेना होगा। आप मेरे मालिक हो, आपकी आज्ञा के अनुसार मुझे चलना चाहिए, तो ही सेवक की लाज [माम] रहेगी।

आपके प्रति मेरे हृदय में अपूर्व प्रीति है, मुझे प्रीति अखंड रखना है, तो मुझे आपके आशय [आज्ञा] के साथ ही चलना होगा। वही मेरे लिए अच्छा-श्रेष्ठ कार्य होगा।

चेतन, श्री आनन्दघनजी ने 'आशय साथे चालिये रे' यह बात बहुत ही मार्मिक कही है। श्री ऋषभदेव की स्तवना में जो कहा है - 'रंजन धातुमिलाप' वही बात खोल कर यहाँ कह दी है। परमात्मा से प्रीति करना है, प्रीति दृढ़ करना है, तो परमात्मा के आशय [आज्ञा] को समझना ही होगा और आशय के अनुसार चलना होगा।

वैसे संसार में भी किसी से प्रीति बाँधना है, तो उसके आशय को समझ कर चलना होगा। साधुजीवन में भी शिष्य को गुरु का आशय समझकर चलना होता है। कभी गुरु को शिष्य का आशय भी देखना पड़ता है। आशय को नहीं समझनेवाले लोग प्रेम निभा नहीं सकते हैं।

राजीमती ने श्री नेमिनाथ का आशय समझा था। 'तुझे यदि मेरे साथ प्रीति निभाना है, तो संसार का त्याग कर साध्वी बन जा। मोक्षमार्ग की आराधना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर। सभी कर्मबंधनों को तोड़ दे।' यह आशय था नेमनाथ का। राजीमती ने संसार का त्याग कर दिया, वे साध्वी बन गई!

त्रिविध योग धरी आदर्यो रे, नेमनाथ भरतार,
धारण पोषण तारणो रे, नवरस मुगताहार...

'हे नेमिनाथ! मन, वचन और काया के त्रिविध योग से मैंने आपको मेरे पति [भरतार] के रूप में स्वीकृत [आदर्यो] किये हैं। आप मेरा स्वीकार [धारण] करें, आप मुझे निभाये [पोषण] और आप ही मेरी जीवननैया पार लगायें [तारणो], ऐसी मेरी विनती है। आप ही मेरे गले में मोतियन की माला हो! उस माला में नौ रस-रूप [शृंगार, हास्य, वीर...इत्यादि नौ रस हैं] नौ मोती हैं।'

चेतन, राजीमती के समर्पणभाव की कविराज ने विशद अभिव्यक्ति की है। **नेमिकुमार के रूप में** कल्पना करके वह महान स्त्री मन-वचन और काया से समर्पित हो जाती है। पति-पत्नी के संबंध में ऐसा समर्पण अपेक्षित होता है। तभी वह संबंध श्रेष्ठ बनता है।

नेमनाथ भगवंत के रूप में कल्पना करके राजीमती इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोगरूप-त्रिविध योगों से समर्पित होती है। यानी राजीमती नेमिनाथ की शिष्या-साध्वी बनना चाहती है...उनकी आज्ञानुसार समग्र जीवन जीना चाहती है और शुक्लध्यान लगाकर आत्मा की पूर्णता पाना चाहती है।

'आप रागी तो मैं रागी, आप विरागी तो मैं भी विरागी!' राजीमती का यह दृढ़ संकल्प था। जब राजमती से शादी किये बिना नेमिकुमार वापस चले गये थे, तब राजीमती को दूसरे मनपसंद राजकुमार से शादी कर लेने के लिये बहुत समझायी गई थी, परंतु राजमती तो नेमिकुमार को मन-वचन से समर्पित हो गई थी। उसने शादी ही नहीं की और जब भगवान नेमिनाथ को गिरनार के पहाड़ों में केवलज्ञान प्रगट हुआ तब वह वहाँ पहुँच गई और भगवंत को कहा :

मेरे नाथ! आपने भले ही हाथ में हाथ नहीं लिया, अब आप मेरे सिर पर हाथ रखें और मुझे आपकी शिष्या बना लें। आप मेरा स्वीकार करें। आपके श्रमणीसंघ में ले लें। आप मेरे आत्मविकास के लिये प्रेरणा दें। मार्गदर्शन दें। मैं यथाख्यातचारित्र का पालन करनेवाली बनूँ। विशुद्ध चारित्र का पालन करनेवाली बनूँ-वैसे मुझे आत्मभावों से पुष्ट करें। आप ही मेरे तारक हैं। भवसागर से तिरानेवाले हैं-ऐसी मेरी अटूट श्रद्धा है। मैं शान्तरस में, प्रशमरस में निमग्न रहूँ-वैसा आशीर्वाद दें।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रिविधयोग से योगावंचक, क्रियावंचक और फलावंचक-ये तीन योग भी यहाँ संगत होते हैं।

राजीमती को नेमिनाथ भगवान का अवंचक योग प्राप्त हुआ। साध्वीजीवन में संयमधर्म का यथार्थ पालन करने से अवंचक क्रियायोग भी सिद्ध हुआ। मोक्षफल की प्राप्ति होने से अवंचक फलयोग भी मिल गया?

स्तवना की इस गाथा में श्री आनन्दघनजी ने मोक्षप्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय बता दिया है।

- मन-वचन-काया से सद्‌गुरु को समर्पित होना,
- निष्कपट हृदय से सद्‌गुरु का योग बनाये रखना,
- क्रमशः संयम-आराधना की विशुद्धि प्राप्त कर पुष्ट होना,
- शृंगारादि सभी रसों को शान्तरस में विलीन करना,
- निरंतर शुभ और शुद्ध भावों की वृद्धि करना।

राजीमती ने इस प्रकार आराधना कर, भगवान् नेमिनाथ से पूर्व ही मोक्ष पा लिया था!

कारणरुपी प्रभु भज्यो रे, गण्यो न काज-अकाज...

राजीमती ने नेमिनाथ प्रभु को मात्र कारण-निमित्त रूप में स्वीकार कर उनकी उपासना की [भज्यो] थी। उसने कार्य-अकार्य का विचार नहीं किया था। यानी 'मैं जो नेमिनाथ की उपासना करती हूँ वह अच्छा कार्य है या बुरा कार्य है,' ऐसा कोई विचार उसने नहीं किया था। यानी संपूर्ण श्रद्धा [Total Faith] से संपूर्ण समर्पण [Total Surrender] से उसने नेमिनाथ की आराधना की थी।

श्रद्धा और समर्पण के श्रेष्ठ भाव जाग्रत होने पर कार्य-अकार्य के विचार पैदा नहीं होते। विचारों से मुक्त अवस्था पाकर राजीमती ने मोक्ष पाया था। आनन्दघनजी भी उसी प्रकार मोक्ष पाना चाहते हैं। वे कहते हैं-

कृपा करी मुज दीजिये रे, आनन्दघन-पद-राज...

'हे भगवंत! मेरे ऊपर कृपा करें और मुझे भी उसी प्रकार [जैसे राजीमती को दिया वैसे] आनन्दघनपद-मोक्ष का साम्राज्य दें।'

चेतन, राजीमती एक स्त्री थी। आठ-आठ जन्मों से भगवान नेमनाथ के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साथ उसका प्रेमसंबंध था। हालाँकि वह प्रेमसंबंध शारीरिक और मानसिक था। अंतिम भव में राजीमती की कसौटी हुई। अंतिम भव में अपने प्रियतम के साथ उसका शारीरिक संबंध असंभव हो गया था। परंतु उसने मानसिक संबंध नहीं तोड़ा। मानसिक प्रेम का उसने आध्यात्मिक प्रेम में रूपान्तर कर दिया। आत्मा से आत्मा का प्रेम।

जब तक नेमिनाथ को केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ, तब तक राजीमती इन्तजार करती रही। नेमिनाथ को केवलज्ञान होने के समाचार मिलते ही वह उनके चरणों में पहुँच गई और दीक्षा ग्रहण कर साध्वी बन गई।

राजीमती ने कितना महान् त्याग किया एक प्रेम के लिये! वैषयिक सुखों की इच्छाओं का त्याग कर दिया!

चूँकि नेमिनाथ का यह उपदेश था कि वैषयिक सुखों की इच्छा नहीं करना। उसने नेमिनाथ के प्रति अपने हृदय में जो आकर्षण था, वह भी तोड़ दिया। चूँकि नेमिनाथ का उपदेश था कि परद्रव्य से राग नहीं करना, द्वेष नहीं करना। अपने ही आत्मद्रव्य में लीन होने की प्रेरणा थी नेमिनाथ की। राजीमती ने भगवान के मार्गदर्शन से अद्‌भुत आत्मशुद्धि पायी और भगवान से पूर्व ही मोक्ष पा लिया।

चेतन, प्रेम के गुणात्मक-परिवर्तन की यह अद्वितीय मिसाल है। श्रीमद् आनन्दघनजी ने इस स्तवना में अपनी काव्यशक्ति का अद्‌भुत परिचय कराया है। राजीमती के हृदय की व्यथा, वेदना और आक्रोश प्रकट किया है, तो उसकी गहरी समझदारी का वर्णन भी किया है। अभिव्यक्ति की शैली विरोधालंकार की है। हर गाथा में से आध्यात्मिक अर्थ प्रतिभासित होता है। राजीमती का दिव्य व्यक्तित्व प्रस्फुट होता है।

राजीमती राजकुमारी थी, रूपवती थी, लावण्यमयी थी। यौवन की बहारें छायी हुई थी। शादी करने की उत्सुकता थी...। ऐसी अवस्था में, ठुकराकर चले जाने वाले प्रेमी के प्रति क्रोध, रोष...विरोध नहीं करना...और उसी प्रेमी के पदचिन्हों पर चलना...असाधारण घटना है। दुनिया में ऐसी दूसरी घटना घटी हो-मेरे ज्ञान में तो नहीं है।

प्रेम के गुणात्मक आध्यात्मिक परिवर्तन के विषय में गंभीरता से सोचना। तत्त्वचिंतन में तेरी प्रगति होती रहे, यही मंगल कामना.

- प्रियदर्शन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री पार्श्वनाथ भगवंत

स्तुति

कमठे धरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति।
प्रभुस्तुल्य-मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः।।

प्रार्थना

तेइसवें तीर्थंकर प्यारे, वामानंदन पार्श्व प्रभो,
मंत्र तंत्र और यंत्र की दुनिया, के तुम ही सिरमौर विभो।
सुमिरन से ही संकट टलते, दर्शन से दुःख मिट जाए,
पूजा करके प्रभो तुम्हारी, पवित्रता हमें मिल जाए ।।

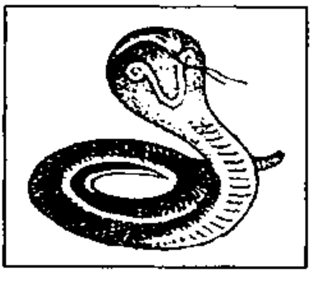

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री पार्श्वनाथ भगवंत

१	**माता का नाम**	*वामा रानी*
२	**पिता का नाम**	*अश्वसेन राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*चैत्र कृष्णा ४/काशी-बनारस*
४	**जन्म कल्याणक**	*पौष कृष्णा १०/काशी-बनारस*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*पौष कृष्णा ११/काशी-बनारस*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*चैत्र कृष्णा ४/भेलुपुर [काशी]*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*श्रावण शुक्ला ८/सम्मेतशिखर*
८	**गणधर**	*संख्या ८ प्रमुख शुभ*
९	**साधु**	*संख्या १६ हजार प्रमुख केशी गणधर*
१०	**साध्वी**	*संख्या ३८ हजार प्रमुख पुष्पचूला*
११	**श्रावक**	*संख्या १ लाख ६४ हजार प्रमुख सुद्योत*
१२	**श्राविका**	*संख्या ३ लाख २७ हजार प्रमुख सुनन्दा*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*धातकी*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*पार्श्व*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*पद्मावती*
१६	**आयुष्य**	*१०० वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न-Mark]**	*सर्प*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*प्राणत [१० वाँ]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*आनन्द के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*१०*
२१	**छद्मस्थावस्था**	*८३ दिन*
२२	**गृहस्थावस्था**	*३० वर्ष*
२३	**शरीरवर्ण (आभा)**	*नील*
२४	**दीक्षा दिन की शिबिका का नाम**	*विशाला*
२५	**नाम-अर्थ**	*माँ ने बाजू में से जाते हुए काले सर्प को देखा।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

❍ जाननेवाली आत्मा ज्ञायक कही जाती है, और जिसको जानती है, उसको ज्ञेय कहते हैं। ज्ञेय और ज्ञायक-दोनों भिन्न होते हैं।

❍ जैनदर्शन ने आत्मद्रव्य को विभु [सर्वव्यापी] नहीं माना है, आत्मा शरीर-व्यापी होती है। शरीररहित होने पर वह एक निश्चित क्षेत्र में रहती है।

❍ 'आत्मा विभु नहीं तो सर्वज्ञ कैसे?' यह प्रश्न वेदान्त का है। 'एक निश्चित स्थान में रही हुई आत्मा, लोक-अलोक का संपूर्ण ज्ञान कैसे पा सकती है,' यह बात वेदान्त-दर्शन की समझ में नहीं आयी।

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : २४ श्री पार्श्वनाथ स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, आनन्द हुआ।

श्री नेमनाथ भगवंत की स्तवना में तुझे ध्येय और ध्याता की एकता का विवेचन बहुत पसंद आया, जानकर खुशी हुई। रहस्यभूत बात तो यही है कि अपनी आत्मा ही अपना ध्येय है! बाहर के ध्येय तो निमित्त मात्र हैं। इसलिये स्वशक्ति से ही आत्मा को अपने स्वरूप में स्थिर होना है।

श्री नेमनाथ भगवंत के साथ राजीमती का नाम अभिन्न रूप से जुड़ गया है। आठ-आठ भव तक दोनों का पति-पत्नी का संबंध बना रहा है। राजीमती की बाह्य और आन्तरिक योग्यता का विचार करने पर उस पवित्र सन्नारी के प्रति नतमस्तक हो जाता हूँ। भगवान् नेमनाथ ने तो बाद में मोक्ष पाया, उनके पहले राजीमती मोक्ष में पहुँच गयी! इस स्तवना में श्रीमद् आनन्दघनजी ने प्रेमरस के साथ-साथ शान्तरस की अद्भुत निष्पत्ति की है। अब श्री पार्श्वनाथ भगवंत की स्तवना का अवगाहन करते हैं :

ध्रुवपद रामी! हो स्वामी माहरा,
निष्कामी गुणराय! सुज्ञानी,
निज गुणकामी हो पामी तुं धणी,
आरामी हो थाय.... सुज्ञानी....

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वव्यापी कहो सर्वजाणगपणे, परपरिणमन सरूप सुज्ञानी....
पर रूपे करी तत्त्वपणुं नहीं, स्वसत्ता चिद् रूप.... सुज्ञानी....
ज्ञेय अनेके हो ज्ञान-अनेकता, जल भाजन रवि जेम सुज्ञानी....
द्रव्य-एकत्वपणे गुण-एकता, निज पद रमता हो खेम....सुज्ञानी....
पर क्षेत्रे गत ज्ञेयने जाणवे, पर क्षेत्रे थयुं ज्ञान सुज्ञानी....
अस्तिपणु निज क्षेत्रे तुमे कह्युं, निर्मलता गुणमान.... सुज्ञानी....
ज्ञेय विनाशे हो ज्ञान विनश्वरु, काल प्रमाणे रे थाय सुज्ञानी....
स्वकाले करी स्व-सत्ता सदा, ते पर रीते न जाय सुज्ञानी....
पर भावे करी परता पामताँ, स्वसत्ता थिर ठाण सुज्ञानी....
आत्म-चतुष्कमयी परमां नहीं, तो किम सहुनो रे जाण सुज्ञानी....
अगुरुलघु निज गुणने देखतां, द्रव्य सकल देखंत सुज्ञानी....
साधारण-गुणनो साधर्म्यता, दर्पण जलने दृष्टांत.... सुज्ञानी....
श्री पारसजिन पारस-रस समो, पण इहां पारस नाही सुज्ञानी....
पूरण रसियो हो निज गुण परसन्नो, आनन्दघन मुज मांही.... सुज्ञानी....

चेतन, पार्श्वनाथ को पारसनाथ भी कहते हैं। और पारस का अर्थ 'पारसमणि' भी होता है। पारसमणि के लिये कहते हैं कि यदि उसका स्पर्श लोहे को होता है, तो लोहा सोना बन जाता है! ऐसी कोई तात्कालिक रासायनिक प्रक्रिया घटती होगी! इस बात को लेकर योगीराज श्री आनन्दघनजी, भगवान् पार्श्वनाथ की स्तवना का प्रारंभ करते हैं :

ध्रुवपद रामी! हो स्वामी! माहरा, निष्कामी गुणराय!

ध्रुव का अर्थ होता है स्थिर। और पद यानी अवस्था। स्थिर अवस्था में [मोक्ष में] रमणता करनेवाले, किसी भी कामना से रहित और गुणों के राजा ऐसे हे मेरे स्वामी! जो अपने आत्मगुणों का प्राकट्य करने का इच्छुक है, वैसा मनुष्य आपको पाकर ध्रुवपद में आराम [रमणता] करनेवाला बन जाता है। आपकी पूर्ण चेतना का संस्पर्श जीवात्मा को हो जाना चाहिए! बस, वह भी शुद्ध सोने जैसा विशुद्ध बन जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। पार्श्वनाथ का संस्पर्श उस जीवात्मा को होता है, जिसने पार्श्वनाथ से निष्काम प्रीति बाँधी होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतन, जो आत्मा ध्रुवपद में-मोक्ष में होती है, अथवा पूर्ण ज्ञानी बनी हुई शरीरस्थ होती है, उस आत्मा का ज्ञान लोकालोक व्यापी होता है। यानी पूर्ण आत्मा का पूर्ण ज्ञान सर्वव्यापी होता है। वह आत्मा सब कुछ जानती है.... सब कुछ देखती है।

- जाननेवाली आत्मा **ज्ञायक** [जाणग] कही जाती है और जिसको जानती है, उसको ज्ञेय कहते हैं, **ज्ञेय** और ज्ञायक-दोनों भिन्न होते हैं।

- जैन दर्शन, ज्ञान और ज्ञानी को अभिन्न भी मानता है। इस मान्यता के अनुसार, ज्ञान सर्वव्यापी है, तो ज्ञानी [आत्मा] भी सर्वव्यापी हो गया! हालाँकि आत्मद्रव्य को जैन दर्शन ने विभु [सर्वव्यापी] नहीं माना है। आत्मा शरीरव्यापी होती है। शरीररहित होने पर, वह एक निश्चित क्षेत्र में रहती है। हर आत्मा का अस्तित्व स्वतंत्र होता है।

- तीसरी बात भी समझ ले, ताकि इस स्तवना की दूसरी गाथा तेरी समझ में आ जायेगी। आत्मा से पर [भिन्न] ऐसे ज्ञेय पदार्थों को [दूसरी आत्माओं को भी] जब आत्मा जानती है, उस समय उन ज्ञेय पदार्थों का आत्मा में प्रतिबिंब गिरता है, आत्मा ज्ञेयरूप बन जाती है.... यानी पर-पदार्थों में परिणत हो जाती है....। फिर भी वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व [स्वसत्ता] कि जो चेतनारूप है, उनको बनाये रखती है!

यह बात बताते हुए योगीराज कहते हैं-

सर्वव्यापी कहे सर्व जाणगपणे, परपरिणमन-स्वरूप,
पररूपे करी तत्त्वपणुँ नहीं, स्वसत्ता चिद्रूप....

चेतन, जरा एकाग्रता से इस बात को पढ़ना। चूँकि यह विषय तेरे लिये नया है। जो ज्ञेय पदार्थ जड़ हैं, चेतनारहित हैं, उन पदार्थों को चेतनास्वरूप आत्मा जानती है, फिर भी वह जड़ नहीं बन जाती है! चित्स्वरूप अपना अस्तित्व कायम रखती है। यह तात्पर्य है इस गाथा का।

अब आगे कहते हैं-

ज्ञेय अनेके हो ज्ञान-अनेकता, जल भाजन रवि जेम
द्रव्य एकत्वपणे गुण-एकता, निजपद रमता हो खेम....

योगीराज एक तात्त्विक प्रश्न उठाते हैं। वे कहते हैं कि आकाश में सूर्य एक है, जमीन पर पानी से भरे हुए बरतन अनेक हैं। हर बरतन में अलग-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अलग सूर्य दिखता है। वैसे आत्मा का ज्ञानगुण एक है, भिन्न-भिन्न ज्ञेय पदार्थों में परिणत होने से ज्ञानगुण भी अनेक होंगे! और ज्ञान अनेक तो आत्मा भी अनेक माननी पड़ेगी! तो फिर आत्मा स्वरूप [निजपद] में रमणता कैसे करती है? आत्मा [द्रव्य] एक [एकत्व] हो, गुण [ज्ञान] एक हो.... तो ही शान्ति से [खेम] निज पद में रमणता हो सकती है।

ज्ञेय अनंत हैं। उनको जाननेवाला ज्ञान भी अनंत मानना पड़ेगा.... तो फिर आत्मा एक कैसे रहेगी? एक आत्मा अनेक हो जाय और स्व-रूप में रही हुई आत्मा पर-रूप बन जाय.... तो आत्मरमणता नहीं हो सकती है।

यह बात कविराज ने 'द्रव्य' की दृष्टि से कही, अब 'क्षेत्र' की दृष्टि से कहते हैं-

पर क्षेत्रे गत ज्ञेयने जाणवे पर क्षेत्रे थयुं ज्ञान
अस्तिपणुं निज क्षेत्रे तुमे कह्युं, निर्मलता गुमान....

एक क्षेत्र में [एक जगह] रही हुई आत्मा दूसरे क्षेत्र में रहे हुए पदार्थों को [ज्ञेयने] जाने, तो वह ज्ञान परक्षेत्रीय बन गया न? और जिनेश्वरों ने तो स्वक्षेत्र में [निश्चित स्थान में] आत्मा का अस्तित्व बताया है, तो फिर आत्मरमणता [निर्मलता] का अभिमान [गुमान] कैसे टिक सकेगा?

ज्ञेय पदार्थ का क्षेत्र अनंत है। उन ज्ञेयों को जाननेवाली आत्मा उस ज्ञेयस्वरूप बन जायेगी.... पररूप में परिणत होने पर स्वरूप में रमणता कैसे होगी?

[जिस पदार्थ को आत्मा जानती है, आत्मा उस पदार्थ में परिणत होती है- ऐसा सिद्धांत है। पदार्थ को जानने के लिये आत्मा को तद्रूप होना पड़ता है।]

द्रव्य और क्षेत्र की दृष्टि से चर्चा करने के बाद अब इसी विषय की 'काल' की दृष्टि से चर्चा आगे बढ़ाते हैं-

ज्ञेय-विनाशे हो ज्ञान विनश्वरु, काल प्रमाणे रे थाय
***स्वकाले करी स्वसत्ता सदा, ते पर रीते न जाय....**

* जैसे आठ बजे आपके हाथ में एक फल है, इस फल के लिये आठ बजे का समय 'स्वकाल' है, परंतु सवा आठ बजे का समय पर-काल है। स्वकाल नष्ट होने पर उस फल को भी नष्ट मानना होगा और उस फल के ज्ञान को भी नष्ट मानना होगा। ज्ञान नष्ट हुआ तो उससे अभिन्न आत्मा भी नष्ट हुई माननी पड़ेगी! चूँकि हर पदार्थ की सत्ता कालदृष्टि से स्वकाल में ही मानी गई है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतन, ज्ञान और ज्ञेय के विषय में यह विशद चर्चा की जा रही है। जैन दर्शन मानता है कि जिस समय जिस वस्तु का ज्ञान होता है, दूसरे समय में ज्ञेय बदल जाता है, यानी विषय बदल जाता है तो वह ज्ञान [पहले विषय का] नष्ट होता है : ज्ञेय का बदलना.... ज्ञेय का नाश होना, कहा जाता है।

कविराज कहते हैं : ज्ञेय का विनाश होने पर उसका ज्ञान भी विनष्ट होता है, अतः ज्ञान विनाशी हुआ। और ज्ञान विनाशी है, तो ज्ञानी [आत्मा] भी विनाशी मानना पड़ेगा! चूँकि ज्ञान-ज्ञानी को अभिन्न माना है।

काल की दृष्टि से पदार्थ की सत्ता [अस्तित्व] स्व-काल में ही मानी गई है, वह सत्ता पर-काल में कैसे जा सकती है? इस प्रकार तीन आपत्तियों का उद्भावन किया गया-१. आत्मा की पर-स्वरूपता, २. आत्मा की अनेकता और ३. आत्मा की विनाशिता।

अब 'भाव' की दृष्टि से इस विषय में एक नयी आपत्ति का उद्भावन करते हुए कहते हैं :

परभावे करी परता पामताँ, स्वसत्ता थिरठाण
आत्मचतुष्कमयी परमां नहीं, तो किम सहुनो रे जाण?

जिस प्रकार दर्पण में एक मनुष्य का प्रतिबिंब गिरता है, तो दर्पण पुरुष-रूप बन जाता है, वैसे ज्ञान में ज्ञेयपदार्थ का प्रतिबिंब गिरता है, तो ज्ञान ज्ञेयमय बन जाता है! यानी स्वभाव परभाव-रूप बन जाता है! परंतु दर्पण की सत्ता दर्पण के रूप में ही होती है, मनुष्य के रूप में नहीं। वैसे आत्मा की सत्ता स्व-रूप में होती है, पररूप में नहीं होती।

'आत्मचतुष्क' का अर्थ है, आत्मा का स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व-काल और स्व-भाव। यह आत्मचतुष्क पर-पदार्थों में संभवित नहीं है तो फिर आत्मा को सर्वज्ञ [सहुनी रे जाण] कैसे कहते हो? सर्वज्ञ मानने पर स्व-द्रव्य वगैरह चारों भी पर-द्रव्यरूप, पर-क्षेत्ररूप पर-कालरूप, और पर-भावरुप बन जायेंगे.... जो संभवित नहीं है। इसलिये या तो आत्मा को सर्वज्ञ मत मानो अथवा 'आत्मा पर-रूप बन सकती है', ऐसा मान लो!

वेदान्त दर्शन आत्मा को एक मानता है और विभु [व्यापक] मानता है। जैनदर्शन आत्मायें अनन्त मानता है और विभु नहीं परंतु शरीरव्यापी मानता है। देहमुक्त आत्मा को भी विश्वव्यापी नहीं मानता है, स्व-क्षेत्र में ही मानता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मा विभु नहीं है तो फिर सर्वज्ञ कैसे? यह प्रश्न वेदान्त का है। 'एक निश्चित स्थान में रही हुई आत्मा लोक-अलोक का संपूर्ण ज्ञान कैसे पा सकती है'-यह बात वेदान्तदर्शन की समझ में नहीं आयी, इसलिये यह प्रश्न पैदा होना उसके लिये स्वाभाविक है।

श्री आनन्दघनजी ने, जैसे कि वेदान्त दर्शन की ओर से ही चर्चा की हो-इस प्रकार प्रतिपादन किया है। अब, समाधान भी वे ही कर रहे हैं, जैनदर्शन की तत्त्वशैली से।

चेतन, यह 'सर्वज्ञवाद' है! श्री पार्श्वनाथ भगवंत की स्तवना के माध्यम से श्री आनन्दघनजी ने आत्मा की सर्वज्ञता सिद्ध करने का सुंदर प्रयत्न किया है।

हालाँकि इस स्तवना का विषय तेरे लिये अज्ञात तो है ही, परंतु समझना भी इतना सरल नहीं है। फिर भी पुनः-पुनः चिंतन करेगा तो विषय स्पष्ट हो जायेगा। वास्तव में तो आत्मवाद, सर्वज्ञवाद, कर्मवाद, नयवाद.... वगैरह वाद गहन अध्ययन के विषय हैं। अध्ययन किये बिना मात्र पढ़ने से समझ में नहीं आ सकते। पूर्णरूपेण विषय स्पष्ट नहीं होता है।

अब, मैं तुझे योगीराज के उठाये हुए प्रश्नों का समाधान देता हूँ। बाद में योगीराज ने सातवीं गाथा में जो समाधान दिया है वह बताऊँगा!

पहला प्रश्न : आत्मा को सर्वज्ञ मानोगे तो, ज्ञेय का स्वरूप आत्मा का स्वरूप बन जायेगा, अतः आत्मा में पर-रूपता आ जायेगी।

समाधान : जिस प्रकार दर्पण में वस्तु का प्रतिबिंब गिरता है, वैसे शुद्ध आत्मा में ज्ञेयरूप लोकालोक का प्रतिबिंब गिरता है। जिस प्रकार दर्पण में वस्तु का प्रतिबिंब गिरने पर दर्पण प्रतिबिंबित वस्तुरूप नहीं बन जाता है, पररूप नहीं बन जाता है, वैसे आत्मा परद्रव्यों का ज्ञान करती है, फिर भी पर-रूप नहीं बन जाती है।

दूसरा प्रश्न : ज्ञेय नष्ट होने पर ज्ञान नष्ट होता है, वैसे आत्मा भी नष्ट होगी न! चूँकि ज्ञान-ज्ञानी का अभेद माना है। आत्मा का नाश मानोगे?

समाधान : आत्मा द्रव्य है, वह शाश्वत् है, परंतु आत्मा का ज्ञानगुण पर्याय है, वह उत्पन्न होता है और नष्ट भी होता है। पर्याय के नाश के साथ आत्मा का नाश [द्रव्य का नाश] नहीं होता है। द्रव्य नित्य होता है। पर्याय अनित्य होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीसरा प्रश्न : ज्ञेय के परिवर्तन के साथ ज्ञान का परिवर्तन होता रहता है। ज्ञान-ज्ञानी अभिन्न है, तो उनके परिवर्तन के साथ आत्मा भी बदलती रहेगी न? तो एक ही आत्मा में अनेकता आयेगी?

समाधान : नहीं, आत्मा वही की वही रहती है, उनका ज्ञानगुण [ज्ञानोपयोग] बदलने पर भी आत्मा नहीं बदलती है। दर्पण में प्रतिबिंब बदलता रहता है, दर्पण वही का वही रहता है। इसलिए एक आत्मा में अनेकता का दोष नहीं आयेगा।

चौथा प्रश्न : आत्मा को सर्वज्ञ मानने पर, आत्मा का स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व-काल और स्व-भाव पर-रूप बन जायेगा न?

समाधान : नहीं, आत्मा की स्वद्रव्य वगैरह चारों बातें वैसी की वैसी रहती हैं और ज्ञेय पदार्थों की भी स्व-द्रव्य वगैरह चारों बातें वैसी की वैसी रहती हैं। ज्ञेय और ज्ञाता का संबंध ही ऐसा है। आत्मा अपने केवलज्ञान से सकल ज्ञेय को जानती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मा जिसको जाने उसका रूप धारण कर ले! अपना स्व-रूप खो दे! हम एक गधे को जानते हैं, क्या हम गधा बन जाते हैं? अथवा हम एक पहाड़ को जानते हैं, क्या हम पहाड़ बन जाते हैं? नहीं, हम जिस पदार्थ को जानते हैं, उस पदार्थ का हमारे ज्ञान में मात्र प्रतिबिंब गिरता है।

चेतन, अब श्री आनन्दघनजी कैसे समाधान करते हैं, वह बताता हूँ।

'अगुरु-लघु' निज गुणने देखतां, द्रव्य सकल देखंत,
साधारण गुणनी साधर्म्यता, दर्पण जल ने दृष्टांत....

जिस प्रकार दर्पण का व पानी का, प्रतिबिंब ग्रहण करने का स्वाभाविक गुण है, वैसे केवलज्ञान का [सर्वज्ञता का] सकल द्रव्यों को देखने का स्वाभाविक गुण है। दर्पण, पानी और केवलज्ञान के इस गुण की साधर्म्यता-समानता है।

दर्पण और पानी की मर्यादा है प्रतिबिंब ग्रहण करने की, जबकि केवलज्ञान अमर्यादित है। उसमें लोकालोक प्रतिबिंबित होते हैं।

चेतन, केवलज्ञान ऐसा स्वतंत्र आत्मगुण है कि लोकालोक को वह दूसरे किसी भी गुण की सहायता के बिना जानता है। परंतु यहाँ इस गाथा में 'अगुरु-लघु निज गुणने देखता' ऐसा कहा गया है! यानी आत्मा का जो अगुरु-लघु गुण है-पर्याय है, उसके माध्यम से आत्मा लोकालोक को देखती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मा पर लगे हुए 'गोत्रकर्म' के नाश से आत्मा में अगुरु-लघु गुण प्रगट होता है। इससे आत्मा-विषयक उच्च-नीच का खयाल मिट जाता है। यह गुण देहमुक्त आत्मा में प्रगट होता है। परंतु जो देहधारी केवलज्ञानी होते हैं, उनमें यह अगुरुलघु-गुण' प्रगट नहीं होता है। फिर भी केवलज्ञान में लोकालोक प्रतिबिंबित होते हैं। यानी सर्वज्ञ लोकालोक को जानते हैं, देखते हैं।

इस दृष्टि से चेतन, मुझे यह प्रतिपादन समझ में नहीं आ रहा है- 'अगुरुलघु निज गुणने देखतां....।'

इसलिये इस विषय को दूसरे विद्वानों के लिये छोड़ देता हूँ। यदि मुझे इसका स्पष्टीकरण मिल जायेगा तो मैं तुझे लिखूँगा।

उपसंहार करते हुए योगीराज श्री आनन्दघनजी कहते हैं-

श्री पारस जिन पारस रस समो, पण इहां पारस नाही,
पूरण रसीयो हो निज गुण परसन्न, आनन्दघन मुज मांही....

श्री पार्श्वनाथ भगवंत पारसमणी [रस = मणि] समान हैं, परंतु वे पारसमणि नहीं हैं। वे तो पारसमणि से भी बढ़कर हैं। अपने आत्मगुणों में वे पूर्णरूपेण रममाण [रसिक] हैं! अतः आनन्दघन स्वरूप श्री पार्श्वनाथ मेरे भीतर ही हैं!

योगीराज ने श्री पार्श्वनाथ को 'पूरण रसीयो हो निज-गुण परसन्न' बताये। अपने आत्मगुणों में प्रसन्न और पूर्णरूपेण उन्हीं गुणों में रममाण जो हैं, वे ही पार्श्वनाथ हैं! ऐसे आनन्द स्वरूप पार्श्वनाथ मेरे भीतर ही हैं!

- आत्मगुणों में ही प्रसन्नता और
- आत्मगुणों में ही रमणता....

ये दो बातें आत्मा को पारसमणि से भी बढ़कर बना देती हैं। श्री पार्श्वनाथ भगवंत की दस भवों की यात्रा में, ये दो बातें पायी जाती हैं। इन दो बातों के सहारे वह आत्मा परमात्मा बन पायी थी।

चेतन, हम अपना आत्मनिरिक्षण करें तो मालूम होगा कि अपन को आत्मगुणों में प्रसन्नता नहीं है, अपन को प्रसन्नता होती है, प्रिय विषयों के संयोग और संभोग में। अपनी रमणता भी आत्मगुणों में कहाँ है? रमणता है पाँच इन्द्रियों के विषय में। जब तक इसमें परिवर्तन नहीं होता है, तब तक अपने भीतर पार्श्वनाथ नहीं हो सकते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री आनन्दघनजी के भीतर तो पार्श्वनाथ हो सकते थे! चूँकि उनकी प्रसन्नता थी आत्मगुणों में और रमणता भी थी आत्मगुणों में! इसलिये उन्होंने गाया कि 'आनन्दघन मुज मांही....'

चेतन, इस स्तवना में अलबत्ता, पार्श्वनाथ भगवंत की स्तुति नहींवत् है, परंतु **'ज्ञान-ज्ञेय'** की चर्चा बहुत ही रसिक है। अनेकान्त दृष्टि से इस विषय पर चिंतन किया जाय तो अपूर्व आनन्द का अनुभव हो सकता है।

तूने पर्युषणापर्व में 'गणधरवाद' का प्रवचन सुना है न? गणधरवाद में श्रमण भगवान महावीर स्वामी, श्री इन्द्रभूति गौतम को उनके मन की शंका को स्फूट करते हुए कहते हैं कि 'वेद में जो तूने पढ़ा-**विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तानि एव अनुविनश्यति, न प्रेत्य संज्ञास्ति।'** इसका अर्थ तू सही नहीं करता है। मैं उसका अर्थ बताता हूँ।'

'जब ज्ञानोपयोग [विज्ञानघन] पंचभूत [पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश] में से किसी भी भूत में प्रवृत्त होता है, तब आत्मा तद्रूप बन जाती है, परंतु जब ज्ञानोपयोग दूसरे भूत में प्रवृत्त होता है, तब पूर्व का ज्ञानोपयोग नष्ट हो जाता है। वर्तमानकालीन ज्ञानोपयोग में भूतकालीन ज्ञान का संस्कार नहीं रहता है। आत्मा तो वही रहती है, परंतु पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से ऐसा कहा जा सकता है कि भूतकालीन ज्ञानपर्याय वाली आत्मा नष्ट हो गई, वर्तमानकालीन ज्ञानपर्याय वाली आत्मा उत्पन्न हुई! इस अपेक्षा से आत्मा का नाश और उत्पत्ति कही जा सकती है। परंतु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से आत्मा ध्रुव है, अविनाशी है। ज्ञानोपयोग का परिवर्तन होने पर भी आत्मा ध्रुव रहती है।

इन्द्रभूति गौतम के मन का समाधान होता है और वे भगवान् महावीरस्वामी के शिष्य बन जाते हैं।

आत्मगुणों में प्रीति और आत्मगुणों में रमणता करते-करते तेरे भीतर 'आनन्दघन' प्रगट हो-यही मंगल कामना।

- प्रियदर्शन

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री महावीरस्वामी भगवंत

स्तुति

श्रीमते वीरनाथाय, सनाथायाद्‌भुतश्रिया।
महानन्द-सरो-राजमरालायार्हते नमः ।।

प्रार्थना

चरमतीर्थंकर त्रिशलानंदन, महावीर स्वामी वंदन हो।
हम पर करुणा करके तोड़ो, कर्मों के इन बंधन को ।।
तुमने धर्म की राह बतायी, सबको सुख शांति देने।
सच्चे मन से आज तुम्हारी, शरण स्वीकारी है मैंने ।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री महावीरस्वामी भगवंत

१	**माता का नाम**	*त्रिशला रानी*
२	**पिता का नाम**	*सिद्धार्थ राजा*
३	**च्यवन कल्याणक**	*आषाढ़ शुक्ला ६/ब्राह्मणकुंड*
४	**जन्म कल्याणक**	*चैत्र शुक्ला १३/क्षत्रियकुंड*
५	**दीक्षा कल्याणक**	*मार्गशीर्ष कृष्णा १०/क्षत्रियकुंड*
६	**केवलज्ञान कल्याणक**	*वैशाख शुक्ला १०/ऋजुवालुका नदी का तट*
७	**निर्वाण कल्याणक**	*कार्तिक (आश्विन) कृष्णा ३०/पावापुरी*
८	**गणधर**	*संख्या ११ प्रमुख इन्द्रभूति*
९	**साधु**	*संख्या १४ हजार प्रमुख सुधर्मा*
१०	**साध्वी**	*संख्या ३६ हजार प्रमुख चन्दनबाला*
११	**श्रावक**	*संख्या १ लाख ५९ हजार प्रमुख आनंद, कामदेव*
१२	**श्राविका**	*संख्या ३ लाख १८ हजार प्रमुख सुलसा, रेवती*
१३	**ज्ञानवृक्ष**	*साल*
१४	**यक्ष [अधिष्ठायक देव]**	*मातंग*
१५	**यक्षिणी [अधिष्ठायिका देवी]**	*सिद्धायिका*
१६	**आयुष्य**	*७२ वर्ष*
१७	**लंछन [चिह्न-Mark]**	*सिंह*
१८	**च्यवन किस देवलोक से?**	*प्राणत [१० वाँ]*
१९	**तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन**	*नंदनऋषि के भव में*
२०	**पूर्वभव कितने?**	*२७*
२१	**छद्मस्थ अवस्था**	*१२ वर्ष ६ महीना १५ दिन*
२२	**गृहस्थ अवस्था**	*३० वर्ष*
२३	**शरीर-वर्ण (आभा)**	*सुवर्ण*
२४	**दीक्षा-दिन की शिबिका का नाम**	*चंद्रप्रभा*
२५	**नाम-अर्थ**	*धन-धान्य, सुख-समृद्धि बढ़ने के कारण।*

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

- **वीरता का मूल स्रोत रहा हुआ है आत्मा में। 'आत्मवीर्य' में से सभी प्रकार की वीरता प्रवाहित होती है।**
- **प्रत्येक आत्मा अखंड होते हुए भी सर्वज्ञ की ज्ञानदृष्टि में असंख्य प्रदेशवाली है। और एक-एक आत्मप्रदेश में असंख्य-असंख्य वीर्यांश रहे हुए हैं।**
- **वीर्यान्तराय-कर्म का सर्वथा क्षय होने से जो क्षायिक भाव का आत्मवीर्य प्रगट होता है, इससे आत्मा मेरुवत् निश्चल बन जाती है। अयोगी बन जाती है।**
- **कायर मनुष्य शास्त्रज्ञानी हो सकता है, परन्तु ज्ञान के अनुरूप पुरुषार्थ नहीं कर सकता है। पुरुषार्थ के लिए वीर्य चाहिए।**

I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I I

पत्र : २५ श्री महावीर स्तवना

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

तेरा पत्र मिला, आनन्द हुआ।

तत्त्वज्ञान में रमणता होने पर जो अपूर्व आनन्द मिलता है, वैसा आनन्द किसी भी विषय के उपभोग से प्राप्त नहीं हो सकता है। तत्त्वरमणता होने पर, उस समय नहीं रहती है कोई चिन्ता, व्यथा और वेदना!

श्री आनन्दघनजी ने काव्यरूप में तत्त्वज्ञान दिया है, इससे तत्त्वज्ञान शुष्क नहीं रहा है, रसिक बन गया है। तत्त्वजिज्ञासुओं को इस अध्ययन से रसिकता का अनुभव होता है।

श्री पार्श्वनाथ भगवंत की स्तवना में, नियत स्थान में रहे हुए सर्वज्ञ परमात्मा की सकल ज्ञेय पदार्थों के साथ किस संबंध से सर्वज्ञता और सर्वव्यापिता है, यह बताने के बाद इस अंतिम स्तवना में आत्मा के क्षायिक वीर्य की बात की है। वीर्य के विना वीर-महावीर नहीं बना जा सकता है। आत्मवीर्य की विशद विवेचना इस स्तवना में की गई है।

वीरजीना चरणे लागुं, वीरपणुं ते मागुं रे,
मिथ्या-मोह तिमिर भय भाग्युं, जीत नगारुं वाग्युं रे.... १
छउमत्थ-वीर्य-लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगे रे,
सूक्ष्म-स्थूल क्रिया ने रंगे, योगी थयो उमंगे रे.... २

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असंख्य प्रदेशे वीर्य असंख्ये, योग असंखित कंखे रे,
पुद्‌गल-गण तिणे ले सुविशेषे, यथाशक्ति मति लेखे रे.... ३
उत्कृष्ट वीर्य निवशे, योग-क्रिया नवि पेसे रे,
योग तणी ध्रुवता ने लेशे, आतमशक्ति न खेसे रे.... ४
काम-वीर्यवशे जिम भोगी, तिम आतम थयो भोगी रे,
शूरपणे आतम-उपयोगी, थाय तेह अयोगी रे.... ५
वीरपणुं ते आतमठाणे, जाण्युं तुमची वाणे रे,
ध्यान-विन्नाणे शक्ति प्रमाणे, निज ध्रुवपद पहिचाणे रे.... ६
आलंबन साधन जे त्यागे, परिणतिने भागे रे,
अक्षय दर्शन ज्ञान वैरागे, आनन्दघन प्रभु जागे रे.... ७

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पावन चरणों में वंदना करते हुए योगीराज कहते हैं :

'हे भगवंत! हे महावीर! मैं आपके चरणों में सर झुकाता हूँ और याचना करता हूँ कि मुझे भी आप वीरता दें। आपने जिस वीरता से मिथ्यात्व को और मोहांधकार को अपनी आत्मभूमि से खदेड़ दिया, आप निर्भय बने, विजेता बने.... और सारे विश्व में आपके विजय की दुंदुभि बजी! प्रभो, मुझे भी वह वीरता चाहिए....। मैं भी मेरी आत्मभूमि पर से मिथ्यात्व-पिशाच को मार भगाना चाहता हूँ, मोह के प्रगाढ़ अंधकार को मिटाना चाहता हूँ। मेरे भीतर के शत्रुओं पर विजय पाकर, मैं भी सारे जगत में विजय की घोषणा करना चाहता हूँ। कृपाकर मुझे वैसी वीरता दें! आप ही वैसी वीरता दे सकते हैं। मेरे सारे भय, सारी चिंतायें दूर हो जायें और विघ्नों को कुचल कर मैं आपके पास आ सकूँ।'

वीरता का मूल स्रोत रहा हुआ है आत्मा में। 'आत्मवीर्य' में से सभी प्रकार की वीरता प्रवाहित होती है। शारीरिक वीरता, मानसिक वीरता और आध्यात्मिक वीरता.... आत्मवीर्य में से पैदा होती है।

वीर्य कहें, शक्ति कहें, बल कहें या सामर्थ्य कहें-सभी एकार्थक शब्द हैं। यहाँ पर श्री आनन्दघनजी सर्वप्रथम **'छद्मस्थवीर्य'** की बात करते हैं और उसके दो प्रकार बताते हैं-

१. अभिसंधिज वीर्य और **२. अनभिसंधिज वीर्य।**

चेतन, पहले इन तीन शब्दों का अर्थ बता देता हूँ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१. छद्मस्थ : अपूर्ण आत्मा, मोहाच्छादित आत्मा।

२. अभिसंधिज : मोहयुक्त जीवात्मा के विशेष प्रयत्न से जो वीर्य प्रवर्तित होता है वह।

३. अनभिसंधिज : विशेष प्रयत्न के विना सहजता से जो स्थूल या सूक्ष्म-प्रवृत्ति चलती रहती है, उस प्रवृत्ति में जो वीर्य प्रवर्तित होता है वह।

ये दोनों प्रकार के वीर्य जो छद्मस्थ जीव में प्रवर्तित होते हैं, उसमें सहयोगी होती हैं लेश्यायें! लेश्यायें तो छद्मस्थ जीव को भी होती हैं और सर्वज्ञ-वीतराग आत्मा को भी होती हैं। हाँ, मुक्त आत्मायें लेश्यारहित होती हैं।

- कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या अशुभ हैं।
- तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या शुभ हैं।
- आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं।
- विचारों को लेश्या कह सकते हैं। हर विचार का रंग होता है! अशुभ विचारों का रंग कृष्ण, नील अथवा कापोत होता है। शुभ विचारों का रंग लाल, पीला अथवा श्वेत होता है।

इतनी बातें स्पष्ट होने पर दूसरी गाथा का अर्थ सरलता से समझा जायेगा।

छउमत्थ वीर्य लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगे रे,
सूक्ष्म-स्थूल क्रिया ने रंगे, योगी थयो उमंगे रे....

छद्मस्थ जीव [छउमत्थ] का वीर्य [शक्ति] लेश्या सहित जीव की इरादातन [मति-अंगे] सूक्ष्म या स्थूल क्रिया में प्रवर्तित होता है। इसका अभिसंधिज वीर्य करते हैं। इस वीर्य से मन-वचन-काया के योग [प्रवृत्ति] उल्लास से होते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवात्मा जो मोहप्रेरित मन-वचन-काया की प्रवृत्ति करता है, उसमें जो शक्ति काम करती है, वह 'अभिसंधिज-वीर्य' कहलाता है। मन-वचन-काया की हर प्रवृत्ति के साथ 'लेश्या' जुड़ी हुई रहती है।

आत्मा जो कर्मबंध करती है, उस कर्मबंध में भी 'वीर्य' कैसे कारण है, यह बात बताते हुए योगीराज फरमाते हैं-

असंख्य प्रदेशे वीर्य असंख्ये, योग असंखित कंखे रे,
पुद्‌गल-गण तेणे ले सुविशेषे, यथाशक्ति मति लेखे रे....

चेतन, प्रत्येक आत्मा अखंड होते हुए भी सर्वज्ञ की ज्ञानदृष्टि में असंख्य प्रदेशवाली है! और एक-एक आत्मप्रदेश में असंख्य-असंख्य वीर्यांश रहे हुए हैं!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असंख्य वीर्यांशों का एक 'योगस्थान' कहा गया है। ऐसे 'योगस्थान' भी असंख्य [असंखित] हैं-ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। ये योगस्थान जितने ज्यादा होते हैं, तदनुसार कार्मण वर्गणा के पुद्‌गल, जीव ज्यादा ग्रहण करता है। यदि योगस्थान कम होते हैं, तो कर्मपुद्‌गल कम ग्रहण करता है। इसलिये कहा-'यथाशक्ति' और 'मति-लेखे'। 'मति लेखे' यानी अध्यवसाय के अनुसार।

दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है-

आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, एक-एक प्रदेश में असंख्य वीर्यांश रहे हुए हैं और मन-वचन-काया के योग भी असंख्य हैं। आत्मा अपने वीर्यांशों के आधार पर [यथाशक्ति] और अपने अध्यवसायों [मति लेखे] के अनुरूप कार्मण वर्गणा के पुद्‌गलों के समूह [पुद्‌गलगण] विशेष रूप से ग्रहण [ले] करती है। यानी आत्मा के साथ कर्मबंध होता है।

कर्मबंध कम होने में और नहीं होने में भी 'वीर्य' ही प्रमुख कारण है, यह बताते हुए कविराज कहते हैं-

उत्कृष्ट वीर्य निवेश, योग क्रिया नवि पेसे रे,
योग तणी ध्रुवताने लेशे, आतमशक्ति न खेसे रे....

ज्यों-ज्यों आत्मा अपने वीर्य की वृद्धि करती जाती है और उत्कृष्ट वीर्य की प्राप्ति हो जाती है, तब उस आत्मा में मन-वचन-काया के योगों का प्रवेश नहीं होता है। वीर्य की वृद्धि के साथ मन-वचन-काया की प्रवृत्ति कम होती जाती है। मंद हो जाती है और बाद में संपूर्णतया बंद हो जाती है।

वीर्य, जो कि मन-वचन-काया की प्रवृत्ति में खर्च होता था, वह बंद होकर आत्मा में स्थिर होता जाता है। मन-वचन-काया के योग स्थिर [ध्रुवता] होते जाते हैं, संपूर्णतया स्थिर हो जाते हैं। उन योगों की आत्मशक्ति जरा भी खिसका सकती नहीं है।

तात्पर्य यह है कि उत्कृष्ट वीर्य को मन-वचन-काया के योग कोई असर नहीं कर सकते और मन-वचन-काया के योगों पर वीर्य का कोई असर नहीं होता! दोनों अलग-अलग हो जाते हैं!

अब, वीर्य से आत्मा कैसे भोगी बनती है, कैसे योगी बनती है और कैसे अयोगी बनती है, यह बात बताते हैं-

कामवीर्य वशे जिम भोगी, तिम आतम थयो भोगी रे,
शूरपणे आतम-उपयोगी थाय तेह अयोगी रे....

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेतन, इस गाथा का अर्थ बाद में बताऊँगा, पहले तीन प्रकार के 'वीर्य' बताता हूँ। जिससे यह गाथा सरलता से समझ पायेगा।

१. पहला प्रकार है, शारीरिक वीर्य का। यह वीर्य मैथुन-क्रिया द्वारा विषय सुख भोगने में उपयोगी होता है। इस वीर्य से जीव कामवासना से उत्तेजित होकर मैथुनक्रिया करता है।

२. दूसरा प्रकार है, मन-वचन-काया के योग द्वारा जो भोगा जाता है वह आत्मवीर्य का। इस वीर्य से जीव कर्मबंध कर संसार की चार गतियों में भटकता रहता है। संसार के सुख-दुःख भोगता रहता है।

३. मन-वचन-काया के योग निर्बल होने से, वीर्यान्तराय कर्म का सर्वथा क्षय होने से जो क्षायिकभाव से आत्मवीर्य प्रगट होता है, वह तीसरे प्रकार का वीर्य है। इस वीर्य से आत्मा मेरुवत् निश्चल बन जाती है, अयोगी [मन-वचन-काया के योगों से रहित] बन जाती है।

अब गाथा का अर्थ समझ ले।

'कामवीर्य' यानी जिससे जीव मैथुनजन्य सुख भोगता है। उस कामवीर्य के वशवर्ती जीव भोगी बनता है। उसी प्रकार जीव [आतम] मन-वचन-काया के योगों से भोगी बनता है।

वीरता से [शूरपणे] आत्मोपयोग में लीन जब बनता है जीव, तब वह अयोगी [चौदहवें गुणस्थानक पर] बन जाता है। अर्थात् मन-वचन-काया के योग नहीं रहते।

- पहले प्रकार का वीर्य जीवात्मा को कामी-भोगी बनाता है,
- दूसरे प्रकार का वीर्य जीवात्मा को संसार-परिभ्रमण करवाता है,
- तीसरे प्रकार का वीर्य आत्मा को अभोगी-मुक्त बनाता है।

अब, वीर्य [वीरपणुं] का उद्भवस्थान बताते हुए योगीराज परमात्मा के प्रति कृतज्ञभाव अभिव्यक्त करते हैं-

वीरपणुं ते आतमठाणे, जाण्युं तुमची वाणे रे,

ध्यानविन्नाणे शक्तिप्रमाणे, निज ध्रुवपद पहिचाणे रे....

'हे वीर प्रभो, आपकी [तुमची] वाणी से मैंने जाना कि वीर्य [वीरपणुं] का मूल स्रोत आत्मा [आतमठाणे] है। वीरता आत्मा में से प्रगट होती है।'

श्री आनन्दघनजी वीर्यविषयक जो बात कर रहे हैं, वह उनकी मनःकल्पना की बात नहीं है, परंतु जिनागमों के अध्ययन से उनको यह बात मिली है। साथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में उनका 'अनुभव' भी जुड़ा हुआ होगा। वह अनुभव उन्होंने 'ध्यान-साधना' के माध्यम से प्राप्त किया होगा। इसलिये उन्होंने कहा है-'ध्यानविन्नाणे'। ध्यानविज्ञान के माध्यम से ही अपना [निज] ध्रुवपद [आत्मा] जाना जा सकता है। जितनी जिसकी शक्ति! तदनुसार ध्यानविज्ञान को मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

आत्मा का वीर्य, आत्मा की सामर्थ्य-शक्ति, ध्यान से ही ज्ञात हो सकती है। उन्होंने ध्यान से जान लिया कि शक्ति का, वीर्य का मूल स्थान आत्मा है, शरीर नहीं। शारीरिक शक्ति का भी मूल स्रोत आत्मा है।

चेतन, श्री आनन्दघनजी ने 'ध्यानविज्ञान' की महत्वपूर्ण बात कही है। अगम-अगोचर तत्त्वों के निर्णय में शास्त्र निर्णायक नहीं बनते, ध्यान निर्णायक बनता है। शास्त्र तो मात्र दिग्दर्शन करानेवाले होते हैं।

ध्यान के विषय में जिनागमों में एवं महान् पूर्वाचार्यों के लिखे हुए ग्रंथों में समुचित मार्गदर्शन मिलता है। ध्यान, ध्याता और ध्येय के विषय में बहुत ही स्पष्ट मार्गदर्शन मिलता है।

ध्यान के मुख्य चार प्रकार बताये हैं : १. आर्तध्यान, २. रौद्रध्यान, ३. धर्मध्यान और ४. शुक्लध्यान। आर्तध्यान और रौद्रध्यान अशुभ हैं, त्याज्य हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान शुभ हैं, उपादेय हैं।

ध्यान के विषय को लेकर शुभ-अशुभ के भेद किये गये हैं। यानी ध्येय के आधार पर ध्यान शुभ या अशुभ कहा जाता है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान का विषय शुभ है, इसलिये ये दो ध्यान उपादेय बताये गये हैं।

धर्मध्यान के मुख्य चार विषय है-१. जिनेश्वरों की आज्ञा, २. कर्मों के अपाय, ३. कर्मों के विपाक और ४. चौदह राजलोक की स्थिति।

इस ध्यान में अनित्यादि भावनाओं का चिंतन सहायक होता है। मैत्र्यादि भावनाओं की अनुप्रेक्षा उपयोगी बनती है।

ध्यान की दूसरी प्रक्रिया है, कायोत्सर्ग की। कायोत्सर्ग में मन की स्थिरतारूप-एकाग्रतारूप ध्यान का अभ्यास होता है। इस प्रकार ध्यान के अभ्यास में आगे बढ़ते हुए विशुद्ध आत्मा के ध्यान में लीनता प्राप्त करने की होती है। उस लीनता में आत्मा के अनंतज्ञानादि गुणों का वास्तविक ज्ञान होता है। 'अनन्त वीर्य' आत्मा में निहित है, यह बात स्पष्ट होती है। इतना ही नहीं, आत्मा का विशुद्ध स्वरूप प्रगट करने का आन्तरिक उल्लास जाग्रत होता है।

आलंबन-साधन जे त्यागे, परपरिणतिने भागे रे,
अक्षय दर्शन ज्ञान वैराग्ये, आनन्दघन प्रभु जागे रे....

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवमात्र के जीवन में सहायक [आलंबन-साधन] जो मन-वचन-काया के योग हैं, उनका जो त्याग करते हैं और परपरिणति को जो भगाते हैं, उनके भीतर आनन्दघनस्वरूप आत्मा [प्रभु] जाग्रत हो जाती है, यानी स्वभावदशा प्राप्त हो जाती है।

परंतु आलंबनों का त्याग और परपरिणति का नाश, क्षायिक [अक्षय] दर्शन, ज्ञान और वैराग्य [चारित्र] से होता है! अथवा बाह्य आलंबन छूट जाने पर और परपरिणति नष्ट हो जाने पर आत्मा क्षायिक दर्शन-ज्ञान और चारित्र में जाग्रत बन जाती है। यानी अनंत काल क्षायिक गुणों में रमणता करती है।

योगीराज आनन्दघनजी, परमात्मा महावीरदेव के पास ऐसे वीर्य की याचना करते हैं कि जिससे वे वैषयिक सुखभोगों की वासना पर विजय प्राप्त कर सकें, और आत्मोपयोग में लीन बनकर अयोगी बन सकें। अयोगी आत्मा ही अनंतकाल स्वरूप में रमणता कर सकती है। यह आत्मस्वरूप की रमणता, योगीराज का अंतिम ध्येय है।

अंतिम तीर्थंकर के पास कविराज ने अंतिम ध्येय की याचना कर ली है। बहुत ही नम्रता से उन्होंने याचना की है।

'वीरजीने चरणे लागुं वीरपणुँ ते मागुं रे....'

प्रभु के चरणों में गिरकर उन्होंने याचना की है। वीरता की याचना की है। चूँकि कायरता से कभी कार्यसिद्धि नहीं होती है। कायर मनुष्य शास्त्रज्ञानी हो सकता है, परंतु ज्ञान के अनुरूप पुरुषार्थ नहीं कर सकता है। पुरुषार्थ के लिये वीरता चाहिये, वीर्योल्लास चाहिये।

शास्त्रज्ञानी तो हम अनंत जन्मों में अनन्त बार बने हैं-ऐसा पूर्णज्ञानी का कथन है, परंतु हम कायर थे, वीर्यहीन थे, इसी वजह से कामवासनाओं पर विजय नहीं पा सके, मन-वचन-काया के योगों को स्थिर नहीं कर पाये और आत्मस्वरूप में रमणता नहीं कर पाये।

हमारे में कमी है वीर्य की, शक्ति की। **भगवान महावीरदेव के चरणों में गिर कर, गद्‌गद हृदय से हम भी प्रार्थना करें, याचना करें कि 'हे करुणासिन्धु, आप शक्ति के भंडार हैं.... अनंत शक्ति है आप के पास, मुझे उस में से कुछ अंश देने की कृपा करो मेरे नाथ! आपके इस उपकार को मैं कभी नहीं भूलूँगा।'**

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपसंहार

प्रिय चेतन,

धर्मलाभ!

कल ही चौबीसी की विवेचना पूर्ण हुई! ह्रदय हर्ष से भर गया! एक महान् श्रुतधर और योगीपुरुष की काव्य-रचना पर विवेचन लिखने का मेरे जैसे अल्पज्ञानी को सौभाग्य मिल गया....! विवेचना लिखने के निमित्त से इस गहन और गंभीर काव्यों का अवगाहन.... चिंतन-मनन करने का अवसर मिल गया मुझे....

इस बात का मुझे अपूर्व संतोष मिला है।

हालाँकि इस विवेचना में विद्वानों को अनेक त्रुटियाँ दृष्टिपथ में आयेंगी, कोई-कोई बात हास्यास्पद भी लगेगी.... परंतु वे कृपावंत विद्वज्जन मुझे क्षमा करेंगे। चूँकि मैंने तो यह विवेचना मेरे जैसे अल्पज्ञानी तत्त्वजिज्ञासुओं के लिये लिखी है। महान् योगी की इस काव्य रचना का आस्वाद सामान्य बुद्धि का मनुष्य भी ले सके.... इस दृष्टि से मैंने यह यथाशक्ति.... यथाबुद्धि प्रयास किया है।

'ज्ञानसार' नाम के मुनिराज ने लिखा है-

आशय आनन्दघन तणो, अति गंभीर उदार,

बालक बाहु पसारी, कहे उदधि विस्तार!

मेरी भी बालक जैसी ही चेष्टा रही है इस विवेचना में। फिर भी यह विवेचना 'स्वान्तः सुखाय' तो अवश्य बनी है। लिखते-लिखते कभी योगीराज के प्रति अप्रतिम श्रद्धा पैदा हुई थी, कभी आँखों में से हर्ष के आँसू भी बहे थे.... और कभी भक्तिभाव का उत्कर्ष भी अनुभव किया था।

चेतन, इस चौबीसी में प्रीति से पूर्णता पाने का स्पष्ट मार्गदर्शन मिलता है। 'परमात्मा से प्रीति कर लो, पूर्णता के शिखर पर पहुँच जाओगे!'

जैसे वैराग्य से वीतराग बना जाता है, वैसे प्रीति से परमात्मा बना जा सकता है! जितनी शक्ति वैराग्य में है, उससे भी ज्यादा शक्ति प्रीति में है। इसलिये योगीराज ने स्तवना का प्रारंभ प्रीति से किया है और अंत पूर्णता में बताया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परमात्मा से निरुपाधिक प्रीति बाँध लेनी है। उस प्रीति में से पूर्णता प्राप्त करने की अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है। सहजता से पूर्णता की ओर गति होती रहती है।

प्रीति बाँधने में काव्य-भक्तिगीत-स्तवन उपयोगी बनता है। चूँकि काव्य शीघ्र हृदय को स्पर्श करता है! मेरे साधुजीवन के प्रथम वर्ष में ही.... शत्रुंजय गिरिराज के ऊपर भगवान शान्तिनाथ के मंदिर में मैंने एक मुनिराज के मुख से **'सुमति चरणकज आतम अरपणा रे....'** काव्य सुना था! कितनी मधुर आवाज थी वह! मेरे हृदय को स्पर्श कर गया था वह स्तवन। हालाँकि अर्थबोध तो मुझे ज्यादा नहीं हुआ था.... परंतु शब्दों का भी जादू होता है न! आनन्दघनजी योगीपुरुष थे.... उनकी शब्दरचना में जादू होना स्वाभाविक है!

स्वर मधुर हो.... राग का ज्ञान हो.... उच्चारण स्पष्ट हो और मंदिर में शान्ति हो! बस, इन स्तवनाओं को गाते रहो.... अथवा सुनते रहो.... शब्दों का जादू अनुभव करोगे।

चेतन, आनन्दघनजी के स्तवनों के प्रति मेरा आकर्षण तो साधुजीवन के प्रथम वर्ष से ही जगा था, बाद में मेरे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री ने एक बार पहले और दूसरे स्तवनों पर हम साधुओं के सामने रसभरपूर विवेचना की थी। मैंने उसी समय विवेचना लिख ली थी। गुजराती भाषा में-**'प्रीतनी रीत'** और **'प्रभुनो पंथ'**-इस नाम की दो पुस्तिकायें भी उस समय छप गई थी।

फिर तो कई वर्ष बीत गये! और श्रमणजीवन के ३४ वें वर्ष में इस विवेचना का प्रारंभ किया एवं ३६ वें वर्ष में विवेचना पूर्ण हुई।

प्रारंभ किया था, कुल्पाकजी तीर्थ में और पूर्णाहुति हुई गदग [कर्णाटक] में! परंतु ज्यादातर विवेचना लिखी गई है कोइम्बतूर में। इस दृष्टि से हमारी दक्षिण-प्रदेश की यात्रा का यह स्मृतिचिह्न बन गया न?

चेतन, इन स्तवनाओं में परमात्मप्रीति और परमात्मभक्ति के साथ-साथ गहन और गंभीर तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। कितने-कितने विषयों का समावेश किया है! इससे मालूम होता है कि योगीराज का ज्ञान कितना विशाल और गंभीर होगा। भक्तियोग के साथ आचार मार्ग का भी प्रतिपादन किया है, ध्यान, योग और अध्यात्म के विषय में भी सुंदर स्पष्टता की है। नय, निक्षेप और स्याद्वाद जैसे गंभीर पदार्थों को भी स्पर्श किया है। यथोचित न्याय किया है। वेदांत, बौद्ध आदि दर्शनों के विषय में अनेकान्तदृष्टि से रसपूर्ण सामंजस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थापित किया है। 'षट्दर्शन जिन अंग भणीजे....' कह कर जैनदर्शन की विशालता का परिचय दिया है। 'कर्मबंध' को लेकर प्रकृति-स्थिति-रस और प्रदेश की भी चर्चा यहाँ की गई है। निश्चय नय और व्यवहारनय की समतुला बताकर मोक्षमार्ग का स्पष्ट दर्शन कराया है।

श्री आनन्दघनजी के जीवन के विषय में, उनकी काव्यरचनाओं के विषय में और इस चौबीसी के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वान् महानुभावों ने बहुत कुछ लिखा है। कुछ मंतव्यों के साथ मतभेद होते हुए भी, सबने आनन्दघनजी के प्रति गहरी श्रद्धा व्यक्त की है। सभी ने उनकी चौबीसी की, पदों की, मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

जिनशासन की ज्ञानज्योति को प्रसारित करनेवाले, जिनशासन के प्रति लोगों का आदरभाव बढ़ानेवाले.... अन्तरात्मदशा के धनी ऐसे श्री आनन्दघनजी के चरणों में भाववंदना करते हुए, इस विवेचना में उनके आशय से कुछ भी विपरीत लिखा गया हो.... तो मैं नतमस्तक होकर क्षमायाचना करता हूँ। जय वीतराग!

फाल्गुन शुक्ला-१० **- प्रियदर्शन**

गदग [कर्नाटक]

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा तीर्थ
Acharya Sri Kailasasagarsuri Gyanmandir
Sri Mahavir Jain Aradhana Kendra
Koba Tirth, Gandhinagar-382 007 (Guj.) INDIA
Website : www.kobatirth.org
E-mail : gyanmandir@kobatirth.org
ISBN : 978-81-89177-22-5

For Private And Personal Use Only